हिन्दी जैन ग्रन्थ माला का पञ्चम पुष्प ४२४१८

ओ३म

श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

❀ जैन निबन्ध रत्नाकर ❀

जिसको

कस्तूरचन्द भैरोंचन्द गाँठिया
जयपुर
सम्पादक हिन्दी जैन

ने

प्रकाशित किया

सन १९१२

प्रथमावृत्ति १०००

यह पुस्तक चन्दूलाल छगनलाल ने अपने सिटी प्रिन्टिंग प्रेस
डालगरवाड़ा अहमदाबाद में छापा.

जैन धर्मोपदेशक न्यायाचार्य श्री १००८

॥श्री॥

प्रस्ताविक विज्ञप्ति।

हमारे जैन समुदायमें परस्पर स्वबन्धु क्या कार्य करते हैं, उनके दिलका क्या अभिप्राय है, कौन सुखी है, कौन दुखी है, किस देशमें किस व्यापारमें हानि है, किस म लाभ, किस तीर्थकी व्यवस्था ठीक, किसकी खराब इत्यादि बातें जानने के लिये गुजरात प्रांत के सिवाय अन्य प्रांतोंमें एक ऐसे हिन्दी भाषा के पत्रकी कितनी आवश्यकता थी, यह स्वय पाठकही सोच सक्ते हैं। इस आवश्यकता को मिटाने के लिये सेवक कितने ही समय से उत्सुकथा पर द्रव्य के अभावके कारण हो क्या सकता था। जब योगायोग आता है तभी किसी भी कार्यके होनेमें कुछ विलम्ब नहीं लगता। उसी प्रकार बालक हिन्दी जैनके जन्म लेनेके लिये योग आगया। बस शीघ्रही हमारी मनो कामना साफल्य होगइ और तत्काल हमारी जातिकी सेवा बजाने को यह बालक पालनेसे कूदपड़ा। जो प्रति गुरुवारको सैंकडों हजारों माईल की मुसाफिरी कर सब ओरके समाचार ले आपकी सेवा म दौडता हुआ आ उपस्थित होता है। जब यह बालक जैन कौमकी सेवा बजाने लगा तो इसने यह भी विचार कर लिया कि मेरे परम प्रिय पाठकों को और भी नाना भांति की पुस्तकें पढ़ने को दूं और उनका मनोरंजन करूं। जिस से मेरे दयालु पाठक मुझे अच्छी तरह से पालें पोसें और जाति की सेवा बजाने के लिये मेरा उत्साह बढावें। बालक (हिन्दीजैन) का विचार देख हमको भी यही उत्कंठा हुई की अवश्यमेव जैन साहित्य की पुस्तकें तैयार करवा करके पाठकोंके अर्पण करें, इसी उद्देश्य से विद्वज्जनो से विनय कर

इस जैन निबन्ध रत्नाकर की तैयारी मे लगा। मेरे परम पूज्य मुनिजनों ने व श्रावक भाइयोने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी रसीली लेखनी से निबन्ध भेजना आरंभ किया, बस सामग्री तैयार कर पुस्तक के छपाने का कार्य प्रारंभ किया। हां इस स्थानपर मुझे यह कह देना होगा कि हिन्दी जैन का कार्य शुरू हुआ तभीसे यह सेवक अकेलाही काम करने वालाथा। सभी कामका भार मेरेपर था तथापि पेपर को टाइमपर निकाल कर पुस्तक की तैयारी मे भी लगा रहा। इसी कारणसे पुस्तक में अशुद्धियां रहगई हैं। इसका एक कारण यह भी है कि पुस्तक की छपाई का काम अहमदाबाद में होने से इधर उधर प्रूफ आनेजाने में भी कई गल्तियां प्रेसवालो की तरफ से रहगई वास्ते पाठकों से क्षमाका प्रार्थी हूं।

उपहार की पुस्तकके छपने मे देरी होने का यह कारण हुआ कि दो चार लेख वहुत देर से मिले। कितने ही लेखोका और भी आना सम्भव था पर अधिक विलम्ब होने के कारण उनकी आशा छोड़ इतने ही छाप कर यह पुस्तक आप की सेवामे हाजिर की है। हां जो लेख इस मे न लिये गये वे यथा साध्य द्वितीय भाग में प्रकाशित करने का प्रयास करूंगा।

जिन २ महाशयोंने निवन्ध भेज कर मेरे उत्साह को वढ़ाया है उनको मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं। आशा है कि इसी प्रकार सर्व जैन बन्धु मदत दे कृतार्थ करेंगे।

श्रीसंघ का दास,
कस्तूरचन्द जवरचन्द गांदिया
सम्पादक हिन्दी जैन.

॥ श्री ॥

अनुक्रमणिका

नं०	नाम विषय	पृष्ठ
१	सत्तत्त्व मीमांसा	१
२	गणिजी केवलचन्दजीका संक्षिप्त जीवन चारित्र	११८
३	मृत्युके बाद नुकता करने का हानिकारक रिवाज	१४७
४	मृत्यु के पश्चात् रोना पीटना हानिकार का निषेध	१६६
५	मनोनिग्रह	२०१
६	जैन शब्दका महत्त्व	२२३
७	शिक्षा सुधार	२२९
८	ईश्वर भक्ति	२४९
९	देव गुरु और धर्मका स्वरूप	२९१
१०	श्रीमद् हीरविजय सूरीजी महाराज का जीवन चारित्र	३२१

चित्र परिचय

१ श्रीमद् आचार्य विजयानन्द सूरी–आत्मारामजी महाराज
२ श्रीमान् दानवीर सेठ राय सा० केसरी सिंहजी (कोटा-वाले) रतलाम

३ श्रीमद् जैन धर्म्मोपदेष्टा मुनि लब्धि विजय जी महाराज
४ गणिजी केवलचन्द्रजी महाराज
५ गणिजी बालचन्दजी खामगांव
६ श्रीयुत् सेठ सा० लक्ष्मीचन्दजी घीया प्राविनशियल सेक्रेटरी श्री जैन श्वेताम्बर कानफरन्स–परतापगढ़ निवासी
७ श्रीयुत सेठ सा० रतनलालजाजी सूराना रतलाम निवासी
८ श्रीयुत शेरसिंहजी कोठारी सैलाना निवासी भूत पूर्व उपदेशक श्री जैन श्वेताम्बर कानफरन्स
९ श्रीमद् हीरविजय सूरीजी महाराज और बादशाह अकबर

राय सा० सेठ केसरी सिंहजी

(बोरावाले) रतलाम निवासी

॥ श्री ॥

समर्पण पत्रिका ।

श्रीमान् दानवीर राय साहब केसरीसिंहजी

(कोटावाला) रतलाम की सुसेवा में

मान्यवर महोदयजी !

आप हमारी ज्ञाति के अग्रसर, धर्म्म धुरन्धर हैं । श्रीमान सदैव धार्मिक कार्योंमे तन, मन, धन से मग्न कर जातिवधर्म की उन्नति करते रहते हैं । आप की कीर्ति पर प्रसन्न हो हमारे प्रजाप्रिय सम्राट पचम जार्ज ने अपने सिंहासनारूढ होने के समय राय साहब का खिताब बक्षा है । बस हम भी वीर पर मात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि उत्तरोत्तर आपको सन्मान मिलते रहें, जिससे हमारी जाति उज्वल अवस्था को प्राप्त हो । मैं भी आपको हार्दिक धन्यवाद दे कर, आपके खुशाली की याद गारी के लिये यह जैन निबन्धरत्नाकर नाम की छोटी सी पुस्तक अर्पण करता हू । आशा है कि आप सहर्ष स्वीकार करेगे ।

भवदीय

कस्तूरचन्द गादिया

जैन धर्मोपदेशक श्री श्री १०८

मुनि श्री लब्धि विजयजी महाराज

॥ सत्तत्त्व मीमांसा ॥

॥ लेखक श्रीमद्विजय कमलसूरिश्वर चरणोपासक मुनि लब्धिविजय ॥

प्रिय पाठकगण ! इस दुनियामें मुख्यतया दो तरह के धर्म प्रचलित हैं। एक सम्यक्त्व धर्म और दुसरा मिथ्यात्व धर्म। इस जगतमें अनादि कालसे यह दोनों ही धर्म उपलब्ध होते हैं; और यह आपसमें ऐसे विमुख रहते है कि यदि एक धर्मावलम्बी जीव (मनुष्य) दूसरेसे एकही समयमें और एकही जगहपर मिले तो वे आपसमें शान्ति पूर्वक विना कुछ उपद्रव किये नहीं रह सक्ते ! और ऐसेमें जिस धर्मावलम्बीकी शक्ति दूसरेसे अधिक बलवान् होती है वह अपनी सत्ता दूसरोंपर स्थापित कर देता है।

सम्यक्त्व के उदयमें जीव अपने दिनोंको बडे सुखसे व्यतीत करताहै और मरनेपरभी अच्छी गतिको प्राप्त होता है, और इस धर्म को हरदम हृदयम रखनेवाला प्राणी थोडे ही समयमें मोक्ष तटपर भवरों के बीचमें पडी हुइ अपनी टूटी फूटी

केस्तीको पहुंचा देता है! दूसरेका स्वभाव इससे विरुद्ध रहताहै। इसलिये वह अति नीच गतिमें भ्रमण करता फिरता है, दुःख पाता है और आखिरकार नरक गतिका मेहमान बनाता है; कहांतक लिखा जावे दुनियाके तमाम दुःख इसे मिलते हैं। इसकी ऐसी प्रबलता है कि अगर कोइ जीव इसके उदयमें नर्क गतिके आयुष्यका बंधन कर लेवे और बादमें सम्यक्त्व आकर चाहे अपना शक्तिभर जोर लगावे, मगर उस हालतमें भी मिथ्यात्वका अभाव होनेपर भी, जीव के साथ सम्यक्त्वको उस गतिकी सैर अवश्यमेव करनी पडती है। अतः इस दुराचारी मिथ्यात्वको छोडकर सम्यक्त्वको धारण करना चाहिये। देखिये! फिर आत्मिकताका गुल (फूल) कैसा खिलता है? सर्वज्ञ वीतराग जिन देवके वचनोंपर चलनेसे सम्यक्त्व धर्म हांसिल होताहै; और सर्वज्ञसे विपरीत होकर अल्पज्ञ पुरुषोंके मन घडित वचनोंपर चलनेसे मिथ्यात्व धर्म हांसिल होता है। सम्यक्त्व धर्मधारी प्राणियोंकी रायमें फर्क नहीं होता। इनके अंदर धर्मके बारेमें अनेकता कभी भी नहीं पाइ जाती। किन्तु मिथ्यात्वियोंमेंही अनेक भेद पाये जाते हैं। क्योंकि इनके बानी मुबानी (मत प्रवर्त्तक) अल्पज्ञ हुए हैं। इस लिये कोइ कुछ कह देता है और कोई कुछ। देखिये! इसी लिये सिद्धसेन दिवाकर महाराज सम्मति तर्कमें लिखते हैं किः—

जावइया वयणपहा तावइया चेवहुंति नयवाया ॥
जावइया नयवाया तावइया चेवहुंति परसमया ॥१॥

इस बातके पढनेसे आप लोगोंको यह भली प्रकारसे मालुम होगया होगाकि जैनके धर्म प्रवर्त्तक सर्वज्ञथे। इस लिये उन्होने किसी जगहपर भूल नही की, और जितनी बात प्रतिपादन की है वे सब निष्पक्षपात तथा विरोध रहित प्रतिपादन की है। इस बातके सबूतमें एक जैनाचार्यजीका श्लोक सुनाता हूं। जरा ध्यान लगाकर सुनलेंः—

बन्धुर्नन स भगवान् रिपवोपिनान्ये
साक्षान्न दृष्टचर एक तरोपि चैषाम् ॥
श्रुत्वावच सुचरित च पृथग् विशेष ।
वीरगुणातिशय लोल तयोश्रिता स्म ॥

मतलब—श्री महावीर स्वामी हमारे भाइ नहीं है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा बुद्धादिक कोई हमारे दुश्मन नहीं हैं, और नहीं मच्छ कूर्म आदि अवतारोंमेंसे किसी एकको देखाहै। मगर तत् तत् प्रणीत सिद्धान्तके वचनोंका श्रवण मनन और निदीध्यासन कर और उनके चरित्रमें जमीन आस्मानका फर्क देखकर, अधिक गुणानुरागसे हमने महावीर स्वामीका

आश्रय लिया है। देखिये! कैसी निष्पक्षता जाहिर कीगई है। अब जैनकी उत्तमता दिखलानेके लिये कई एक प्राचीन शाखाओंका खंडनकर अतीव प्राचीन जैन मतका मंडन करनेको कलम उठाताहूं; मगर यहांपर प्रथम नास्तिकका खंडन करना योग्य समझताहूं, क्योंकि इनके सिवाय प्रत्येक मतवाले आत्माको मानते हैं, मगर नास्तिक सर्वथा इन बातोंसे विरुद्ध रहता है; और हमारे यहां जैन मतमें आत्मिक शक्तिको मुख्य मानकर देश विरति व सर्व विरति रूप साधन द्वारा प्रकट करना लिखा है। जब जीव घाती कर्मसे अलाहिदा होता है तब अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य्य मय अपने स्वाभाविक स्वरुपको प्राप्तकर जीवन मुक्त दशाको प्राप्त होताहै, शेष आयुष्यको पूर्णकर अघाती कर्मका नाश करतेही साथ २ विदेह मुक्त होजाता है। वगैरः वगैरः बयान हमारे जैन शास्त्रोंमें है। इस लिये हमें आत्म सिद्धिपर ज्यादः जोर लगानेकी जरुरत है, क्योंकि "विनामूलं कुतः शाखा" अर्थात् वगेर मूलके शाखा नहीं होसकती है। इसलिये जबतक आत्माकी सिद्धि न होगी वहांतक हमारे यहां रुहानी तालीमपर (आत्मोन्नातिपर) गणधर महाराजके रचेहुए शास्त्र सर्वथा निष्फल होजांयगे। अतः नास्तिकोंके मतका खंडन किया जानाही चाहिये।

अतः इस सम्बन्धमें मैं कुछ वार्तालाप नीचे लिखता हूं। सर्व सज्जन ध्यान देकर पढे और लाभ उठावें।

नास्तिक–"शरीराकार परिणत भूतोंकोही आत्माका उत्पादक कारण मानना मुनासिब है. पाणीमें जैसे बब्रुले उठतेहैं और उसमें ही फिर लय हो जाते हैं इसी तरहसे भूतोंमें ही आत्मसत्ता पैदा होती है और भूतों के अभावमें उसका अभाव होता है। परलोकमें जानेवाला आत्मा नामका कोइ पदार्थ नही है, अगर आप भूतोंसे अलाहिदा परलोक गत आत्म नामके पदार्थको मानते है तो बतलाइए? आप प्रत्यक्ष प्रमाणसे मानते है या अनुमान प्रमाणसे? प्रथम बात यह है कि प्रत्यक्ष प्रमाणसे साबित होही नहीं सक्ता है, क्योंकि नेत्रादिक इद्रियोंसे पदार्थका साक्षात्कार होनेका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है, सो किसीने भी नेत्रद्वारा आजतक आत्माको नहीं देखा। इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध नहा हो सक्ता। अगर प्रत्यक्ष प्रमाणसे देखा जाता तो घट पट मठ वगेरेकी तरह आत्मा भी नेत्रके समीप आकर मालुम होता।

आस्तिक–"स्थूऽलोह" "कृऽशोह" अर्थात् मैं स्थूल हूं, मैं कृश हूं इस भावनासे आत्मा प्रत्यक्ष हैं। वरना ऐसा कैसे प्रतीत होता कि मैं मोटा हूं? मैं पतला हूं? इत्यादि

नास्तिक–आत्मामें स्थूलता (मोटापन) वा कृशता (पतलापन) नहीं होती। क्योंकि यह वात शरीरमें देखी जाती है। इसलिये इस शारीरिक भावनाको आत्मिक भावना समझना आपकी वडी भारी भूल है।

आस्तिक–" याद रखना !-इस वातका जवाब मैं आगे जाकर दूंगा क्योंकि अभी मैं प्रसंग नहीं समझता। आगे जाकर मुझे आपके तोडे हुए प्रमाणोंकी सिद्धि करना है इसलिये आपको मौका दिया जाता है। वोलना हो उतना वोल लेवें; विना प्रसंगके आप वोल नहीं सकेंगे ऐसी जगहपर मैं खडा हो जाउंगा।

नास्तिक–"घट महं वेद्मि" याने घडेको मैं जानता हूं। इससे आत्माकी सिद्धि होतीहै ऐसी प्रतीति आत्माके होने परे ही होगी। क्योंकि वगैर ज्ञानके यह प्रतीति नहीं हो सकती है और आत्माहीका ज्ञान गुण है इसलिये ज्ञान की सिद्धि आत्माके अभावमें नहीं हो सकती है। ऐसा मत कहना। क्योंकि यह प्रतीति भी शरीरमें होती है सिवाय शरीरके आत्माका साक्षात्कार नहीं होता है। अगर अनहुइ वातको मानोगे तो कल्पनाका पारावार नहीं रहेगा और प्रतिनियत वस्तुका अभाव होजायगा।

आस्तिक–मित्रवर आपका यह कहना विलकुल वृथा है।

क्योंकि चेतनाके विना जड शरीरमें "अहं प्रत्यय" (मैं हूं ऐसा खयाल) नहीं होसकता। जैसे एक जड पदार्थहै तो इसमें अहं प्रत्यय अर्थात् मै हूं ऐसा खयाल कभी नहीं होसक्ता है।

नास्तिक-आपकी समझमे भूल है हम कब कहते हैं कि शरीर जड है, हमारा यह मानना है कि चैतन्यताके योगसे शरीर चेतनायुक्त होता है। जैसे आपलोग शरीरसे अलग आत्माको मानकर उसमें चेतनाको मानते हैं। हम वगेर आत्माकेही शरीरके कार्य्य ज्ञानको मानते हैं। इसलिये आपका शरीरको जड समझकर परहेजकर आत्माको मानना ठीक नहींहै।

आस्तिक-बतलाइये! जरा शरीरका कार्यज्ञान कैसे होसक्ता है? क्योंकि चेतना जीवका धर्म है न कि शरीरका।

नास्तिक-चेतना जीवका धर्महै आपका यह कथन वृथाहै, क्योंकि इसमें कोइ प्रमाण नहीं है। वगेर प्रमाणके कोइ बात नहीं मानी जाती अगर वगेर प्रमाणकेही आत्माको मानोगे तो तो आकाश कुसुमकोभी सिद्ध मानना पडेगा। अत: शरीरकाही अन्वय व्यतिरेकसे ज्ञानकार्य्य हो सक्ता है। देखिये? अब सिद्धकर दिखलाता हूं। अन्वय उसे कहतेहैं कि हेतु के होनेपर हेतु मदका होना पाया जाता है। मसलन धुआके होनेपर आगका होना पाया जाता है। साध्यके अभावमें साधनके अभावका विचार करना इसे व्यतिरेक कहतेहैं। मसलन आगके

अभावसे धुंआका अभाव मालुम करना। तथाहि

साध्य साधन भावोहि भावयोर्या दृगिष्यते
तयोरभावयोस्तमाद्विपरीतः प्रतीयते ॥१॥

मतलब उपरकी इवारतमें हल है। गौर करें! अन्वय व्यतिरेकके स्वरूपको समझाकर अब अन्वय व्यतिरेकसे ज्ञानको शरीरका कार्य्य सिद्धकर दिखलाता हूं।

आस्तिक—अच्छा सुना दीजिये? मैं चाहताहूं कि आप कुछ सुनावें ताकि आगे जाकर आपके मंतव्यको मैं अच्छी तरहसे खंडन करुं।

नास्तिक—हमारे ध्रुव मंतव्यका खंडन आप कभी नहीं कर सकते।

आस्तिक—इस बातसे क्या लेना लोग खुदही हमारी तुम्हारी युक्तियोंसे जान लेंगेकि किसकी युक्ति प्रबलहै। इस लिये अब प्रस्तुत विषयको श्रवण कीजिये!

नास्तिक—हम शरीरके कार्य्य ज्ञानको इस लिये मानते हैं कि जबतक शरीर है तब तकही ज्ञान है। शरीरके नाश होने पर ज्ञानका भी नाश हो सकता है। इसका प्रमाण इस प्रकार है—

यत्खलु यस्यान्वयव्यतिरेकावनुरोति तत्तस्य कार्य्यं।

यथाघटो मृत्पिडस्य शरीरस्यान्वयव्यतिरेकावनुकरोति चचैतन्यं तस्मात् तत्कर्तृत्व । इत्यादि

अर्थः–जो पदार्थ जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक रुप उभयतया सम्बन्ध रखताहे वो उसका कार्य्य होता है । मसलन मिट्टीका कार्य्य घडा कहलाताहै क्योंकि वगेर मिट्टीके घडा नहां वन सकता । अत मिट्टीके होनेपर घडा होताहै और घट विवर्त्ति मृत्तिकाके अभाव होनेपर घटकाभी अभाव होताहै । इससे सावित हुआकि घट मृत्तिकाके साथ अन्वय व्यतिरेकका, और मृत्तिकाका कार्य है । ऐसेही चैतन्यभी शरीरका अनुकरण करता है । क्योंकि शरीरके अतिस्तत्वमें ज्ञानका अस्तित्व होता है और शरीरका अभाव होनेपर चैतन्यकाभी, अभाव होताहै । इसलिये चैतन्य शरीरका कार्य्य है । अन्वय व्यतिरेकसे कार्य्य कारण भाव जाना जाता है। जैसे आगका कारण लकडी है और आग उसका कार्य्य है। इसलिये लकडी के होनेपरही आग पैदा होती है और लकडीके अभावसे आगकाभी अभाव होता है । इससे यही सावित हुआ कि अन्वय व्यतिरेकका कार्य आग लकडीके कार्य्यके समान है । लकडाके होनेपरही आगके होनेको अन्वय कहते है, इसका मतलब यह हुआकि किसी जगहपर कोईभी आदमी क्यों नचला जावे काष्ट प्रमुख साधनके विना आग कभी नहीं पैदाहो सकती ।

ये अन्वय हुआ और व्यतिरेक उसका नाम है कि काष्ट प्रमुख साधन न हो तो कहदेना कि आगभी नहीं हो सक्ती। इसी तरहसे शरीर ज्ञानका कारण है और ज्ञानकार्य्य है। क्योंकि शरीरके होनेपर चैतन्यकी उपलब्धि होती है और इसके अभावमें ज्ञानाभाव मालूम होता है। " अतःसिद्धं शरीरस्य कार्य्यं ज्ञानमिति " बस इससे ज्ञान शरीरका कार्य्य सिद्ध होगया।

आस्तिक—आपका यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि मुडदेके शरीरकी हस्ति होनेपरभी चैतन्यका अभाव मालूम पडता है। अतः अन्वय व्यतिरेकपणे शरीरका कार्य्य ज्ञान नहीं हो सक्ता।

नास्तिक—आपका कथन बिलकुल अनुचित है क्योंकि वायु और तेज दो पदार्थोंका मुडदेके शरीरमें अभाव होनेसे उसको हम शरीरही नहीं मानते हैं; वो तो थोथ मालूम पडता है। इसलिये चैतन्योपलब्धि नहीं होती। विशिष्टभूत संयोगकोही हम शरीर मानते हैं। क्योंकि अगर सिरफ शरीराकार मात्रमें ही चैतन्यता मानी जावे तो फिर दिवारपर चित्रे हुए घोडे हाथी बेल मनुष्य वगेरेके चित्रोंमेंभी चैतन्यताका प्रसंग आवेगा, इससे शरीरकाही कार्य्य चैतन्य ठीकहै। अतः चेतना संयुक्त शरीरमेंही " अहं प्रत्यय " (मैं हूं ऐसा खयाल) पैदा होता है, इस लिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे आत्मा सिद्ध नहीं होता है। अनुमान नीचे मुजब समझें! तथाहि

नास्त्यात्मा अत्यन्ता प्रत्यक्षत्वात् । यदत्यन्ता प्रत्यक्षं तन्नास्ति, यथा खपुष्प । यच्चास्ति तत् प्रत्यक्षेण गृह्यते एव यथा-घट' ॥ मतलब—अत्यन्त अप्रत्यक्ष होनेसे आत्मा नहीं है । क्योंकि जो अप्रत्यक्ष है वो चीजही नही है । जैसे आकाशका फूल । जो चीज प्रत्यक्ष है वो दिखलाइभी देती है जैसे घडा । परमाणुभी अप्रत्यक्ष है लेकिन वे जब घटादिक कार्य्यमें परिणत होते है तब दिखलाइ देते है । मगर आत्मा किसी सूरतमें प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये अत्यता प्रत्यक्ष यह विशेषण दिया गया है । इससे परमाणुमें व्यभिचार नहीं आता है ।

अनुमानसेभी आत्मा सिद्ध नहीं होता । क्योंकि " लिङ्ग लिङ्गि सबन्ध स्मरण पूर्वक ह्यनुमान " मतलब साध्य साधनके सबधका स्मरण ज्ञान जब होता है तबही अनुमान होता है । जैसे पेश्तर महानस (रसोडा) में आग और धुआका सबध अन्वय व्यतिरेकवाली व्याप्तिसे प्रत्यक्ष देखेगा कि ठीक है । जहा धूम होता है वहा आग जरुर होती है, और जहा आग नहीं होती वहा धूआ व्याप्ति ज्ञान होनेके बाद किसी उपवनमे या पहाडकी कदरामें आकाशको अवलबन करती हुइ धूम लेखाको देखकर पूर्व दृष्ट (पहले देखा हुआ) आग धूआके सबधको याद करता है, कि जहां जहा मैंने धूआको देखाथा वहा वहा आगभी होतीथी जैसे कि रसोडेमें । यहापर भी धूआ मालूम होता है इस लिये आग जरुर होगी । इस तरह

से हेतुका ग्रहण करना और संबंधका स्मरण करना इन दो बातोंसे अनुमान पैदा होताहै । हेतुके व्याप्ति ज्ञानके प्रत्यक्ष होनेपर अनुमान होता है । इसलिये मंत्यकी इल्मदानोंने अनुमानका एक हिस्सा प्रत्यक्ष मानाहै । जब कोइभी हिस्सा जिस बातका प्रत्यक्ष नहीं होगा वो बात अनुमान पथमें कभी नहीं आ सकेगी । इसलिये आत्माका कोइ हिस्सा प्रत्यक्ष न होनेकी वजहसे अनुमानसेभी आत्माकी सिद्धि नहीं होसक्ती है ।

आस्तिक—सामान्य तो दृष्टानुमानसे (साधारण तोरपर देखे हुए अनुमान) सूर्यकी गतिकी तरह क्या आत्माकी सिद्धि नहीं हो सक्ति है ? यथा ॥ गति मानादित्यो, देशान्तर प्राप्ति दर्शनात् । देवदत्तवत् इति यतोहन्त देवदत्ते दृष्टान्त धर्मिणि सामान्येन देशान्तर प्राप्तिर्गति पूर्विका प्रत्यक्षेणैव निश्चिता सूर्य्योपि तत् तथैव प्रमाता साधयति—इति सुक्तं ॥ देवदत्तकी तरह देशान्तरमें प्राप्ति होनेसे जैसे सूर्य्य गतिवाला है । यहांपर देवदत्तका दृष्टांत ठीक है । क्योंकि देवदत्तकी दूसरे देश प्राप्ति प्रत्यक्ष चलनेसे निश्चित है इससे सूर्यकी गतिका अनुमान होता है, ऐसे सामान्य दृष्टानुमानसे आत्माकी सिद्धि हो जावे तो क्या हरकत है ?

नास्तिक—क्यों नहीं हरकत जरूर है । क्योंकि देवदत्तकी गति तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे निश्चित है । आत्माकी सिद्धिमें कोइ पुष्ट प्रमाण नहीं है ।

आस्तिक—आगम प्रमाणसे तो आत्माकी सिद्धि जरुर हो सक्ती है। क्योंकि अविवादास्पद वचन कहनेवाले आप्त पुरुषने शास्त्र रचे हैं। इस लिये आपको चाहिये कि आगम प्रमाणका सादर स्वीकार करें।

नास्तिक—नहीं जी नहीं, हम इस बातको कभी न स्वीकारेंगे। क्योंकि ऐसा कोइभी पुरुष नजर नहीं आताहै कि जिस्के तमाम वचन अविसंवादी होसकें, और आगम परस्पर विरुद्ध होतेहैं। एक आगम कुछ कहताहै, तो दूसरा कुछ कहताहै, झट भरम पड जाता है कि कोनसा आगम सचाहै और कौनसा झूठा। इस तरहके संदेह रुप अग्नि ज्वालासे आगम ज्ञानके दग्ध होनेसे आगम ज्ञानसे भी आत्मसिद्धि बतलाना बिल्कुल हिमाकत (मूर्खता) में दाखिल है, और अपने दिलमें आप यहभी घमड न रखें कि उपमान प्रमाणसे आत्मसिद्धि हो सकेगी। क्योंकि उपमान उस्का नाम है कि जैसे किसी शख्सने किसीसे पूछा क्यों जी! रोझ कैसा होता है? उस्ने जवाब दियाकि मानिंदगो (बैल) के मालूम होता है। इस उपमाको श्रवण कर वोही आदमी किसी दिन जगल्में गया। आगे चलकर देखता है तो रोझ आ रहाथा उस्ने इस प्राणीको कभी नहीं देखाथा मगर फिरभी उसे इल्म हासिल हुआ। क्योंकि उस्ने उस्का आकार गोसदृश देखा तो झट स्मृती हुइ व त या~ आ~ कि "गोम-

हशोगवयः" अर्थात् मानिंद गोके गवय (रोझ) होता है। इससे समझ लिया यह रोझ है। जीवके लिये इस तरहका उपमान प्रमाण तीन जगत्में नहीं है कि जिससे जीव उपमित हो सके। अगर कहा जावे कि कालाकाश दिगादिक जीव तुल्य हैं तो यहभी ठीक नहीं। क्योंकि इन पदार्थोंकाभी निश्चय नहोनेसे इन्हेंभी तद्वत् समझें, और अर्थापत्तिसेभी आत्मा सिद्ध नहीं हो सक्ता है। क्योंकि अर्थापत्तिका स्वरूप ऐसे लिखा है कि, जैसे किसीने कहा कि "पीनोदेवदत्तः दिवान भुङ्क्ते (भुंक्ते)" अर्थात् लष्टपुष्ट देवदत्त दिवसमें नहीं खाता है; तो इससे सावित होता है कि रात्रि को खाता होगा। क्यों कि वगैर खानेके लष्टपुष्ट नहीं हो सक्ता है। यहांपर पीन (लष्टपुष्ट) इस विशेषणने जबरदस्ती रात्रिको खाना साबित किया, तो आत्मासिद्धिके वारेमें कोइ अर्थापत्तिरुप प्रमाणभी नही है कि जिस्के वलसे आत्माकी सिद्धि की जावे। पूर्वोक्त पांच प्रमाणोंसे रहित होनेसे आकाशके फूलकी तरह आत्मा नामकाभी कोइ पदार्थ मौजूद नहीं है। अगर है तो प्रमाणद्वारा वतलाइये ?

आस्तिक—बडी खुशीका वक्त है जो आपने मुजको सर्वथा बोलनेके लिये मौका दिया। अब जरा अच्छी तरहसे कानोंका मैल निकालकर एकाग्र चित्तकर श्रवण करें। मगर इतना याद रहे जिस तरहसे मैं आपकी तहरीरको बढानेको हरदम अपनी

बातको कमजोर रखकर मौका देता रहा इसी तरहसे आपभी प्रसगोपात खडे हो जाया करिये ! और मुझे मौका दीजिये। मगर आप अपने पक्षको कमजोर न रखें जितना जौर लगाना हो उतना बेशक लगा दीजिये ! कमजोरी नहीं दिखलानी।

नास्तिक–प्रिय मित्र ! आप बेशक जोर लगावें हमने तो अच्छी तरहसे आपका मतव्य खडित कर दियाहै। अब आप अपने मतव्यका मडन करें प्रसग पाकर मैं बीचमें सवालो जबाब करनेको हरदम तयारहू।

आस्तिक–प्रत्यक्ष प्रमाणसेही आत्माकी सिद्धि हो सक्तीहै इस लिये प्रथम कहाथा कि पचभूतोंके सिवाय आत्म नामका पदार्थ नहींहै, आपका यह कथन सर्वथा असत्य है। देखिये ! "सुखमहमनुभवामि" इसका मतलब यह है, मैं सुखका अनुभव कर रहाहू। यहापर हरएक समज सक्ताहै कि सुख ज्ञेयहै और मैं ज्ञाता हू यानि सुख जाणने लायक है और मैं जाननेवाला हू। सुख अलाहिदा पदार्थ है और जाणनेवाला अलाहिदा पदार्थ है। अत' सुखको जानना चैतन्य गुण विशिष्ट आत्माकाही कामहै। यह प्रत्यय (विश्वास) मिथ्याहै ऐसा न समझें। यत इस्का कोइ बाधक नहींहै। जो इस बातको मुखालफ बनकर न झूठी सिद्ध कर सके, और न इसमें किसी तरहका सदेहहै। क्योंकि सशय दोकोटीके मिलनेसे बनताहै। इसी तरहका लक्षण बाद्धि

देवसूरि महाराजने प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकारमें बयान कियाहै। तथाहि:—

साधक बाधक प्रमाणाभावाद नव स्थितानेक कोटि संस्पर्शि ज्ञानं संशयः

मतलब जिस ज्ञानको साधक व बाधक इन दोनों प्रमाणोंमेंसे कोइभी लागु न पड सके, ऐसा अवस्थाहीन अनेक कोटी (दोकोटी) को अवलंबन न करनेवाला ज्ञानहो उस्को संशय कहतेहैं। जैसे दूरसे ठूंठको देखकर भ्रांति पडती है कि यह क्या पुरुषहै। अथवा ठूंठहै। इस अवस्थामें उभय कोटी रहती है और उसवक्त कोइ नियामक प्रमाण नहीं होता। सो यहांपर " अहं सुख मनुभवामि " इस जगहपर उभय कोटीका अभाव होनेसे संदेहभी नहींहै, और इस प्रकारके प्रत्ययको अनालंबन माननाभी ठीक नहीं। क्योंकि इसको अनालंबन मानोगे तो फिर रूप ज्ञानरस ज्ञान वगेरेको भी अनालंबन मानना पडेगा।

नास्तिक—" अहं सुख मनुभवामि " इस किस्मके प्रत्यय (ज्ञान)का आलम्बन करके हम शरीरको मान लेवें तो क्या हर्जहै?

आस्तिक—हर्ज क्यों नहीं! शरीर किसी सूरतभी आलंबन नहीं होसक्ता। क्योंकि इस प्रकारके अनुभवकी पैदायश बहारके कारणोंकी अपेक्षा बगेर आन्तरिक वृत्तिके व्यापारसे

होती है। इस लिये शरीरसे अलाहिदा इसके आलम्बनभूत कोइ ज्ञानवान पदार्थ स्वीकारना चाहिये। जो ज्ञाता बन सके सो बस ऐसा आत्माही होसक्ताहै और यहभी याद रहे! जिस चीजका गुण प्रत्यक्ष होताहै वो चीज तो स्वतः प्रत्यक्ष होजायगी। मसलन घटका रूप प्रत्यक्ष होताहै तो घटका प्रत्यक्ष तो आपही माना जाताहै। इसी तरहसे आत्माका गुण ज्ञान जब प्रत्यक्षहै तो आत्माको तो आपही प्रत्यक्ष मानना पडेगा। बस इससे साबित हुआ कि आत्मा प्रत्यक्षहै।

नास्तिक–मैं पूर्व शरीरको चेतनाके योगसे सचेतन सिद्ध कर चूका हूं, इसलिये सबकाम शरीरसेही मैं मानता हूं।

आस्तिक–देवना प्रिय! तेरा यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि चेतनाके योग होनेपरभी स्वयं चेतन होगा उस्केलिये ही अहं प्रत्यय मानना योग्य है नकि अचेतनके लिये। मसलन घडेपर हजारों चिरागोंकी रोशनी गिरने परभी स्वयं अप्रकाशक घट कभी प्रकाशक नहीं बन सक्ता। लेकिन दीपकही प्रकाशक कहलायगा। इसीतरह चेतनाका योग होनेपरभी गूढ अचेतन शरीर ज्ञाता सिद्ध नहीं होसक्ता। किन्तु आत्माही ज्ञाता (जाननेवाला) कहलायगा। इसलिये अहं प्रत्ययसेही आत्माकी सिद्धि होचूकी। बतलाइये, अब कौनसी बात बाकी रही।

नास्तिक—प्रथम मैंने कहाथा कि "अहं स्थूलः" "अहं कृशः" यह प्रत्यय शरीरमें होताहै नाकि आत्मामें। इसका क्या जवाब है ?

आस्तिक—देखिये ! मैं स्थुल हूं, मैं कृश हूं इसबातकी प्रतीतिभी आत्मासेही होगी। हां बेशक आत्मा स्थूल व कृश नहीं होता मगर पतले व मोटे शरीरको जाननेवाला होताहै। अगर बगैर आत्माकेही यह विचार पैदा होतातो फिर मुडदा भी इसी तरह विचारता कि मैं स्थूल हूं या कृश हूं, जिंदा हुं या मरा हूं ? मगर मुडदेमें यह खयाल कभी नहीं आता। इसलिये सर्व कार्य्य गमना गमनादिक चेष्टाका कर्ता आत्माकोही मानना पडेगा।

नास्तिक—ठीकहै, आपकी दलीलको मैं मानता हूं मगर आप हमारी पीछेकी दलीलोंको भूलगये हो ऐसे मालुम देता है। क्योंकि हमने पेश्तर साबित कर दिखलायाहै कि अन्वय व्यतिरेकसे शरीर चैतन्यका कारण है फिर झगडा किस बातका करते हो ?

आस्तिक—महापंडितजी ! जरा विचार देखते तो आपको साफ मालुम पडता कि अन्वय व्यतिरेकसे शरीर ज्ञानका कारण कभी नहीं हो सक्ताहै। इसलिये कि शरीरके साथ चेतनाका अन्वय व्यतिरेकवाला ताल्लुक नहीं है। देखिये ! इसी

बातको जतलाते हैं। प्रिय पाठकगण! नास्तिकने कहाथा कि "शरीर होताहै तो चैतन्य होताहै और शरीरका अभाव होताहै तो इधर चैतन्यकाभी अभाव उपलब्ध होताहै" इस अकलसे खिलाफ बातको कौन मंजूर करेगा? क्योंकि अगर चैतन्यका कारण शरीरहै तो फिर मरनेवाले मूर्छावाले और सोये हुए मा- लिम पांच भूत करके युक्त (वायु तेज सहित) शरीरके होने- परभी वेसा चैतन्य क्यों नहीं मालुम देता है? कई मोटे शरीरवाले बेवकूफ होते हैं और कई पतले शरीरवाले अकल- मन्द होते हैं। इसलिये अन्वय व्यतिरेक तथा चैतन्य शरीरका कार्य्य नहीं होसक्ता है।

क्योंकि जरा देख लेवें! आग लकडीका कार्य्य है तो जहां लकडीयें बहोतसी पाइजाती है। वहां आग ज्यादा भडक उठ- ती है और जहां लकडीयें थोडी इकट्ठी की होती हैं वहां आ- गभी थोडीही पैदा होती है। मतलब थोडी लकडीयें मिलनेपर थोडी और बहोत लकडीयें मिलनेपर बहोत आग होती है। क्योंकि आग लकडीयोंका कार्य्य है। इसी तरहसे अगर ज्ञानको आप शरीरका कार्य्य मानते हो तो जिसका शरीर स्थूल (मोटा) है उसको ज्यादा ज्ञान होना चाहिये। और जिसका शरीर कृश है उसको कम ज्ञान होना चाहिये, मगर इससे वि- परीत बातभी सेंकडों जगहपर देखते हैं। इसलिये नास्तिकका कहना बिल्कुल वृथाहै।

नास्तिक–आपने प्रिय पाठकगणको जो सुनाया सो सुन लिया। आपने प्रिय पाठकगणको क्यों याद किया? क्या मध्यस्थ टोलतेहो? कोइ जरुरत नहीं मुझेही आप मध्यस्थ समझो। मैं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करनेको उपस्थित हूं नाकि वितंडा वाद करनेको। इसलिये आप मुझे यह बतलावें कि भूतोंका चेतन्य कार्य्य नहीं है किंतु आत्माकाही गुण चैतन्य है। इस बातको किस प्रमाणसे साबित करते हो सो जरा सुना दीजिये।

आस्तिक–प्रथम भूतोंका कार्य्य चैतन्य किसी सूरत नहीं होसक्ता। बतलाइये! किस प्रमाणसे साबित करते है। अवल प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो होही नहीं। अब रहा. सां व्यवहारिक प्रत्यक्ष (इंद्रिय जन्य प्रत्यक्ष ज्ञानका नामहै) सो इसकी अतींद्रिय विषय में प्रवृत्तिही नहीं होसक्ती है, और चैतन्य अरुपी होनेसे अतींद्रिय (इंद्रियोंके विषयमें न आसके ऐसा) है। फिर आप कैसा कह सक्ते हैं कि चैतन्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे भूतोंका कार्य्य है। क्योंकि सां व्यवहारिक प्रत्यक्ष स्वयोग्य सन्निहित और रुपी पदार्थको ग्रहण करता है सो चैतन्य अमूर्त्त (अरुपी) पदार्थ है। इसालिये इसको ग्रहण योग्य नहीं होसकता है।

नास्तिक–" भूता ना महं कार्य्यं " अर्थात् भूतोंका मैं कार्य्य हूं इस प्रकारसे भूतोंका कार्य्य चैतन्य प्रत्यक्ष ग्राह्य है।

क्योंकि आपनेभी " अहं सुख मनुभवामि " में सुखका अनु-कर रहाहूं, इस बातका प्रमाण देकर आत्माकी प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्धि कीथी। हमभी इसी तरहसे कह सकते हैं। बतलाइये! क्या हर्ज है?

आस्तिक—हमारी तरह आप " भूतानामहं कार्य " भूतोंका मैं कार्य हूं, ऐसा नहीं कह सकते हैं। क्योंकि कार्य्य कारण भाव अन्वय व्यतिरेकसे जाना जाता है। सो आपके मतमें भूत और उनके कार्य्य चैतन्यसे अतिरिक्त (अलाहिदा) कोइ ज्ञाता (जाननेवाला) पदार्थ नहीं है। जिससे जाना जावे कि ठीक चैतन्य भूतोंका कार्य्य है। अगर इन दोनोंसे तीसरा अलाहिदा कोइ ज्ञाता मानलिया जावे तो वो आत्माही सिद्ध हो गया! फिर मगज खोरी किस बातकी करते हो " इसलिये आपके मतमें कार्य्य कार-णकी पहिचान करने वाले तीसरे पदार्थके न होनेकी वजहसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे भूतोंका कार्य्य चैतन्य कभी सिद्ध नहीं होसक्ता। अनुमानसेभी चैतन्य भूतोंका कार्य्य सिद्ध नहीं होसक्ता। प्रथम आप अनुमानका स्वीकारही नहीं कर सकते हैं " प्रत्यक्षमेकं प्रमाण नान्यदिति वचनात् " यानि प्रत्यक्षही एक प्रमाण है अन्य नहीं। ऐसा कथन करनेसे अगर फर्जी तोरपर आप अ नुमानको मानभी लेवें तोभी आपका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सक्ता। देखिये! आपका कहना है कि " तनुकायाकार परिणतेभ्यो भूतेभ्यश्चैतन्य समुत्पद्यते तद्वारएव चैतन्य भा-

वात् । मद्यांगेभ्यो मद शक्तिवत् " भावार्थः—कायाकार परिणत भूतोंसे चैतन्य पैदा होता है तद्भावसेंही चैतन्यका सद्भाव होनेसे मद्यके अंगमें मदशक्तिकी तरह इस अनुमानसे भूतोंका कार्य्य चैतन्यको सिद्ध करते हो मगर यह अनुमान ठीक नहीं है। क्योंकि " तद्भाव एव चैतन्य भावात् " याने भूतोंका अस्तित्व होनेपरही चैतन्य होनेसे यह हेतु (सबब) अनेकान्तिक है। यतः मृत अवस्थामें शरीराकार भूतोंके होने परभी चैतन्यका अभाव होनेसे हेतु सिद्ध है।

नास्तिक—पृथ्वी, पानी, आग, हवा, इन चार भूतोंके इकठे होनेपर चैतन्य पैदा होता है; सो मृत शरीरमें आग हवाके न होनेसे चैतन्य मालूम नहीं होता।

आस्तिक—यहभी एक आपका गलत खयाल है। क्योंकि मृत शरीरमें पोलाड होनेसे वायुकी संभावना जरुर होती है, अगर वहां वायुकी विकलतासे चैतन्य नहीं मालूम होता है तो बस्त्यादिकके जरीये वायुका संचार करनेपर चैतन्य मालूम होना चाहिये मगर होता नहीं। इससे सिद्ध है कि भूतोंसे चैतन्य नहीं हो सक्ता है।

नास्तिक—और किसमके वायुके संचारसे कुछ नहीं हो सक्ता। प्राणापान (श्वासोश्वास) रूप वायुकी जरुरत है। सो ऐसे वायुके अभावसे चैतन्योपलब्धि नहीं होसक्ती।

आस्तिक—यह भी बात अघटित है। क्योंकि अन्वय व्यतिरेकताका अभाव होनेसे प्राणापान (श्वासोश्वासादि) भी चैतन्यका कारण नहीं होसक्ता। इसलिये कि जब मरण अवस्था नजदीक आती है तब अतिदीर्घ प्राणापान (श्वासोश्वास) के होनेपर भी चैतन्यकी न्यूनताही देखी जाती है, और मन, वचन, कायाके योगको रोककर प्राणापानका निरोध करनेवाले योगीयोंमे प्राणापानके अल्प हो जानेपरभी चैतन्यकी वृद्धि देखी जाती है। इससे साबित होता हैकि प्राण और अपानभी चेतनके कारण नहीं हो सक्ते है।

नास्तिक—मुडदेमें आगका अभाव होनेसे वायुके सचार करनेपरभी चैतन्य नहीं हो सक्ता।

आस्तिक—वाह! खुब सुनाया, आपके दिल्में तो यह कुतर्क बडी पहाड जैसी माल्म होती होगी मगर याद रहे, हमारे पास तो एक जरा (परमाणु) रुप माल्म देती है। सुन लीजिये! अगर आगके अभावसे चैतन्य प्रगट नहीं होता तो जिस वक्त मुडदेको चितामें डालते हैं, जहांकि आग धख धख करती उछलती है उस वक्त फौरन चैतन्य पैदा होजाना चाहिये, और चितासे उठकर भागना चाहिये। मगर भागे कहांसे! जीवात्मा तो परलोकमें पहुच गया फिर भागेगा कौन? इससे आपको अच्छी तरहसे माल्म होगया होगाकि आपके

स्लमान धर्मी भाई यूंही अपनी गप्पे शप्पे मारकर काम चलाते हैं।

नास्तिक-यह तो ठीक कहा मगर औरभी कोइ दलील पेश करें।

आस्तिक-लो सुन लो। प्रथम वायु तेजके अभावसे चैतन्य नहीं मालुम होताहै। इस वातपर वहोतसे प्रमाण देकर आपको झूंठे सिद्ध किया और मरनेपरभी पांच भूतोंका एकीभाव हो सक्ता है यह वतलाया। मगर अव फर्ज करोकि आप सचे हैं और वायु तेजके अभाव होनेसे चैतन्य नहीं पैदा होता। इस वातको सची मान ली जावे तोभी आपकी वात सिद्ध नहीं हो सक्ति।

क्योंकि कुछ कालके वाद उसी मृत शरीरमें कीडे पैदा होते हैं, वतलाइये? उनमें कैसे चैतन्य पैदा होता है? अगर उनमें हवा और तेज तत्त्वके प्रकट होनेसेही चैतन्य पैदा होता है तो यह कैसे सिद्ध हुआकि शरीरमें तेज हवाके न होनेसे चैतन्य नष्ट होता है। क्योंकि तुम्हारे मतके मुताविक शरीरान्तर्गत कीटोंका पैदा होना तवही माना जायगा जवकि हवा और तेज तत्त्व मिलेंगे।

जव हवा और तेज तत्व का शरीरमें संचार मानोगे तो कीटोंके साथ मानुषी शरीरके अंदरभी गमनागमनादिक

चेष्टायें खडी होनी चाहिये । मगर होती नहीं । बस इससे आपकी तमाम अज्ञानताको लोग बखूबी समझ सक्ते है तो मैं क्या समझाउंगा। बाद भूतमात्रको चैतन्यका कारण माननाभी एक हमाकत (बेवकूफी) है। क्यों कि कारणमें कुछ फर्क न होनेकी वजहसे जहां भूत होगा वहां चैतन्य मानना पडेगा । क्यो कि चेतन्य जन्य है और भूत जनक है। इस लिये हमेशह घटादिकमें भी पुरुषकी तरह व्यक्त चैतन्य की पैदायश होनी चाहिये, और ऐसा होनेपर घट और पुरुषमें कोइ विशेषता नहीं रहेगी।

नास्तिक-प्राणापान सहित शरीराकार भूतोंको हम चेतन्यका जनक मानते हैं, इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

आस्तिक-आपका यह कथनभी भस्म में घी डालनेकी तरह निष्फल है। यतः आपके मतमें भूतोंका शरीराकार परिणामही नहीं हो सक्ता है। देखिये ! सोही बतलाते है। उस कायाकार परिणामका कारण कहिये । पृथ्वी आदिक भूतोंको मानते हैं? या कोइ अलाहिदा निमित्त मानते हैं? अथवा तो अहेतुक मानते है?

प्रथम पक्षको तो ग्रहणही नहीं करसक्ते हो। क्योंकि पृथिव्यादिक भूत हरएक जगहपर मालुम होते है। इससे सर्वत्र कायाकार परिणाम उपलब्ध होना चाहिये । अगर कहोगे पृथ्वी आदि भूतासे अलाहिदा कोइ कारण है, जिससे शरीरा-

कार भूतोंका परिणाम होताहै तोभी ठीक नहीं। क्यों कि ऐसा स्वीकारने पर आत्माही स्वीकार किया गया और इससे आत्मसिद्धि रूप पाश फिर आपके गलेमें आगिरा। जिस्में बद्ध होकर भागना मुश्किल हो गया अहाहाहा!!! इस दूसरे विकल्पने तो खूब आपको जकड लिये जरा आंखें खोलकर पाँवकी तरफतो निगाह करेंकि किस कस्मकी दशा पडी है।

नास्तिक–नहीं मैं दूसरे विकल्पको नहीं मानता हूं गल्तीसे मुख खुल गया! और झट यह विकल्प निकल गया! इस लिये अब मैं इससे इनकारी हूं; और अहेतुक रूप तीसरे विकल्पका स्वीकार करता हूं। बतलाइये! इसमें क्या दोष है?

आस्तिक–शरीराकार परिणामको अहेतुक माननाभी ठीक नहीं है। क्योंकि अगर अहेतुक मानोगे तो आकाश कुसुम, वंध्यापुत्र, गर्दभ शृङ्ग आदिके सद्भावकाभी प्रसंग आवेगा। इसलिये मेरी इस नसीहतको याद रखेंकि अक्लमंद लोग वगैर दलीलके किसीभी बातको मंजूर नहीं कर सक्ते? और अहेतुक पदार्थके माननेसे "सदा भावादिका" प्रसंग आवेगा।

"नित्यं सत्त्व मसत्त्वं वाहेतोरन्यानपेक्षणादिति वचनात्"

इसलिये तुम्हारे मानने मुजब भूतोंका शरीराकार परिणाम होनाही असंभवित है। इससे आपकी अच्छी तरहसे तसल्ली होगइ होगी।कि ठीक भूत चैतन्य जनक नहीं होसक्ता

किंतु जीवात्माका गुण है ।

नास्तिक-आपका कहना ठीक है आपने हमारे मतव्यका बराबर खंडन कर दिया । मगर जितना जोर हमारे मतव्यके खंडनमें लगाया उतना व-उससे अधिक अपने मनव्यके मडनमें लगाइये और आत्माको अच्छी तरहसे प्रत्यक्षादि प्रमाणसे सिद्ध कीजिये ।

आस्तिक-लीजिये, आत्मा प्रत्यक्ष है इसके गुण चैतन्यके प्रत्यक्ष होनेसे जिसका गुण प्रत्यक्ष है वो गुणीभी प्रत्यक्ष होता है । प्रयोग ऐसे है-"प्रत्यक्ष आत्मा स्मृति जिज्ञासादि तद्गुणाना स्वसंवेदन प्रत्यक्षत्वात् । इह यस्य गुणा'प्रत्यक्षा' सप्रत्यक्षः दष्ट' यथाघट इति प्रत्यक्ष गुणश्च जीवस्तस्मात् प्रत्यक्षः " ॥

मतलब-स्मरण ज्ञान व जिज्ञासादि (जाननेकी इच्छा) आत्माके गुणोंके प्रत्यक्ष होनेसे आत्माभी प्रत्यक्ष है । क्यों कि जगत्में यह एक साधारण नियम है कि जिसका गुण प्रत्यक्ष है उस गुणका धर्त्ता गुणीभी प्रत्यक्षही होताहै । यत बगैर गुणीके गुण नहा रहसक्ता-" यत्रेव योदष्टगुण, सतत्र, कुभादि वन्निष्प्रतिपक्षमेतदिति वचनात् " जैसे घटको जिस जगहपर देखतेहै उस्को रुपादि गुणभी उसी जगहपर होते है। इसलिये जब गुण प्रत्यक्ष होताहै तो घटभी प्रत्यक्ष होता है। इसी तरहसे स्मरण ज्ञान हमें प्रत्यक्ष होता है कि इस वक्त मैं

फलानेको याद कर रहाहूं । इसीतरह जिज्ञासादि अनुभवभी साक्षात् होता है तो इन गुणोंका आधार आत्मा अप्रत्यक्ष कैसे होसक्ता है । जैसे आकाशका गुण शब्द मगर आकाश प्रत्यक्ष नहीं है ।

नास्तिक–हम इस बातको मानतेहैं कि स्मरण ज्ञान वगेरा आत्माके गुण प्रत्यक्ष है मगर आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता है। क्यों कि यह कोई नियम नहीं है कि जिस्का गुण प्रत्यक्षहो उस्का गुणीभी प्रत्यक्ष होसके !

आस्तिक–कौन कहता है ? नियम नहीं है यह बराबर नियमहै कि जिसका गुण प्रत्यक्ष है उसका गुणी अवश्यमेव प्रत्यक्ष रहेगा । आपने आकाशमें व्यभिचार दिखलाया सो आपकी समझका फर्क है । कौन कहता है आकाशका गुण शब्द है ? शब्द पुद्गलका गुण है इंद्रियका विषय होनेसे रुपकी तरह अगर इस बातका अच्छी तरहसे निरुपण करना चाहे तो इस निबंधके बराबरका निबंध तैयार हो सक्ताहै । इस लिये यहांपर इस बातको लंबायमान करना ठीक नहीं मालूम होता। जिस्को देखनेकी (इच्छा) हो स्याद्वादमंजरी–षट्दर्शन समुच्चय –रत्नाकरावतारिका–सम्मतितर्क–आदि ग्रंथोंको देख लेवें ।

नास्तिक–अच्छाजी गुण के प्रत्यक्ष होनेसे गुणीका प्रत्यक्ष होना तो मान लिया गया; मगर शरीरमेंही ज्ञानादि गुण पैदा होते हैं इसलिये शरीरको ही उनका गुणी मानलिया

जावे तो क्या हरकत है ?

आस्तिक–किस तरहसे मानलिया जावे कोइ सबूत दो अगर सची बात हुइ तो हमभी मान लेंगे। क्या फिकर है।

नास्तिक–देखिये ! दलील यह है तथाहि।

ज्ञानोदयो देह गुणा एव,
तत्रैवोपलभ्य मानत्वात्।
गौरकृश स्थूलत्वादि वत्।

भावार्थ–ज्ञानादि गुण शरीरमेंहि पैदा होते हैं। ऐसा माऌम पडनेसे शरीरके हि गुण है। गोरापन अथवा मोटापन व पतलापन आदि धर्म शरीरमें माऌम होते है। इसलिये अकल मंद उन्हें शरीरकेही गुण मानते हैं। इसी तरहसे यहापर भी आप समझ लेवें।

आस्तिक–आपका यह अनुमान बिल्कुल झूठा है। क्या कि आपके अनुमानान्तर्गत हेतु नहीं है, किन्तु प्रत्यनुमान बाधित होनेसे हेत्वाभास है। तथाहि

देहस्य गुणा ज्ञानादयो न भवन्ति,
तस्य मूर्तत्वाचाक्षुप त्वाद्वा घटवत।

अर्थ–ज्ञानादिक शरीरके गुण नहीं हो सक्ते हैं। क्यों कि

शरीर रूपी है और नेत्रसे देखा जाता है। ज्ञान अरूपी है और नेत्रसे देखा नहीं जाता। इस प्रकारका ज्ञानादि गुणोंमें वैपरित्य होनेसे शरीरके गुण नहीं हो सक्ते।

जैसे घटरूपी और चाक्षुप (देखनेमें आवे) है तो उसका गुण ज्ञान नहीं बन सक्ता। इससे साबित हुआ कि अमूर्त्त आत्माकाही अमूर्त्त ज्ञान गुण हो सक्ता है। जब आत्माकाही गुण ज्ञान सिद्ध हुआ तो इस्के प्रत्यक्षसे आत्माभी प्रत्यक्ष सिद्ध हो चूका। इसलिये अत्यन्त अप्रत्यक्ष होनेसे आत्म कोइ पदार्थ नहीं है, आपका जो कहना था सो बाल भाषित था। क्योंकि अनेक युक्ति द्वारा हम आत्माको प्रत्यक्ष सिद्ध कर चूके हैं।

नास्तिक–भला प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो आपने आत्माको सिद्ध करदिया। मगर अब अनुमानसे तो जरा दिखलावें किस तरहसे सिद्ध होता है?

आस्तिक–लो अब अनुमानसे देख लेवें। इसकी सिद्धि करनेको कितने अनुमान खडे हो जाते हैं यहभी ख्याल रखना। 'अनुमान' प्रयत्नवाले कर अधिष्ठित शरीर जीव वाला है। क्योंकि यह शरीर खाने पीने आने जाने रुप क्रिया तबही करता है; जब भीतरके प्रेरककी इच्छा होती है। अगर भितरके प्रेरककी इच्छा नहो तो कुछभी नहीं कर सक्ता। इससे सिद्ध

हुआ कि चरने वाला आत्मा है। जैसे रथ बाहरको जाता है या शहेरमें आता है तो उस वक्त हम जानते हैं कि इसके अंदर चलानेवाला जरूर है–इसी तरहसे शरीरभी मानिंद रथके है। इसकोभी चलाने वाला जरूर होना चाहिये। बस वोही आत्मा है।

दूसरा अनुमान यह है कि हमारे शरीरकी आदि और प्रतिनियताकारता (लंबापन व चोडापन जिसका हदवालाहो) होनेसे इसका बनानेवाला कोइ जरुर होना चाहिये। जैसे घडा खास दिन पैदा होनेसे आदि वालाभी है और हदवालाभी है। तो इसका बनानेवाला कुभार जरर है। बस इसी तरहसे उपरली दोबातें यानि प्रतिनियताकार और आदि येह दोना बातें शरीरमें पाइ जाती है। इस लिये इस शरीरका भी कोइ बनाने वाला होना चाहिये। बस सोही जीव है, इस अनुमानसे आपकोभी कोइ बनानेवाला मानना पडेगा। इससे आपको जीवकाही शरण लेना पडेगा जिस वास्ते परहेज करनेका थ वोभी गलेमें डालना हुआ। अब व्यतिरेक देखिये, जिसका कोइ कर्ता नहीं है वो पदार्थ आदि और प्रतिनियताकार इन दो बातोंसे शून्य होता है जैसे आकाश।

नास्तिक–आपके अनुमानमें व्यभिचार है। क्योंकि मेर पर्वतका प्रतिनियत आकार (हद वाला) है। मगर आप इसको अनादि (शाश्वत) मानते हो यानि इसका कोई

कर्त्ता नहीं है।

आस्तिक–आपका कथन सर्वथा असत्यहै। क्योंकि मेरु प्रतिनियताकारवाला है मगर आदिवाला नहीं है। इस लिये आदिमत् विशेषणकी तरफ खयाल करते तो फौरनही समझ जाते कि व्यभिचार नहीं आता है।

तृतीय अनुमान यह है कि हमारा यह शरीर भोग्य है, (भोगमें लाने लायक है) जो चीज भोगमें ली जाती है; उसका भोक्ता (भोगनेवाला) जरूर होता है। मसलन चांवल भोग्य है, तो उसके भोगनेवाले मनुष्य वगेरा जरुर होते हैं। इसीतरह जब शरीर भोग्य है, तो उसके भोगनेवाले मनुष्य वगेरा जरुर होते हैं। इसी तरह जब शरीर भोग्य है; तो इसका भोगनेवालाभी होना चाहिये। बस इसका जो भोक्ता है, वोही हमारा माना हुआ आत्मा है। इससेभी जीवकी सिद्धि हो चुकी। बतलाइये! अब शंका किस बातकी है?

नास्तिक–आपके दिये हुए हेतु साध्यसे विरुद्ध पदार्थके सिद्ध करनेवाले होनेसे साध्य विरुद्ध हैं। क्योंकि घटादिक पदार्थके रचनेवाले कुलालादिक रुपी और अनित्य है। अतः आत्माभी रुपी और अनित्य सिद्ध हो जायगा; और आपके मतमें आत्माको नित्य और अमूर्त्त माना है। इसलिये दिये हुए हेतु व मिसालोंसे आपने अपनेही मंतव्यको तोड लिया

है। वाह ! अच्छा खंडन किया।

आस्तिक—आप हमारे मतव्यका लेशभी नहीं समझ सक्ते है। अगर समझते तो नास्तिकही क्यों बने रहते ! याद रहे ! हमारे दिये हुए हेतु व मिसालें कभी साध्य विरुद्ध सिद्ध नहीं होसक्ती। क्योंकि जीवके साथ आठ कर्मके लोलीभूत होनेसे कथंचित् हम इसको मूर्त्तिमानभी मानते हैं, और पर्यायार्थिक नयके मतसे हम इसे अनित्यभी स्वीकारते हैं। इसलिये पूर्वोक्त दूषण आपकी वे समझीको सिद्धि करता है। याद रखना ! जैन मतके मतव्यको वोही अच्छी तरह समझ सक्ता है, जो स्याद्वाद रूप गजदर्की सवारी करना जानता है।

चतुर्थ अनुमान यह है कि रूप और रस वगेर गुणोंकी तरह इनका ज्ञाभी किसी जगहपर आश्रित है। (जिससे आश्रित हवो आश्रयतदाता आत्माही सिद्ध है।) इसका मतलब यह है कि जैसे घट रूप घटाश्रित है, और शकरका स्वादिष्ट रस शकरके आश्रित है। इससे यह मतलब निकलाकि जिस तरहसे रूप व रस इंद्रिय ज्ञानके विषय अपने अपने योग्य गुणामें आश्रित है। इसी तरहसे इनका अनुभव कर्त्ता ज्ञानभी विषयवत् किसी जगहपर आश्रित होना चाहिये। इसके मुताबिक आश्रयदाता सिवाय आत्माके और घट नहीं सक्ता, अगर घटता है तो बता दीजिये ? देखिये ! एक और बात सुनाता हूं।

ज्ञान सुख वगेरः पैदा होते नजर आते हैं, इससे हम इनको कार्य्य कह सकते हैं। (जो पैदा होने वाली चीज है वो कार्य्यमेंही शामिल है,) कार्य्यका उपादान कारण जरूर होना चाहिये। बिना उपादानके कार्य्य नहीं बन सक्ता। जैसे बिना मृत्तिकाके घट रुप कार्य्य नहीं बन सक्ता है। इससे ज्ञान सुख वगेरःका उपादान कोई जरूर होना चाहिये। जो इनका उपादान है, वोही हमारा आत्मा है। क्योंकि शरीर तो इनका आश्रयी बन सक्ता हैं। न कि उपादान। अगर किसीको इस बातमें शक हो तो भूत पीछेकी इबारत देख लेवें। शक नष्ट हो जायगा। यतः हम अनेक युक्ति प्रयुक्ति द्वारा इसबातको स्पष्ट कर चूके हैं कि ठीक शरीर ज्ञानादिकका कारण नहीं बन सक्ता।

नास्तिक–अच्छा, हम इस बातको मंजूर करते हैं कि आपके अनुमान सच्चे हैं। मगर आपने प्रत्यक्ष प्रमाणसे आत्माको सिद्ध करते वक्त स्व संवेदन प्रत्यक्ष प्रमाणका स्वरुप बतलाया। इससे बेशक अपने आत्माकी पहिचान हो जायगी। मगर दीगर शख्समें आत्मा है; या नहीं ? बतलाइये ! इस बातकी सिद्ध करनेवाला कोइ प्रमाण है या नहीं ?

आस्तिक–क्यों नहो, वीतराग देवके अखूट ज्ञान खजानेमें किस बातका टोटा है ? जो मागोगे सो मिलेगा। ली-

जिये, अब दीगरके जिस्म रहकी सिद्धि करते हैं। जरा ध्यान लगाकर पढीयेगा। सामान्य दृष्टानुमानसे दूसरे लोगोंम इष्टम प्रवृत्ति और अनिष्टसे निवृत्ति रूप आदतके देखनेसे हम जान सक्ते हैं; कि दूसरे प्राणियोंका शरीरभी सात्मि कहै। अगर आत्मा न होता तो इष्ट निष्टमें प्रवृत्ति व निवृत्ति कभी नहीं होती। मसलन घटमें जीवात्मा नहीं है, तो इसमें प्रवृत्ति व निवृत्ति इन दोनोंमेंसे कोइभी धर्म नहीं पाया जाता। इससे दूसरेके शरीरमें भी आत्मा है यह बात अच्छी तरहसे सिद्ध हो चुकी। अत नास्तिकने पेश्तर लिखाथाकि सामान्य तो दृष्टानुमानसेभी आत्मासिद्ध नहीं हो सक्ता यह बात बिल्कुल गलतथी। देखिये ! हमने नास्तिकके सामनेही दूसरेके शरीरमें सामान्य तो दृष्टानुमानसे जीवकी सिद्धि कर दिखलाई। अब कहांतक लिखें। प्रिय सज्जनो ! प्रथम नास्तिकके कथनपर खयाल किया जावे तोभी जीवकीही सिद्धि होती है। मगर लाइल्मीयतमर्ज इनको भूतकी तरह इस कदर चिमडी है कि शायद इनका पीछा छोडे।

नास्तिक–बतलाइये ! हमारा कौनसा वचन जीवकी सिद्धि पर रहा है।

आस्तिक–देखिये ! आप कहते हैंकि जीव नहीं है, यह

आपका निषेध करनाही जीवके अस्तित्वको साबित करता है। क्योंकि जिस चीजका निषेध किया जाता है वो चीज कहीं तो जरूर होती है। मसलन कहा जाता हैकि यहांपर घटा नहीं है, तो इससे साबित होता है कि और जगहपर घट अवश्यमेव होगा। इतना कहने मात्रसेही भी नहीं बल्के और जगह पर हम प्रत्यक्षतः देखते हैं। इसमें अनुमान यह है:—

॥ इह यस्य निषेधः क्रियते, तत् क्वचिदस्त्येव, यथाघटादिकं।

मतलब उपरकी इबारतसे हल है। देखिये। अब आप समझ गये होंगे। क्योंकि आपने निषेध तो कियाही था, इससे साबित हो गयाकि जीव नामका पदार्थ वस्तुतः है। वरना निषेध कैसे किया जाता? यतः इस दुनियामें जो सर्वथा नहीं होता है; उस्का निषेधभी कोइ नहीं करता। जैसे पांच भूतोंके अलावा छठे भूतकी न तो विधि है और नहीं निषेध है।

नास्तिक—आपका यह कथन अन्यथा है। क्योकि गर्दभशृंग—वंध्यापुत्र, वगेरः पदार्थ अभाव रुप हैं। मगर फिरभी इनका निषेध किया जाता है। इसलिये आपका कथन दुरुस्त नहीं है।

आस्तिक–प्रियवर ! जरा मेरी तरफ अपनी तवज्जह रजु करें । मैं आपको दुरुस्त कर दिखलाता हूं । देखिये ! गर्दभ-शृङ्ग अथवा वन्ध्यापुत्र नहीं है । मगर इनका निषेध पाया जाता है, इसका यह सबब है कि जैसे हम कहते हैं कि देवदत्त घरमें नहीं है । इससे जतलाया गया कि देवदत्तका संयोग घरके साथ नहीं है । मगर बगीचेमें जानेकी वजहसे आरामके साथ है । इसीतरह गर्दभशृंग नहीं है । इससे यह मालूम होता है कि शृंगका गधेके साथ समवाय योग नहीं है, किन्तु भैंस, गौ बैल वगैर पशुओंके साथ है । इससे सर्वथा शृंग निषेध नहीं किया गया । किन्तु खास जगहपर निषेध है । इस लिये हमारा कहना उसी तरहसे कायम रहा कि जो चीज होगी उसीका निषेध किया जायगा । बतलाइये ! अब जीवको किस जगहपर मानते हो जिधर मान लोगे उधरही सिद्धि कायम रहेगी ।

नास्तिक–मैं कहीं किसी शख्ससे मिलातो उसने मेरेसे पूछा आप कौन हैं ? मैंने जवाब दिया "ईश्वरो ऽहं" मैं ईश्वर हूं, उसने निषेध कियाकि तुम ईश्वर नहीं हो सक्ते हो । बतलाइये ! अब आपके माननेके मुताबिक तो मैं ईश्वर बराबर हो चुका । क्योंकि आपका कहना है । जिसका निषेध किया जावे वो जरूर होता है । बतलाइये ! आप मुझे ईश्वर मानोगे या नहीं ?

आस्तिक–सर्वथा ईश्वर आप नहीं बन सक्ते हो । इस-लिये हम क्या बल्के हरएक कह देगाकि आप ईश्वर नहीं है। मगर इससे हमारा अनुमान झूंठा नहीं हो सक्ता । क्योंकि आप ईश्वर नहीं हैं, इन शब्दोंमेंही ऐसा सामर्थ्य है कि ईश्वर सिद्ध कर सके। जैसेकि आप ईश्वर नहीं हैं, इससे साबित हुआकि द्वादश गुण युक्त ओर ईश्वर जरूर है; अगर न होता तो निषेधभी नहोता । यतः कोइ ऐसे नहीं कहता हैकि आप वंध्या पुत्र नहीं हैं; और आपमें ईश्वरताका निषेधभी तीन जगत्की अपेक्षासे समझें।अन्यथा अल्प ईश्वरता तो आपमेंभी पाइ जायगी। क्योंकि अपने संतानके व अपनी भार्य्याके ईश्वर तो आपभी हैं । बाद आत्म सिद्धिमें औरभी एक प्रमाण है। तथाहि:–

॥ अस्तिदेहे इंद्रियातिरिक्त आत्मा, इंद्रियोपरमेपि तदु-पलब्धार्थानुस्मरणात् । पंचवातायनोपलब्धार्थानुस्मर्तृ देवद-त्तवत् ।–मतलब इंद्रियोंसें जिन पदार्थोंका हमें ज्ञान होता है। इंद्रियों के उपर होने परभी हमें उस्का अनुस्मरण होता है। इससे सिद्ध होता है कि अंतरंगमें देखने वाला कोइ ओर है। बस, समझ लेवें वोही आत्मा है । वरना (अन्यथा) पदार्थ के साथ इंद्रिय संयोगके अभावकी हालतमें अनुस्मरण कैसे हो सक्ता था व पंचवातायनस्य देवदत्तकी मिसाल कैसे देते ?

खुलासा मतलब यह है कि इन्द्रियोंकी ताकत समीपमें रही हुई चीजको ग्रहण करनेकी है। जिसके अभावमें इन्द्रियोंकी शक्ति नहीं होती। अब कहनेका मतलब यह है कि जब हम नास्तिकको देखते हैं तो फौरन मालूम हो जाता है कि यह वह है, मगर उसके दूर होजानेपरभी हमारे दिलमें उसकी मूर्ति जमी हुई, आंखें बन्द करने परभी मालूम होती है। इससे हम कह सकते हैं कि इन्द्रियोंके अलावा हमारे अन्दर अनुस्मरण करने वाला कोई पदार्थ जरूर है। बस, वोही आत्मा है।

प्रिय सज्जन ! अब सोचनेका वक्त है कि नास्तिक शिरोमणि चार्वाकने लिखा, जो अपने मुंहसे कहता था कि कोई अनुमान प्रमाणभी ऐसा नहीं है कि जिससे आत्मा सिद्ध हो सके ? लेकिन, यह अनुमान चार्वाक शिरोमणीही अनुमान हमें सिखलाते। मगर फिरभी ऐसा न किस अपनी हठको न छोड़े तो उसको कौन समझा सकता है। मगर अक्लमन्द लोग यहभी समझ गये होंगे कि चार्वाकका पक्ष टूटा है। अब यहां इतमाम भी अनुमानके प्रमाण होनेसे अनुमान भी कायम है, और आगम प्रमाणसे भी उपर उपरसे आत्मा सिद्ध होता है।

नास्तिक—आत्मा बराबर सिद्ध है। हम आपका यह बात कबूल किया।

आस्तिक–सिवाय तुम्हारे मतके आत्माके अस्तित्वमें कोइ मत विरुद्ध नहीं। याने हरएक मतके आगम आत्माको स्वीकारतेहैं। अगर कहोगे हमारे मतमें आत्माका अस्तित्व नहीं मानाहै, इस लिये आत्मा नहीं है। तो यहभी ठीक नहीं। क्योंकि आपका मत अतीव असत्य होनेके सबबसे हमारी सत्य युक्तिद्वारा खंडित होगयाहै। इस लिये अप्रमाणिक मतके शरणसे आप छूट नहीं सक्ते? और परलोककी सिद्धिका मुख्य प्रमाण जगत्की विचित्रताही है। एक राजा, एक रंक, एक भोगी, एक शोकी, एक निरोगी, एक रोगी, वगेरः बातें पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य पापके वगेर, नहीं बन सक्ती है; और एक यहभी अनुमान है कि जब कोइ बालक पैदा होताहै तो उसी वक्त अपनी माताके स्तनको मुंहमें लेकर स्तन पान करता है। (दूध पीता है) यहांपर उसी वक्तके जन्मे हुए बालकका दूध पान करना पूर्वके अभ्याससे समझा जायगा। क्योंकि अगर उसमें खाने पीनेका अभ्यास पूर्व जन्ममें न होता तो अभ्यासके वगेर खाने पीनेका काम कभी न करता। इससे भी परलोककी सिद्धि होजाती है। यहांपर अनेक प्रमाण आयत होसक्ते हैं। मगर निबंध बढ जानेके भयसे हम इतनेसेही संतोष करते हैं। क्योंकि अकलमंदोंके लिये इशाराही काफीहै।

प्रिय मित्रो! आत्माकी सिद्धि होनेसेही हम कृत कार्य्य होगये। ऐसा मत समझें, किन्तु अब आत्म कल्याणकी

तरफ तवज्जह रजु करनी चाहिये । आत्म कल्याणका मुख्य कायदा सची शुद्ध श्रद्धा है । जब तक शुद्ध धर्मकी प्राप्ति नहो चाहे गिरि कंदरामें बैठकर तपश्चर्याद्वारा शरीरको सुकादिया क्यों न जावे ? आत्म कल्याण हरगिज न होगा । इस लिये सच्चे धर्मकी प्राप्तिके लिये कोशीश करना जरुरी बात है । और दुनियामें अनेक मतमतान्तर खडे हुए हैं, कौन जाने, कौन सचा और कौन झुठा है । इस बातके निर्णयार्थ कुछ एक शाखाओंका खंडन पूर्वक जैनमतका मंडन कर दिखलाताहू । आप ध्यान लगाकर पढे और लाभ उठावें ।

प्रिय सज्जनो ! प्रथम बौद्ध मतपर विचार करते हैं । तो इनका मतव्यभी बिलकुल भ्रमासा मालूम होता है । क्योंकि प्रथम ये लोग तमाम पदार्थोंको क्षण विनश्वर मानते हैं, सो नहीद ख्यास है । कोई पदार्थ हम ऐसा नहीं देखते हैं कि बगैर निमित्तके हमारे देखते देखतेमें निर्मूल (जडमूल) सेनाश हो जावे, और हम पता न लगे । देखिये, जैसे निर्मूल (जडमूल) से घटका नाश होता है तो "घटोध्वस्त." अर्थात् घडा फूट गया, ऐसा ज्ञान हमें अवश्यमेव होता है । इसीतरह अगर बौद्धोंका क्षण विनश्वर (क्षणक्षणमें पदार्थका नाश होता है) मत सत्य होता तो प्रत्येक क्षणमें हम प्रतीति होती कि ठीक है । क्षणमें घटका नाश होता है, और उसकी जगह ओर घट पैदा होता है ।

बौद्ध–आखरी समयपर कोई पदार्थ क्यों नहो ? अगर रुपी होगा तो उसके नाशकी प्रतीति जरुर होगी। मगर क्षण विनश्वर स्वभावसे नष्ट होता पदार्थ दिखलाइ नहीं देता। कारण कि उसमें स्वभावही ऐसा है तो फिर तर्क किस बातका करते हो ?

जैन–अच्छा, जाने दीजिये। इस बातके पेश्तर यह सुनाइयेकि अगर आप क्षणभंगुर पदार्थके स्वरुपको न स्वीकारते; और हमारी तरह पदार्थ स्वरुपकी अवस्थिति मानते तो क्या हर्जकी बातथी ?

बौद्ध–हमारा यह मानना है कि जब पदार्थ पैदा होता है, उसी वक्त उसमें क्षणभंगुर स्वभाव पड जाता है। यानि उत्पत्ति कालसेही पदार्थमें यह स्वभाव पाया जाता है। युक्तिकी तरफ निगाह करें ! अगर इसमें क्षणभंगुर (क्षणमात्रमें नष्ट होजाना) स्वभाव पहिलेसे न माना जावे तो मुद्गरादिकके पतन कालमेंभी नाश होनेका स्वभाव नहीं हो सक्ता। क्योंकि अगर घडा पैदायश कालमें अविनश्वर स्वभाव था तो विनश्वर स्वभाववाला कैसे हो सकेगा ? इसलिये प्रथमसेही विनश्वर पैदा होता है, ऐसाही मानना ठीक है।

जैन–अब हम आपसे पूछते हैं। बतलाइये प्रथम निर्मूलसे नाश होते हुएभी लोगोंको निर्मूलसे नाशकी

प्रतीति नहीं करानेके स्वभाववालेमें अखीरके नाश वक्त प्रतीति करानेका स्वभाव कहांसे आया ? क्योंकि आपके मतमें जैसे प्रथम क्षणमें "घटोऽनस्त क्षणभगुरत्वात्" अर्थात् क्षणभङ्गुर होनेसे घटका नाश हुआ ऐसे मामुली तोरपर इल्म होता है । वैसेही अखीरके क्षणमेंभी मामुली तोरपर इल्म होना चाहिये था ? साफ तोरपर प्रतीति क्यों होती है ? हमारे इस सवालनेही आपके मुचकुरावाले सवालको नष्ट करदिया । इससे आप नखूबी समझ गये होंगे कि पैदा होते वक्तका विनश्वर-अविनश्वरवाला सवाल बिल्कुल फजूल है । और देखिये, आपके माननेके मुताबिक वहांपर ठीकरीयें नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु घटके फूट जाने पर ठीकरीयें अवश्यमेव होती है, और हम तुम प्रत्यक्ष देखते है। तो यह सवाल आपपर जरुर आयद होगा कि वहांपर ठीकरीयें अवशिष्ट क्यों मालूम होती है ? यत' नष्ट हुए घटके स्थानमें दूसरा घट पैदा होजाना चाहिये । इसलिये कि आप का यह मानना है कि प्रथम क्षणमें घडा नष्ट होजाता है । दूसरे क्षणमें उसकी जगह और पैदा होता है । तीसरे क्षणमें और इत्यादिक ।

बौद्ध–यह आपका कथन अविचारित है। क्योंकि दूसरे क्षणमें पैदा होनेवालेका प्रथम क्षण विवर्त्ति घट कारण है ।

जब उसका कारणही घट सर्वथा नष्ट होगया तो कार्य्य रूप घट कैसे हो सकेगा ?

जैन—जरा विचार तो करना था कि मेरी दलील कहां तक चलेगी। वगैर विचारे कथन करने वाले शास्त्रार्थमें कभी कामयाव नहीं होते। क्या आपके मतमें कार्य्य कारण भाव भाव ठहर सक्ता है। जो मिसाल देते हो कि उसका कारण नष्ट होगया। यादरहे, आपके मतमें पदार्थोंका क्षणभंगुर माननेकी वजहसे कार्य्य कारण भाव कभी नहीं होसक्ता। क्योंकि जब प्रथमके क्षणमें प्रथम घट नष्ट होगा, तबही दूसरे क्षणमें दूसरा पैदा होगा। एक क्षणमें दोनोंके अस्तित्वको तो आप कबूलही नहीं रखते। कहिये, अब दूसरे क्षणमें पैदा होनेवाले घटका प्रथम क्षणवाला घट कारण कैसे बन सक्ता है ? अगर ऐसे वैसेही कारण मानलोगे तो मृतपति सेभी स्त्रीयोंमें संतान उत्पत्ति होना चाहिये, मगर होती नहीं। इससे साफ मालूम होता है कि आपका कथन अकलसे वईद है।

वौद्ध—हम वासनाको मानतेहैं, इसलिये घटके नष्ट होजानेपरभी वासना रहती है। इस सववसे उत्तर कालीन घट पैदा होताहै। बतलाइये, इस बातमें क्या शक है ?

जैन—बतलाइये, वो वासना घटसे भिन्नहै या अभिन्न ? अगर कहोगे भिन्न है तो वोभी पदार्थ स्वरूपमें आजायगी।

जब पदार्थ सिद्धि हुइतो फिर घटवत् वोभी क्षणभगुर हो जायगी। इसलिये घटकी वासना घटके साथही पूर्व क्षणमें विलय होजायगी। बतलाइये, फिर उत्तर क्षणको कैसे पैदा कर सकेगी, अगर कायम रहनाभी माना जावे तोभी घटसे भिन्न वासना घटको पैदा नहीं करसक्ती है। जैसे पटपर रखे हुए घटके फूट जानेपर पट घटोत्पादक नही बनसक्ता। इसी तरहसे घटके नष्ट होजानेपर अवशिष्ट वासना घटसे भिन्न होनेके सबबसे घटोत्पादक नहीं बन सक्ती। अगर कहोगे अभिन्न है तो फिर कहनाही क्या! वो तो घटके साथही नाश हो जायगी। क्योंकि वो उससे अभिन्न है। इसलिये आपका क्षणभगुर मत किसी तरह साबित नहीं हो सक्ता है।

बौद्ध–हमने आपको क्षणभगुरकी सिद्धिमें एक युक्ति बताइ थी कि पैदा होता हुआ घट विनश्वर पैदा होता है या अविनश्वर? इसका क्या जबाब है?

जैन–हम आपको इस बातके जवाबमें प्रथमभी एक युक्ति बता चूके हैं। अगर इससे आपकी तसल्ली नहीं हुइ तो लीजिये। अब दूसरी युक्ति देता हू। ध्यान लगाकर श्रवण करें। खाणमें रही हुइ मिट्टीमें घट पैदा करनेका स्वभाव है या नहीं? अगर है तो फिर कुलाल आदि निमित्तकी क्या जरुरत? खुद बखुद घट क्यों नहीं बनजाते?

अगर कहोगे उसमें घट उत्पन्न करनेका स्वभाव तो है, मगर विना निमित्त के घट नहीं बन सक्ता। तो हमारी तरफसे भी यही जवाव समजें, कि घटमें नाश होनेका स्वभाव तो पेश्तरसेही होता है। मगर जवतक मुद्गरादिक निमित्त नहीं मिलते, घट फूट नहीं सक्ता। हां बेशक, पर्य्यायें तो जरूर पलटती रहेगी। मगर बिना निमित्तके सर्वथा नाश नहीं होता।

बौद्ध—अच्छाजी, यह तो वात मान ली। मगर और भी क्षणिकवादके खंडनकी युक्तियें सुना दीजिये। अगर मुझे ठीक मालुम हुइ तो मान लूंगा।

जैन—देखिये! आपके क्षणिक वादकी अश्लीलताको दिखलानेके लिये कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी महाराज स्याद्वादमंजरीमें क्या फरमाते हैं। जरा श्रवण कीजिये।

कृत प्रणाशा कृत कर्म भोग,
भव प्रमोक्ष स्मृति भङ्ग दोषान्॥
उपेक्ष्य साक्षात् क्षण भङ्ग मिच्छ॥
न्नहो महा साहसिकः परस्ते॥ १॥

मतलव—किये हुए कर्मका नाश और विना किये हुएका भोग २ भवभंग ३ मोक्षभंग ४ स्मृतभंग—५ इन साक्षात् अ-

नुभव सिद्ध दोषोंका अनादर करके क्षणिक वादको चाहता हुआ, हे भगवन्! त्वद्विपरीत बुद्ध अहो! कैसा साहसिकहै?

साहसिक उसे कहते हैं कि जो काम करते वक्त यह नहीं विचारता कि इस कामके करनेसे आयदेको हमे कैसी घोर वेदना सहन करनी पडेगी। सो बुद्धनेभी यह नही सोचाकि विचारशील मानव मेरे इस लेखको पढकर मुझे कैसा समझ-गे। बस, इस मुक्सर मतलबका बयान कर अब मुफस्सल हाल बयान किया जाता है। गौर पढें।

प्रिय पाठको! प्रथम बौद्ध लोग हमारी तरह आत्मा-को नहीं मानते। किन्तु बगैर आत्म गुणीके बुद्धि गुणको मानते हैं। उसकीभी स्थिति क्षणमात्र मानते हैं। अर्थात् उन-का कहना हैकि प्रथम क्षणमें जो बुद्धि क्षण पैदा होता है, वो उस क्षणके अन्तमें नाश होता है। तब उसकी जगहपर दूसरे क्षणमें बुद्धिका दूसरा क्षण पैदा होता है, और दूसरे-की जगह तृतीय क्षणमें तीसरा पैदा होता है। इसी तरह बु-द्धि क्षण परंपरा चली जाती है। जिसको ये लोग आत्मा मानते हैं इससे मध्यस्थ गण अच्छी तरहसे समझ गये होंगे, कि इस तरह माननेसे आत्मा क्षणिक सिद्ध हुआ। क्योंकि बुद्धिही इनके मतमे आत्मा है, और बुद्धि क्षण उपरात ठहर नहीं सक्ती। इस लिये इस क्षणिक वादके माननेसे नीचे लिखे

हुए दूषण इनके मत रुप दीवारको दीमककी तरह खा रहेहैं। देखिये, प्रथम दूषण यह बडा भारी है कि, इनके मतमें किये हुए शुभाशुभ कर्मका फल नहीं मिलता। क्योंकि प्रथम क्षण अपने कालमें शुभाशुभ कर्म करताहै। जब उसके भोगनेका समय आता है, तो वो क्षण विचारा नष्ट हो जाता है। कहिये, अब क्षण कालमें बंधन किया हुआ कर्म कहाँ भोगेगा? इस लिये कृत कर्म नाश नामका प्रथम दूषण है।

बौद्ध—अगर हम उसी क्षणमें उसने कर्मका बंध और भोग दोनोंही कर लिये मानेंगे तो फिर आप क्या कहेंगे.?

जैन—सत् मित्र! यह बात नहीं बनसक्ती कि एक क्षणमें बंध और भोग दोनोंही करलें। अगर आप इस बातको मान लेवें तोभी आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होसक्ती। क्योंकि एक बुद्धिका क्षण अपने अन्त होनेके वक्तपर तरवार लेकर किसीका गला काट देवे और उस आदमीके साथही वो नष्ट होजावे। बतलाइये, ऐसे मौकेपर अखीर में किये हुए बुरे कर्मका फल वो क्षण कहाँ भोगेगा? और ऐसा तो आप कहही नहीं सक्ते कि, अखीरी वक्तपर वो शुभाशुभ काम नहीं करताहै। अगर कहोगे सूक्ष्मकाल होनेके सबबसे शुरु आखिर वगेरः व्यवहार नहीं होता, तो बस, फिर हमाराही कथन सिद्ध हुआ कि वो अल्पकाल होनेके सबबसे कर्म बंध

नहीं करसक्ता। बतलाइये, भोगेगा कहाँ? मेरे मित्रो! देखिये! प्रथम दूषण इसी तरहसे कायम रहा। क्या? श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यजी जैसे महर्षियोंका वचनभी अन्यथा होसकता है? हरगिज नहीं। हरगिज नहीं।

दूसरा यह दूषण है कि विना कियेही कर्मका भोग मिल जाता है। जैसे दूसरे क्षणमें पैदा होने वालेने कोइ कर्म नहीं कियाथा। मगर भोक्ता बनता है। क्योंकि कुछन कुछतो शुभाशुभका अनुभव जरूर करेगा। यतः ऐसी कोई क्षण नहीं है, जिसमें भोक्तृत्व न हो। इससे साबित हुआ कि दूसरे क्षणमें पैदा होनेवालेको कर्मके बगैरही किये-कर्मका भोग मिला। इसलिये अकृत कर्म नामका दूसरा दूषणभी क्लिष्ट कर्मकी तरह अति बलिष्ट इनके पीछे लगा है, मरजी चाहे वहां भागें छूट नहीं सकते। तीसरा भवभग नामका दूषण है। जैसे कि बौद्धोंका मानना है कि क्षण क्षणमें पदार्थ नष्ट हो जाता है। यहांपर कहनेका तात्पर्य यह है कि जब पूर्व क्षण कर्म कर्त्ता नष्ट हो गया तो भोगेगा कौन? और एक जन्ममें दूसरे जन्ममें पैदा होना कर्मके उदयसे होताहै। सो कर्म कर्त्ता तो क्षणके बाद ठहरही नहीं सक्ता। बतलाइये? अब परलोकमें कौन जायगा? इस लिये भवभग नामका तीसरा दूषणभी इनसे परम परिचय रखता है। अब चौथा दूषण मोक्षभग नामका है, यहभी एक अनिवार्य है। मतलब इनके मतमें मोक्षकी व्य-

वस्थाभी ठीक तोरपर नहीं चल सकती । क्योंकि मोक्षनाम छूट जानेका है । जो वह होगा वही जब छूटजायगा तब मोक्ष शब्दकी प्रवृत्ती होगी । सो इनके मतमें यह बात बनही नहीं सकती । क्योंकि पूर्वक्षण तो बद्धदशामेंही नष्ट होजायगा । तो मोक्ष किस्का रहा ? ऐसा तो होही नहीं सकता कि, पूर्व क्षण बद्धदशामें जावे और उत्तर क्षणका मोक्ष माना जावे । क्योंकि दुनियामेंभी ऐसा नहीं हो सकता कि जमाल गोटेका (नेपालेका) जुलाब भतीजा लेवे और दस्त चचेको लग जावें । इस लिये मोक्ष भङ्ग नामका दूषणभी इनसे परम मैत्री भाव रखता है । इस तरहसे बुद्धिको क्षण विनाशिनी माननेसे स्मरण ज्ञानभी इनके मतमें नहीं हो सकता है । इस लिये स्मृतिभंग नामका पांचमा दूषणभी बुद्ध निरूपित मन्तव्यमें बडे आनन्दसे निवास करता है । स्मृति नाम स्मरणका है सो-स्मरण ज्ञान उसें कहते है, जो पूर्व कालमें देखीहुइ चीजका उत्तर कालमें याद करना । मसलन् हमने किसी आदमीको देखा है, और कई दिनोंके बाद हम अपने भवनमें बैठे हैं । उस वक्त हमें उपयोग देनेसे उस पुरुषका स्वरूप तादृश्य याद आताहै, उस्को स्मरण कहते हैं । वादिदेवसूरि महाराज स्मरणका लक्षण नीचे मुजब लिखते हैं । तथाहिः—

॥ संस्कार प्रबोध संभूत मनुभूतार्थ विषय तदित्याकारं संवेदनं स्मरणम् ॥

इस लक्षणमें तीन वातोंका समावेश किया गया है। एक तो स्मरण ज्ञान किससे पैदा होताहै, और उसका विषय कौन है, तथा उसका कैसा आकार है। सो तीनोंही वातोंका निर्णय सूत्रकारने इसी सूत्रमें कियाहै। सस्कार ज्ञानसे यह पैदा है। अनुभवित अर्थ इसका विषय है, और वो ऐसा इसका आकार है। इससे यह मतलब निकलता है कि पूर्व कालमें जो चीज देखी गई है उत्तर कालम उस चीजको याद करने पर स्मरण ज्ञान होता है। इस लिये बौद्ध मतमें इस ज्ञानका होना अशक्य है। क्योंकि पूर्व कालमें जिसने प्रत्यक्ष तथा पदार्थको देखा था वेतो नष्ट होगया। बतलाइये, फिर स्मरणज्ञान कौन करेगा? ऐसा तो होही नहीं सक्ता कि पूर्व कालमें जोथा उसने प्रत्यक्ष किया और उत्तर कालम जो होगा सो स्मरण करेगा। यत. देवदत्तने कोइ प्रत्यक्षपणे पदार्थ देख लिया, उसका स्मरण देवदत्तही कर सकेगा नकि यज्ञदत्त। अगर एक की देखीहुइ बातका दूसरा स्मरण कर सकता तो फिर हमारे गुरु श्रीमद्विजयकमल सूरीश्वरजो ने सिद्धाचलजीको प्रत्यक्ष देखाहै, मैं स्मरण क्यों नहीं कर सक्ता? क्योंकि

एकके देखनेसे दूसरा स्मरण कर सकता है तो फिर मुझेभी उस परम पवित्र गिरिराजका स्मरण होना चाहिये । तथा हमारा स्वामी सेवक भाव संबंध है फिरभी उनकी देखी हुई बातका मैं अनुभव-स्मरण नहीं कर सकता । तो फिर बुद्ध का कहना कैसे सत्य हो सकता है । इसलिये पांचमा दूषणभी इनके मतमें जबर दस्त पडा है । चाहे, जितनी कोशिश क्यों न करें हट नहीं सकता । प्रिय सज्जनो ! यहांपर मैं बहोत वि-स्तार करना चाहता था और इनकी मानी हुई वासनाकीभी कलइ खोल देता था । मगर क्या करें निबंध बढजानेके भयसे इसबातको मैं यहां परही छोडता हूं । किंब-हुना । विज्ञेषु ।

अब जरा नैयायिक मतपर खयाल कर देखते हैं, तो इनके मन्तव्यभी ऐसे वैसेही मालूम पडते हैं । प्रथम ये लोग ज-गत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं । इनका यह कथन युक्ति प्र-माणसे नहीं ठहर सक्ता और कर्तृत्वोपाधिमें ईश्वरको डा-लनेसे वो कलङ्कित होजाता है । इस बातपर युक्ति प्रयुक्ति द्वारा कई जैनाचार्योंने तथा जैन मुनियोंने खंडन किया है । यहाँपर मैं इस मन्तव्यका खंडन जरूर करता, लेकिन् मुझे नि-बंध बढ जानेका भय है । इसलिये मैं इस विषयमें नहीं उत-रता । देखनेकी स्वाहीश वालोंने न्यायांभोनिधि श्रीमद्वि

जयानद सूरीश्वरजी महाराजका वनाया हुआ " चिकागो प्रश्नोत्तर " तथा मेरी वनाई हुइ " दयानद कुतर्क तिमिरतरणि " नामा किताब जिस्को कि लाला नथुराम जैनी मुंजीरा जिला फिरोजपुरने उर्दूमें लिखी और लाला बिहारीलाल एल एत बी बाबुने बडी प्रीतिके साथ लाहोरमें छपवाइ है। पता ऊपर लिखा हुआही समझें।

प्रिय सज्जनो ! देखिये, इनके लिये श्रीमद् हेमचद्राचार्यजी महाराज स्याद्वादमजरीके दशम श्लोकमें क्या लिखते हैं:-

स्वयं विवाद ग्रहिले वितण्डा, पाण्डित्य कण्डूल
मुखेजनेऽस्मिन् ॥
मायोपदेशात् परमर्मभिन्द, अहो विरक्तो
मुनिरन्यदीय ॥ १० ॥

मतलब–इस दुनियाके लोगमें स्वाभाविकही यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि अपने मतको सिद्ध करनेके लिये झूठे इतराज देकर दूसरेके पक्षको गिराना चाहते है, और अपने झूठे मन्तव्यकी सिद्धिके लिये विस्तृत वक्तृत्व कला विना गुरुके खुद वखुदही सीख रखी है। ऐसे लोगोंको मायोपदेश देनेवाले गौतमकी विरक्तताको शाबास है। विरक्तता हो तो ऐसी हो! इस श्लोकके चतुर्थ पादमें हेमचद्राचार्यजी महाराजने अहो ये पद

हास्य गर्भित रखा है, सो ठीक है । ऐसे पुरुष आत्मार्थि विद्वान् पुरुषोंके पास हास्यास्पदही होतेहैं । अब आपके पास जरा इनकी अज्ञानताका नमूना दिखलाते हैं । ध्यान लगाकर पढें और मनन करें ।

नैयायिक मतमें एक " गौतमसूत्र " नामका बडा प्रमाणिक ग्रन्थ है । जिसको आर्य्यसमाजीभी बडे आदरसे स्वीकारते हैं । (स्वीकारें क्यों नहीं ? छल जातिका स्वरूप तो इसमेंसेही निकलता है ।) इसके प्रथम सूत्रपरही कुछ विचार करतेहैं । देखिये सूत्र यह है:–

" प्रमाण[1] प्रमेय[2] संशय[3] प्रयोजन[4] दृष्टान्त[5] सिद्धान्ता[6]वय[7]वतर्क[8] निर्णय[9] वाद[10] जल्प[11] वितण्डा[12] हेत्वाभास[13] छल[14] जाति[15] निग्रह[16] स्थानानां तत्व ज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः " न्या० द० स–१

मतलब–सूत्रमें गिनाये हुए सोलह पदार्थोंके तत्वज्ञानसे जीव मोक्ष हॉसिल कर सक्ता है । इनका ये मन्तव्य युक्ति प्रमाणसे ठहर नहीं सक्ता । सत्शास्त्रोंमें बयान है कि "सम्यग्ज्ञान क्रिया भ्यां मोक्षः " मतलब–ज्ञान और क्रिया दोनों कर मोक्ष मिलता है; और दलीलसेभी यही साबित होता है कि ज्ञान और क्रिया दोनों मिलकर मोक्ष पद हो सक्ता है । चाहे ऐसे

अच्छे कारीगरने उमदासे उमदा रथ क्या न बनाया हो म गर एक पैयसे (चक्र) कभी नहीं चल सक्ता । मतलब जैसे रथके लिये दो चक्र (पैये)की जरुरत है, इसी तरह मोक्ष मार्गमें भी इन दोनों निमित्तोंकी जरूरत है। देखिये किसीएक गहन वनमें चराचर पदार्थके साथ वनको भस्मसात् करता हुआ अग्नि इस कदर प्रज्वलित हुआकि आसपासके तमाम लोगोंने भयभ्रान्त होकर भागना शुरु किया । उस वक्त उस वनमें एक अन्धा और एक पंगु दो शख्स मौजूद है । उनमेंसे अन्धा भागतो सक्ता है, मगर देख नहीं सक्ताकि, आगका जोर किधरकी तरफ है, और मुझे किस दिशाका आश्रय लेना चाहिये ।इसलिये वो गभरा रहा है । इधर पंगु साफ तोरपर देख रहा है कि आगका इन दिशाओंमें बडा जोर है, और फलॉ दिशामें हो जाउ तो मै बच सक्ता हूं । मगर क्या करे वो बिचारा भाग नहीं सक्ता । अब अलग रहनेसे इन दोनोंका नाश होता है । लेकिन इत्फाकसे दोनोंही बच सक्ते हे । क्योंकि अगर अन्धा पंगुको अपने स्कन्ध (खभा)पर उठा लेवे और पंगु दर्शित मार्गपर चले तो दोनोंही बच सक्ते हैं । इसी तरहसे ज्ञान रहित क्रिया मानिंद अंध पुरुषके है। जो मोक्ष में जाना चाहती है, और उद्यमभी जानेका करती है, मगर मोक्षका रस्ता नहीं जानती । क्रिया रहित ज्ञान मा-

निंद पंगुके मोक्षके रास्तेको देख सक्ता है, मगर चल नहीं सक्ता। बस, इससे साबित हुआकि जब चलन स्वभाव क्रिया और दर्शक ज्ञान दोनों पदार्थ इकट्ठे होंगें तबही मोक्ष दे सकेंगे। इसलिये अकेले ज्ञानसे मुक्तिका मानना दुरुस्त नहीं। प्रथम पदार्थ इन लोगोंने प्रमाणको माना है। अतः हम कह सक्ते हैं कि ऐसे स्हीसही ज्ञानके साथ अगर क्रिया मिलभी जावे तो फिरभी कुछ नहीं बन सक्ता। क्योंकि सम्यग् ज्ञान-के साथ सम्यक् प्रकारसे क्रिया की जायगी तबही मोक्ष हाँसिल हो सकेगा अन्यथा नहीं। देखिये, न्याय दर्शनमें प्रमाणका लक्षण नीचे मुजब लिखा है।

" अर्थोपलब्धिहेतुःप्रमाणं "

बतलाइये, इस सूत्रमें लिखे हुए हेतु शब्दसे आप क्या लेते हैं। अगर हेतु शब्दसे निमित्त कारण ऐसा अर्थ करोगे तो ये बात सब कारकोंमें साधारण रहेगी। जिससे कर्त्ता कर्म वगैरा सब कारकोंको प्रमाण स्वरूप मानने पडेंगे। अगर हेतु शब्दसे असाधारण कारण (कारण)का अर्थ स्वीकारोगे, तो वैसा ज्ञानही सिद्ध होता है। नाकि इंद्रियार्थ सन्निकर्षः। यतः इंद्रिय और पदार्थ इन दोनोंके जड संबन्धको करण माननेसे घृतादिकोंकोभी करण मानना पडेंगे। इसलिये सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके ये करण हैं, नाकि कारण। यतः

साधकतम अव्यवहित फलोपेत कोही कारण मानना ठीकहै । अतः "स्वपर व्यवसायि ज्ञान प्रमाण" ऐसा जैनाचार्य कृत लक्षणही निर्दोषहै । प्रमाणके बाद इनका दूसरा पदार्थ प्रमेय है । इसके बारह भेद नीचे मुजब मानते हैं ।

तथाहिसुत्रं-" आत्म[1] शरीरें[2]द्रिया[3]र्थ[4] बु[5]द्धि मनं प्रवृत्तिदोषप्रेत्य[6]भाव फलेदु खोऽपवर्ग भेदात् द्वादशविधं "

देखिये ! इन बारह भेदोंको प्रमेयमें दाखिल करना एक इमाकतमें दाखिल है । क्योंकि प्रमेयमें इन बारह भेदोंका समावेश नहीं हो सकता है, यत. प्रथम शरीर, इंद्रिय, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, फल और दुख. इन आठ पदार्थोंका आत्मामेंहीं समावेश हो सकता है । क्योंकि संसारी आत्मा कथंचित् इससे अभिन्न है । इसलिये आत्मामेंही अन्तर्भाव करना योग्य है । देखिये, अब जिन आठ पदार्थोंका आत्मामें अन्तर्भाव किया जाता है प्रथम वो आत्माही प्रमेय नहीं बन सकता है । तो बाकीके कैसे बन सकेंग ? प्रिय सज्जनो ! इस जगतमें प्रथम तीन चीजोंको मानते हैं । एक प्रमेय, दूसरा प्रमाण और तीसरा प्रमाता । प्रमेय उसका नाम है, जो प्रत्यक्ष व परोक्ष इन दोनों प्रमाण द्वारा जिस्का अनुभव किया जावे । जैसे

प्रत्यक्ष प्रमाणसे हम देखते हैं कि यह घट है व यह पट (वस्त्र) है, अथवा मठ (मकानकी जाती) है वगैरा ।

परोक्षसे जैसे शास्त्र प्रमाणसे स्वर्ग नरकादि और धुंआके देखनेसे आगका ज्ञान करना इत्यादिक । स्वर्ग, नरक, घट, पट, आग वगैरा जितने पदार्थोंको हम ज्ञान द्वारा देखते हैं, इनको प्रमेय कहते हैं; और जिस प्रत्यक्ष व परोक्ष ज्ञान द्वारा ये देखे जाते हैं, उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं । और इनको जानने वाला जो है, उसको प्रमाता कहते हैं । अब सोचनेका मौका है कि इन पदार्थों को जानने वाला आत्मा साक्षात् प्रमाता है । उसको प्रमेय कहना, कितनी बेसमझकी बात है ? देखिये, आपके देखते २ आठ पदार्थको साथ लेकर आत्मा प्रमेयसे बाहर होगया । बतलाइये, अब नैयायिकके माने हुए प्रमेयके बारह भेद कहां उड गये ? प्रियमित्रो ! गभराइये नहीं अभी बहोत बाकी है । लीजिये, अब बाकीका जबाब । इस्के बाद इंद्रिय बुद्धि और मन ये तीन करण है । इस लिये प्रमेय नहीं बन सक्ते । किन्तु कथंचित् प्रमाणके अंग मानना चाहे तो मान सकते हैं । बाद रागद्वेष और मोह इनको नैयायिक लोग दोष कहते हैं । इस लिय इन तीनोंको प्रवृत्तिमें शामिल करनाही योग्य है । क्यों कि शुभाशुभ फलवाला मन, वचन, कायाके व्यापारकोही आप प्रवृति कहते हैं । राग द्वेष और

मोहकी प्रवृत्ति मन, वचन, कायाके व्यापारसे कोई अलग नहीं पाई जाती । अतः इन तीनोंका प्रवृत्तिमें समावेश करनाही ठीक रहेगा, और दु:ख तथा शब्दादिक विषयोंका (वारह भेदमें अर्थ शब्दका अर्थ विषय है ।) फलमेंही समावेश करना ठीक रहेगा । "सुख दु:खात्मक मुख्य फल तत् साधन तुगौणमिति जयन्त वचनात्" प्रेत्यभाव (परलोक) तथा अपवर्ग (मोक्ष) इन दोनोंकाभी आत्मामेंही समावेश करना ठीक है । क्योंकि आत्माका परिणामान्तर होनेकाही नाम परलोक या मोक्ष है । इसलिये इन दो पदार्थोंका आत्मासे पृथक् भाव करना ठीक नहीं है । प्रमेयके वारह भेद माननाभी केवल अज्ञानता है । अत "द्रव्यपर्यायात्मक वस्तुप्रमेयम्" यही लक्षण ठीक है । क्योंकि ये लक्षण सर्व संग्राहक है । इसलिये इसमें विस्तारकी जरूरत रहती नहीं है, और न इसका कोई खंडन कर सक्ता है । बाद तीसरा पदार्थ इन्होंने संशयको माना है । इसको कौन तत्त्व कह सक्ता है ? यहतो एक तत्त्वाभास है।

संशय नाम भ्रान्ति ज्ञानका है । इसलिये भ्रान्ति ज्ञानको तत्त्व समझने वालोंकोही हम भ्रान्त समझते हैं । बस, एव वाकीके पदार्थोंकोभी इसकी तरह विद्वान् पुरुषोंने तत्त्वाभास समझ लेने अगर हम यहापर सोलह पदार्थोंकाही वर्णन करना धारें तो एक वडा भारी ग्रन्थ वनानेकी जरूरत है । इसलिये

इस छोटेसे निवन्धमें इन तमामका स्वरूप लिखना अति दुःशक्य है। मगर फिरभी सोलह पदार्थोंमें एक छल पदार्थकोभी बडे आदरसे स्वीकारा है। इस्का खंडन करना मैं जरुरी समझता हूं। क्योंकि छल करना बिलकुल बुरा है। इस बातको हरएक मतवाले मंजूर करते हैं। ऐसे छलको भी नैयायिक मतके आचार्य गोतमजीने स्वीकृत रखा और अपने शिष्योंकोभी कह दियाकि, अगर छलका तत्त्व ज्ञान करोगे तो तुम मोक्षके अधिकारी हो जाओगे। ऐसी अकल मंदीपर रोना चाहिये नकि खुश होना। देखिये, छलके तीन भेद बयान किये हैं। वाक्छल, सामान्य छल और उपचारछल। वाक्छल उस्को कहते हैं कि किसी शख्सने साधारण शब्दका प्रयोगकिया (साधारण शब्द उस्को कहते हैं जिस्के कई अर्थ होसके।) है। वहाँपर कथन करने वालेके अपेक्षित अर्थको गुम करके रोला पानेके लिये दूसरा अर्थ निकालकर उस कथन कर्त्तापर दवाव डालनेको धमकीकी तौरपर कह देनाकि ऐसा कैसे हो सक्ता है? मसलन किसीने कहाकि "नवकम्बलोयं माणवकः" मतलब नवीन है कम्बल जिस्के पास ऐसा यह बालक है। यहाँपर " शब्दसे कथन करने वालेने नवीन अर्थका द्योतन कियाथा, इस बातको श्रवण कर्त्ता अच्छी तरहसे जानता है। मगर फिरभी नव शब्दका अर्थ नौ ऐसी संख्याको वाच्य रख कर " कुतोऽस्य नव कम्बलाः " याने

कहा इस्के पास नौ कम्वलें है ? ऐसा दूषण देकर कहता है कि इस्के पास तो एकही कम्मल है। देखिये, कैसा ज्ञान सिखा रखा है। उस विचारेने कव कहा था कि इस्के पास नो कम्वलीयें हैं। उस्ने तो एकही नूतन (नई) कम्वल है ऐसा कहाथा। उस्का खंडन कर डाला इस तरह का झूठा और खुश्कवादके तत्त्व ज्ञानसे अगर मोक्षकी माप्ति हो तो ऐसी मुक्ति गौतमजीकोही मुबारक हो। इतिवाक छल।

संभावनासे जिस्का अति प्रसंगभी होसक्ता है। ऐसे सामान्य वाक्यका किसीने प्रयोग किया है। वहांपर उस विचारेकी अपेक्षाको छोडकर उस्के वाक्यका निषेध करनेका नाम सामान्य छल है। जैसे "अहोनुख-ल्वसौ ब्राह्मणो विद्याचरण संपन्न इति ब्राह्मण स्तुति प्रसंगे कश्चिद्वदति संभ-वित ब्राह्मणे विद्याऽऽचरण संपदिति" मतलब-किसीने ब्राम्हणकी स्तुतिके प्रसंगमें कहाकि ब्राह्मण विद्या और आच-रण करके संपन्न होता है। यहाँपरभी हेतु द्वारा झट दूषण दे देगाकि यदि ब्राम्हणमें विद्या और आचरण रहते हैं तो जिस शूद्रमें ये दो बातें पाई जायगी वो शूद्रभी ब्राह्मणही कह लायगा। इस तरह अति प्रसंग दे देना इस्का नाम सामान्य छल है। देखिये, दूसरेके अभिप्रायको गुमकर डालनेकी इंद्रजालभी महर्षिजी अपने शिष्योंको सिखा गये हैं। इति सा-मान्य छल।

किसीने उपचारसे वाक्यका प्रयोग किया है। वहांपर उसके उपचारकी अपेक्षा को छोडकर मुख्य वृतिसे उसका खंडन कर देना। इसको उपचार छल कहते हैं। मसलन किसी शख्सने कहा कि " मञ्चाः क्रोशन्ति " अर्थात् मंजे बोल रहे हैं। यह लाक्षणिक प्रयोग है। इस लिये यहांपर प्रयोग ऐसेही किया जाता है। मगर लक्षणसे अर्थ यह लिया जाता है कि मंचे पर बैठे हुए पुरुष शब्द कर रहे हैं। यहांपर कथन करने वाले का खंडन करनेके लिये यह कह देना कि मंजे जड हैं, वे कैसे बोल सकते हैं। बस, ऐसे लाक्षणिक पदोंके अर्थको समझते हुएभी अपने कुतर्क द्वारा असली मतलबको गुम्म करना इसको उपचार छल कहते हैं।

प्रिय पाठकगणो! अब आपको बखूबी मालुम होगया होगा कि ऐसे ऐसे तत्त्वाभासोंको (मुख़सरमें समझ लेवें कि झूंठे तत्त्वको तत्त्वाभास कहते हैं) तत्त्व समझने वाले यदि क्रियाका स्वीकार करलेवें तोभी इनका कल्याण होना मुश्किल है। क्योंकि जब तक सत्य ज्ञानकी प्राप्ति नहो वहांतक क्रिया बिचारी क्या करसकती है? प्रिय जैनो! आपको इनकी उल्ट पुल्ट बातोंके श्रवण करनेसे जिनेश्वर देवके कथन किये हुए वचनोंपर खूबदृढ निश्चय होगया होगा। देखिये, उस परम कृपालुने हमें सदागमकी विद्या अगर न दी होती तो हमभी

इनके झूठे मतव्योंमें गोते खाते रहते मगर समझोकि हमारे वडे भारी पुण्यका उदयथा जो हम इनके मतव्योंसे वच गये हैं, और वीतरागके वचनामृतका पान कर रहे हैं। खयाल कीजिये ! हमारे सिरताज जिनेश्वर देवने मोक्षका तरीका कैसा उमदा बयान कियाहै वे वयान करते हैं कि–" सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्षमार्ग " इसका मतलब यह है कि सम्यग् ज्ञान (सच्चा ज्ञान) सम्यग् दर्शन (सुश्रद्धा) याने एतकाद और सम्यग् चारित्र (नेक और दुरुस्त चालचलन) यही मोक्षका मार्ग है। अर्थात् सत् ज्ञानकी प्राप्ति और एतकाद कारखना और नेक प्रवृत्ति रखनी इन तीनों बातोंके मिलनेपर मोक्ष हॉसिल होता है। देखिये, कैसी निष्पक्षपातता जाहेर किइ है ! नकिसी मतका नाम पाया जाता है, और नकिसी लिंगका। तीन बातें जरूर होनी चाहिये। इन तीन बातोंकर युक्त शख्स चाहे कहीं क्यों नहो अवश्यमेव तरेगा। मगर वो जैन जरूर कह लायगा। क्योंकि जननाम उसका है जो रागद्वेष रहित व्यक्तिका सेवक हो, सो पूर्वोक्त तीन चीजोंको जो पावेगा वोभी रागद्वेषरहित व्यक्तिकोही देव मानने लग जायगा। प्रिय मित्रो ! इन तीन चीजोंमेंभी सम्यक् दर्शन यानि एतकादका मुख्य दर्जा रखा है। क्योंकि बगैर एतकादके चाहे इतनी क्रिया क्यों न करें, व चाहे उतने भाषण क्यों न देवें, अथवा चाहे उतने व्रतादिक कष्ट सहकर अध्यात्मी क्यों न कहलावें,

मोक्षगति कभी नहीं पासक्ता। इसी बातकी खामीसे कई हमारे जैन भाइ नयी रोशनीके भवसमुद्रमें रूलानेवाली सोसायटीयोंमें दाखिल होते चले जाते हैं।

उनको प्रथम सोचना चाहिये कि हमारे घरमें किस बातकी खामी है? प्यारों वीतराग देवके अखूट खजानेमें खामी तो किसीभी बातकी नहीं है. हाँ! वेशक उनके एतकादकी खामी तो जरूर मानी जायगी; जो कि अपने सद्-शास्त्रोंके बगैरही मनन किये झट दूसरे पंथमें होजाते हैं। मगर उनको चाहिये कि प्रथम एतकाद रखें। क्योंकि बगैर एतकादके धार्मिक इल्म नहीं पासक्ताहै। धार्मिक इल्मकी बात तो दूर रही मगर संसारिक इल्मभी नहीं पासक्ताहै। मसलन देखिये एक लडकेको मदरसेमें बैठाया है, मास्टर उस्को सिखा रहाहै कि देख, लडके! क ऐसा होनाहै इस्के बाद दूसरा अक्षर ख ऐसा होताहै। यहांपर अगर वो लडका एतकादको छोड कर मास्टरसे झगडा करने लग जावे कि मास्टर साहिब! जिस्को आप ख मानते हैं उस्को मैं क मान लूं और पेश्तरके ककोंमें पीछेका ख मानलूं तो क्या हरकतहै? मतलब उस्ने कहाकि ख–की आकृतिवाला–क–बनाया जावे और ककी आकृति जैसा–ख–बनाया जावे तो क्या हर्ज मर्जकी बातहै? देखिये, यहांपर क–ख–के मामलेमें हि एतकात रहित होकर

मास्टरसे झगडा करने लग जायगा तो सपूर्ण कितानका ज्ञान होना तो दूररहा मगर क–ख–ग–इत्यादि बत्तीस अक्षरका ज्ञानभी सारी उमरके लिये दु:शक्य रहेगा । इसलिये वगैर एतकादके ससारीक इल्मभी नहीं प्राप्त होता है तो धार्मिक इल्म कैसे हाँसिल होसक्ता है ? नेक लडके जैसे मास्टरके वचनोंको आप्त वचनवत् मानते हैं । वाद जब पांच सात किताबोंका ज्ञान होजाताहै तो वह काविल वयसके होजाते हैं। फिर वे चाहे जितने जवाव सवाल करें मास्टर समझा सक्ताहै, और वे समझ सक्ते हैं । इसी तरह हमारे जैन भाइयोंको शुरुआतसे हि हुज्जत वाजी करनी न चाहिये । किन्तु पाच पचीश सूत्रोंको श्रवणकर अच्छी तरह जैन सूत्रोंका ज्ञान मिलाना चाहिये वाद किसी वातका सदेह हो तो पूछे । अगर एक गुरु उस वातका अच्छी तरहसे समाधान न कर सके तो दूसरे गुरुसे दरियाफ्त करें, समाधान न हुआ तो गीतार्थसे दरियाफ्त करो इस तरहसे कोई गीतार्थ अगर समाधान न कर सके तो दूसरे मतके शास्त्र देखें । अपने पढे हुए या सुने हुए शास्त्रमें जितना तत्त्वज्ञान भरा है अगर उतनाहि तत्त्वज्ञान उनके उतने मूलशास्त्रोंमेंसे निकल आवे और उस मतके पठित लोग तमाम सदेहोंको निवृत्त कर सके तो फिर वेशक अपने मतको छोड देवें । मगर फिरभी अपने गीतार्थ गुरुओंके साथ उनको वयस करवाय लेना चाहिये । अगर इतनी कोशिश करें तो फिर धर्म भ्रष्टही क्यों होव। आज

फल तो वगैर विचारेही विचारे अपने चिंतामणि रत्नको छोड कर झट वडे खुश होकर काचको ग्रहण कर लेतेहैं। जरा पांच सात अंग्रेजी कितावें पढी और लेक्चरर हो गयेकि झट आर्यसमाजी व ब्रह्मसमाजी वन वैठतेहैं क्या करें ? उन विचारोंकाभी कोइ दोष नहीं हैं। कुसंगके वशसे जव उनकी संसारमें रुलनेकीहि भवितव्यता हुइ तो फिर कौन हटा सक्ता है ? हाँ ! अगर पूछनेपर जैन मुनि उनको उत्तर न देवें और अल्पज्ञान होनेकी वजहसे उसका नास्तिक वगैरा शब्दोंसे तिरस्कार करें मगर यह साफ वात न वतलावें कि हमारे में अमुक अमुक पुरुष गीतार्थ हैं तो मुनिजनोंका दोष कहलायगा। अगर वतलानेपर उसको धारण न करें और अपनीही कुतर्क चलाये जावे, मुनिजनोंके वचनका अच्छी तरहसे मनन न करे तो उसके भाग्यकाहि दोष समझा जायगा, नकि दूसरेका। प्रिय सज्जनो ! यह नहीं समझनाकि मैं अपने मजमूनको छोड वैठाहूं। किन्तु यहांपर एतकादके मौकेपर मुताविक जमाना हालके इतना लिखनाही वेहत्तर था इसलिये लिखागया। अव कहनेका तात्पर्य यहहैकि आपने नैयायिककाभी सारांश अच्छी तरहसे देख लियाहै। इसी तरहसे वैशेषिककाभी समझ लेना। इन दोनों मतमें प्रायः समानता होनेके सववसे नैयायिकके खंडनसेही वैशेषिकका समझ लेना। क्योंकि इनसोलह पदार्थोंमें वैशेषिककाभी अनुमतहै इनके छ पदार्थोंकाभी खंडन विचारते मगर

निबध बढ न जावे अतः इसीमेंहि समावेश समझ लेवें । पल्ल वितेन विद्वद्वर्गेषु जनेषु ।

प्रिय सन्मित्रो ! अब इधर साख्य मतकी तरफ निगाह करते है, तो इनकी तत्त्व सख्या कुछ अनोखाही ज्ञान देरही है । प्यारों ! इनके मन्तव्योंको देखकर मुझे अतीव आश्चर्य पैदा होता है, और विचार आता है कि नामालुम क्या बात है । क्या उस परम कृपालु वीरभगवत् के वचन इनके कानोंतक गति नहीं कर सकते ? या उनके वचनोंका ईर्षालु होकर इन पामरोंने मनन नहीं किया ? अथवा इनकी भवितव्यताने इनको इस फदेसे निकल्ने नहीं दिया जो साक्षात् विरुद्ध बातोंका बयान करते हुएभी जरा शर्म नहीं खाते हैं ।

साख्य-क्यों ? मुफतमें मगजमारी करनी शुरूकी है कुछ जानतेभी हो कि मुहि रोला पाना शुरु किया है ? अगर कुच्छ इल्म है तो बतलाइये ! हमारा कौनसा मन्तव्य ठीक नहीं है ?

जैन-देखिये, आप आत्माको भोक्ता समझनेपरभी कर्त्ता नहीं मानते हो यह कितनी बडीभारी भूल है ।

साख्य-कहिये साहिब इसमें क्या भूल है ? सो जरा दलीलसे समझाइये ?

जैन-देखिये दलील यह है। तथाहि:-

कर्त्तात्मा, स्वकर्मफल भोक्तृत्वात् ।
यः स्वकर्मफल भोक्तासकर्त्तापिदृष्टः ।
यथाकृषीवलः ।

भावार्थ-अपने किये हुए कर्मफलका भोगनेवाला होनेसे आत्मा कर्त्ताभी जरूर है। क्योंकि जोजो अपने कर्मोंका फल भोगते हैं वो कर्त्ताभी जरूर होते हैं। मसलन किसान लोग अनाजको खाते हैं तो उस्को उत्पन्नभी करते हैं।

सांख्य-अहा हा!! खूब कहा देखिये, आपकी किसानवाली मिसाल बिलकुलहि हमारे मतको सही कररही है। यतः आपने कहाकि किसान अनाजको खाता है तो पैदाभी करता है सो ठीक। किसानके लिये तो कर्तृत्त्व और भोक्तृत्त्व ये दोनों बातें पाइ गइ मगर बाकीके लोक वगैरही खेती किये किसानके पैदा किये हुए अन्नको खाते हैं। बतलाइये, दोनों बातें कैसे पाइ जायगी? बस इसीतरह किसानकी जगह प्रकृति कर्त्री है और पुरुष (आत्मा) भोक्ता है। बतलाइये, इसमें कौनसी बडी भारी भूल किई?

जैन-वाह जी वाह!! आप बडे अकलमंद मालुम होते हो? जो ऐसा बयान करते हो याद रहे? यह बात कभी नहीं

चन सक्ती। क्योंकि बाकीके लोगोंमेंभी कर्तृत्व मानोगे तवही भोक्तृत्व लिया जायगा। यतः बाकीके लोगोंनेभी उद्यमद्वारा धन मिलाया था तवही अनाज खा सके, उनके पास पैसे नहोते तो अनाज कैसे खाते? इसलिये इनमें धनोत्पन्न कर्तृत्व थातो भोक्तृत्व पाया गया। बतलाइये, आत्मामें आप किसबातका कर्तृत्व मानते हो? जब किसी एक बातकाभी इसको कर्त्ता मानोगे तब किसान वाली मिसालसे आप अपना इष्ट साध सक्ते हैं। अन्यथा नहीं। और एक यहभी बात हैकि अगर आप आत्माको कर्त्ता नहीं मानोगे तो आपका आत्मा कुछ चीजही नहीं रहेगा।

सांख्य–बतलाइये, किस तरहसे?

लीजिये, यहां क्या देर है।

भवत् कल्पित पुरुषो वस्तु न भवति, अकर्तृत्वात्, खपुष्पवत्।

मतलब–आपका कल्पा हुआ पुरुष कुच्छ चीज नहीं है। अकर्त्ता होनेसे जैसे आकाशका फूल दर असलही कोइ चीजनहीं है। तोवो कर्त्ताभी नहीं माना जाता। हां जो दुनियामें है कुछन। योतो कुछ जरुरहि करेगा अवहम आपसे यह बात पूछते हैं कि आपका माना हुआ आत्मा भुजी क्रिया (भोग) करता है? या

नहीं ? अगर कहोगे करता है तो और क्रियाओंने आपका क्या विगाडा । है अगर कहोगे भुजी क्रियाकोभी नहीं कर्ता है तो फिर भोक्ता किस प्रकारसे मानते हो ?

सांख्य–हम आत्माको साधारण तोरपर भोक्ता मानते हैं नकि साक्षात् । मसलन स्फटिक रत्नके पास लाल–पीला–नीला वगैरा जैसे रंगका फूल रखा जावे वैसाहि रंग उस स्फटिक रत्नपर प्रतिबिम्बितहो जाता है । मतलब उसवक्त उस स्फटिक रत्नका मूलरंग नहीं पहिचाना जाता है, मगर असल स्फटिक रत्नका जो रंग होगा सोहि लिया जायगा नकि उपाधि जन्य । इसी तरहसे वस्तुतः आत्मा भोक्ता नहीं है; मगर चित्के सानिध्यसे जब पदार्थ बुद्धिमें प्रतिबिम्बित होते हें; तब वेहि पदार्थ जाकर आत्मामें प्रतिबिम्बित होते हैं, उस वक्त आत्मा भ्रांतिसे यह समझने लग जाता है कि "अहं भोक्ता" यानि मैं सुख दुःखोका भोगने वाला हूं । बस, इस रीत्यानुसार हम आत्माको भोक्ता समझते हैं नकि वस्तुतः ।

जैन–जब आप आत्माको वस्तुतः भोक्ताहि नहीं मानते हो तो उसे भोक्ता कहना आपका वृथा हठवाद है । बाद आपने साधारण तोरपर इसे भोक्तासिद्ध करनेके लिये स्फटिक रत्नकी मिसाल दी मगर यहभी आपका इष्ट साध नहीं सक्ती है । क्योंकि स्फटिकमेंभी एक किस्मका परिणाम रहता है तो फूलका प्रति-

विम्ब हो सकता है वरना कभी नहोता। देखिये, अब पथ्थरके पास मरजी चाहे वैसा फूल क्यों नरखा जावे उसमें प्रतिम्बि हरगीज न पडेगा, इससे सावित होता है कि स्फटिकमेंभी इस किस्मके परिणामकी हस्ति होने परहि फूल प्रतिबिम्बित हुआ वरना कैसे होता ? बस, इसी तरह आत्माकोभी परिणामसे भोक्ता मानना पडेगा, जो भोक्ता है वो कर्ताभी जरूर रहोगा।

सांख्य–किसी कदर भोक्ता हो सक्ता है, मगर कर्ता नहीं बन सक्ता।

जैन–याद रखना सुन मित्र ! जो कर्त्ता नही होगा वो भोक्ताभी कभी न हो सकेगा। देखिये, दलील यह है संसारी आत्मा मुक्तात्माकी तरह कर्त्ता नहीं होनेसे भोक्ताभी नहीं हो सक्ता है।

तथाहि संसार्यात्मा, भोक्तान भवति, अकर्तृत्वात् । मुक्तात्मवत् ।

मतलब–उपरकी इबारतमें हलहो चुका है। अगर अकर्त्ता कोहि भोक्ता मानोगे तो तुम्हारे मतमें कृतनाश अकृताभ्यागम रुपदोपका प्रसंग आवेगा। (मतलब किये हुए कर्मोका नाश और नहीं किये हुएका आगमन होगा)

सांख्य–किस तरहसे होगा जरा दिखलाइये तो सही।

जैन–देखिये, प्रकृति कर्मको करती है मगर प्रकृतिके साथ कर्मफलका संयोग नहीं होता है और आत्मा कर्मका कर्त्ता नहीं है, मगर कर्म फलके साथ अभी संबन्ध रखती है। प्रकृतिके लिये किये हुएका नाश यह विकल्प खडा हुआ और आत्माके लिये वगैर कियेका आगमन खडा हुआ। देखिये, आपने एक कर्तृत्त्वके छोडनेसे कितनी तकलीफें उठाइ हैं। क्योंकि यहएक अनादि नियम है कि जो जैसा करता है उस्का फलभी वोही पाता है। मगर आपके मतमें अकर्तृत्त्व रूप उपाधिने इस नियमका सादर स्वीकार नहीं किया जिससे अनेक विद्वानोंने आपकी हांसी उडाई और अनेक उडांयगे। इसलिये अब आपको लाजीम है कि भोक्तृत्त्ववत् कर्तृत्त्वकाभी स्वीकार करें; और महेरबानी करजरा बतलावेंकि आपके और मन्तव्य कौनसे हैं। ताके उनपरभी लेखनी उठाइ जावे।

सांख्य–हमारे यहां पच्चीस तत्त्व माने हैं सो नीचे दिखाये जाते हैं। आप ध्यान लगाकर पढे! प्रथम तत्त्व प्रकृति है। अब यहांपर आपको समझना चाहियेकि प्रकृति किस्को कहते हैं। देखिये, प्रथम हमारे यहां तीन गुण माने जाते हैं सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण, इनमेंसे सत्व गुण सुख लक्षण है। और रजोगुण दुःख लक्षण है; तथा तमोगुण मोह लक्षण है।

इनके तीनही अलाहिदा अलाहिदा लिंग (चिन्ह) ह ।

ताप रजोगुणका चिह्न है, और दैन्यता तमोगुणका लिंग (चिह्न) है । इनद्वारा हम जान सक्ते हैं कि इसवक्त हमारे अदर फलाना गुण मौजूद है । इन तीन गुण करके जगत् व्याप्त है । मगर ऊर्ध्व लोगमें अक्सर देवोंमें सत्वगुणकी अधिकता है और अधो लोगमें रहने वाले तिर्यञ्च तथा नर्कमें तमो गुणकी अधिकता है । मनुष्योंमें रजोगुणकी अधिकता है । देखिये, सोहि बात सांख्य सूत्रकी कारिका-५४ में बयान है ।

ऊर्ध्वं सत्वविशालस्तमो विशालश्च मूलत सर्ग ॥
मध्येरजोविशालो ब्रह्मादिस्तम्ब पर्य्यन्त ॥ १ ॥

मतलब उपर कह चुके है । जब इन तीन गुणोंकी समावस्था हो जाती है प्रकृति नामा तत्त्व कहलाता है । इसके बाद तेईस पदार्थ पैदा होतेहैं इनका क्रम तथा नाम नीचे व मूजब समझें ।

प्रकृतेर्महास्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च पोडशक ॥
तस्मादपिपोडशकात् पञ्चभ्य पञ्चभूतानि ॥ १ ॥

यह साख्य सूत्रकी तेतीसमी कारिका है ।

अर्थ-प्रथम प्रकृतिका स्वरूप लिखा गया है उस प्रकृतिसे जडबुद्धि पैदा होती है । जिस्का दूसरा नाम महान्भी है । यु-

द्धिसे " सचाहं सुभगः " " अहं दर्शनीयः " इत्याद्य अभिमानरूपः अर्थात् मैं वडे सौभाग्य कर्मवाला हूं। मैं अत्यन्त रुपवाला (दर्शनीक) हूं ऐसा अभिमान होता है उसको अहंकार कहते हैं, सो पैदा होता है। वाद अहंकारसे नीचेकी सोलह चीजें पैदा होती है ॥

चक्षु-श्रोत्र (कान) घ्राण (नासिका) रसन (जवान) त्वक् (स्पर्श) ये पांच बुद्धेन्द्रिय पैदा होती है । उनसे ज्ञान पैदा होता है इसलिये इनको ज्ञानेन्द्रिय व बुद्धेन्द्रिय कहते हैं । और वाक्-पाणि (हाथ) पाद (पाँव) अपायुः (गुदा) और-उपस्थ (लिंग व योनि) ये पांच कर्मेंद्रिय है। क्योंकि इनसे कथन-ग्रहण-विहरण आदि कर्म होते हैं, इसलिये इनको कर्मेंद्रिय कहते हैं। पांच बुद्धि-इंद्रियें और पांच कर्मेंद्रिय ये मिलकर दश हुये ग्यारहवा मन और शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श ये पांच तन्मात्रा सर्व मिलकर ये सोलह चीजें अहंकारसे पैदा होत्री हैं। इन सोलहमेंसे पांच तन्मात्रासे पांच भूत पैदा होते हैं। जैसे शब्द तन्मात्रासे आकाश-रूप तन्मात्रासे अग्निः-रस तन्मात्रासे जल-गंधतमात्रासे पृथ्वी-और स्पर्श तन्मात्रासे वायुः इस रीत्यानुसार पांच तन्मात्राओंसे पांच भूत पैदा होते हैं ।

प्रथमके सोलह पदार्थके साथ इन पांचोका मेलाप करनेसे इंकीश हुए इनके साथ पूर्वके प्रकृति बुद्धि और अहंकार

इन तीन पदार्थके मिलनेसे चोइस तत्त्व बनते हैं, और पचीसमा पुरुष (आतमा) ये पचीस तत्त्व हमारे सांख्य मतमें माने हुए हैं। जिनमेंसे आत्माको हम नीचे मूजब स्वरूप वाला मानते है।

अमूर्त्तश्चेतनो भोगी नित्य सर्वगतोऽक्रिय ॥
अकर्त्ता निर्गुण सूक्ष्म आत्मा कापिल दर्शने ॥१॥

मतलब–हमारे यहां कापिल दर्शनमें आत्माको अमूर्त्त, चेतन, भोगी, नित्य–सर्व व्यापक–अकर्त्ता–निर्गुण और सूक्ष्म माना है। देखिये, कैसे तत्त्व सुनाये।

जैन–वाहजी ! वाह ! ! खूब तत्त्व सुनाये ! क्या ये तत्त्व हैं ? या अतत्त्व ? आप जरा हमारे नव तत्त्व पढते तो आंखें खुलजाती और मालुम होजाता कि ठीक तत्त्व येही हैं। प्रिय सांख्यमतावलम्बी भाइयो ! प्रथम आपको सोचना चाहियेथा कि जड बुद्धि पदार्थ ज्ञान कैसे कर सकेगी ! प्रत्यक्षत या बुद्धि एक किस्मकी चैतन्य स्वरूप है, उस्को जड कहना कितनी भूल है ? अगर योजड है तो आप उसमें पदार्थोंके आक्रमणसे पदार्थ परिच्छेदक कर्त्री (पदार्थोंको-जाननेवाली) उसको कैसे कहते है।

सांख्य–हम चित् (चेतना) के सानिध्यसे बुद्धिको पदार्थ

जाननेवाली मानते हैं इसलिये इसमें कोई दूपण नहीं है।

जैन—चित्‌के सानिध्यसेभी जड बुद्धि पदार्थ ज्ञानको नहीं करसक्ती। यतः अगर हम घडेको हाथमें लेलेवें तो क्या वो घट चैतन्य हो जायगा ? हरगिज नहीं ! हरगिज नहीं ! ! ऐसा कभी नहीं होसकता है कि चैतन्यके योगसे अचैतन्य चैतन्य हो जावे। क्योंकि इन दोनोंके परस्पर अपरावृत्ति स्वभावको ब्रह्माभी अन्यथा नहीं करसकता, इसलिये आत्मिक धर्म बुद्धि को जड मानना यह आपकी कल्पना विलकुल वृथाहै। वाद अहंकारको बुद्धिसे पैदा हुआ माननाभी ठीक नहीं है। क्योंकि मैं सुभग हूं अथवा मैं दर्शनीक हूं इस किसमके अभीमानको आपकी जडबुद्धि पैदा नहीं करसकती है। यतः ऐसा विचारभी कर्मावृत चैतन्यसेही होसकता है नाकि जडसे। अगर जडसे होवा तो घटादिक जड पदार्थोंमेंभी यह इरादा पाया जाता; इस से सिद्ध हुआकि यहभी विचार चैतन्यसेही होता है। वाद अहंकारसे सोलह चीजोंकी उत्पत्ति मानतेहो सोभी अनुचित वात है। क्योंकि अगर अहंकार (अभिमान) से पूर्वोक्त पांच बुद्धेन्द्रिय आदि षोडश करण पैदा होता हैं, तो फिर लूले-अंधे-वहिर (वहेरा) कुणि (टुंटे) आदि रोगियोंको रोना किस लिये चाहिये ? फौरन अपने मनमें अभिमान ले आना चाहिये कि हम ऐसे जबरदस्तहैं, हम ऐसे सौभाग्यवान् हैं, हम ऐसे रूपवान् हैं। बस, उस अभिमान द्वारा झट उनको ज्ञानेंद्रियें

व कर्मेंद्रियें मिलजायगी और उनकी मजकुरा खामीये पूरी हो जायगी। देखिये, यह एक आश्चर्यकारी औषध मिलाहै न किसी डाक्टरके पास जाना पडेगा और न किसी हकीमके पास।

सांख्य-यह आप क्या कहरहे है? ऐसा कभी नहीं होसक्ता। क्या यह फिलॉसुफी आपने अपने घरसे तो नही निकाली है?

जैन-नहींजी! नही!! हमने अपने घरसे नहीं निकाली हैं किन्तु इस नराली दवाको आपके घरमें निगाह करनेपरहि निहाली (देखी) है।

भाइसाब!!! जरा गुस्सा नहीं करना' आप बडे पक्षपातम पडेहो वरना 'ऐसा कभी नहीं हो सकता' ऐसा कभी न कहते। क्योंकि जब आप मान चुकेहो कि अभिमानसे सोलह चीजे पैदा होती हैं तो फिर अभिमान करनेसे मजकुरा चीजें क्यो न मिलेगी? क्योंकि मजकुरा चीजोंका सोलह चीजोंमें नाम है। अत' आपके मानने मुताबिक तो बरावर मिलनी चाहिये। देखिये, घटकी पैदायश मिट्टीसे है तो एक घटके फूट जानेपर दूसरा घट पैदा करना होतो मृत्तिका द्वारा हो सकता है। बस, इसी तरह जब अहंकारसे इंद्रिय आदिकी पैदायश मानते हो तो जिसवक्त जिस किसी इंद्रियकी न्यूनता को हम देखेंगे अभिमान द्वारा फौरन बनायलेंगे। बनावेंगे क्या

खाक ? कुच्छ इस बातमें सत्यताभी होती जो बनाते। ख्वाब के पदार्थोंसेभी कोइ संतोषित हुआ है जो होवें। अफसोस है ऐसे तत्त्वों–पर। या इनके बानी मुबानीपर जोऐसी ऐसी बातोंके पेश करते हुए जराभी लज्जित नहीं हुआ। इंद्रियको तो अब बाजुपर रखदेवें मगर बडेबडे पहाड–शहेर–नगर–द्वीप–समुद्र–बेट वगैरा सब चीजें अभिमानसेही पैदा हुई है ऐसा सांख्य मानते हैं। क्योंकि पृथ्वी–पाणी–आग–हवा–और आकाश इन पांचके होनेसे दुनिया है अगर येह पांच न होवे तो दुनियाही नहीं होसक्ती। देखिये, अब यह पांचहि भूत अहंकारसे पैदा होनेवाली पांच तन्मात्रासे पैदा हुए हैं।

इसलिये मेरा यह कथनकि मचकुरा तमाम चीजें अहंकारसे पैदा हुइ है असत्य नहीं है किन्तु सत्य है। देखिये सांख्योंका यह मानना कितना भूलभरा है ? मगर स्वामी दयानंदजी ऐसी मोटी बुद्धिवाले आदमीथे कि जैन मतमें तो बडी बडी बारीकीयें छांटने लग गयेथे। लेकिन् आपने सत्यार्थ प्रकाशमें सांख्य मतकी ऐसी बातोंकोभी स्वीकृत रखी है और अपने शिष्योंको ज्ञान करानेके लिये इनबातोंका उल्लेख कर गये हैं। शायद स्वामीजीका यह खयाल होगाकि समाजी अगर समुद्रमें डूबता होगा उस वक्त अपने दिलमें अभिमान लाकर बेट बना लेगा कि झट बच जायगा। प्रिय सज्जनो ! इस वक्त मेरी लेखनी द्वेषसे चल रही है ऐसा नहीं समझना। किन्तु दया भाव-

से यह कह रही है कि अफसोस है स्वामीजीकी ल्याकतपर कि जिस्ने परम पवित्र वीतराग देवके कथन किये हुए मार्गको तो दुष्ट कर्म सागरमें डुबोने वाला लिखा है। मगर न मालूम ऐसी ऐसी वाहियात वातोंके पाते हुए उस्की अकल कहाँ फिरने गइथी ? शायद नियोगमें नियोजित हुइ होगी जो इन वातोंकी तरफ बिलकुल लक्ष नहीं दिया है।

प्यारों ! इसवातके करनेसे मैं प्रकरण वहार होगया हू ऐसाभी आप न समझें। किन्तु आपको यह समझा रहा हू कि दयानदीय लोगभी इन वातोंको मानते हैं। वाद पाच कर्मेंद्रिय माननेकीभी कोइ जरूरत नहीं है। क्योंकि इन पांचोंके सिवाय बाकीके अगोंमें यदि क्रिया नहोती तो ऐसेभी मान लेते मगर वाकीके अगभी क्रिया करते है। जैसे विग्रही महिष (भैंसा) किसी पुरुषके व अपनी जातीके साथ लडनेका काम लेता है तो शृग व शिरसेही लेता है। इसलिये कर्मेंद्रियवाली कल्पनाभी वृथा है। वाद शब्दसे आकाशकी उत्पत्ति मानते हैं यहभी सिद्ध नहीं होसक्ता। यत प्रथम तो प्राय॰ हरएक मतवाले आकाशको नित्य मानते है। जव पैदायश मानी जायगी तो तमामका नित्यवाला सिद्धान्त उड जायगा, और युक्तिभी इसवातको सिद्ध नहीं होने देती। क्योंकि इनके मतमें सबसे पेश्तर प्रकृति होती है, उससे बुद्धि होती है, बुद्धिसे और अहकारसे सोलह चीजें पैदा होती है, ये सव मिलकर उन्नीस पदार्थ होते हैं, और वीसमा

पुरुष इन वीस पदार्थोंके बादमें जाकर आकाश पैदा होता है। बतलाइये, विना आकाशके ये वीस पदार्थ कहां ठहेरेथे? क्योंकि आकाश नामही अवकाश देने वालेका है। अब सोचना चाहियेकि जब अवकाश (पोलाद) देनेवालीही कोइ चीज नहीं थी तो फिर प्रथमकी प्रकृति आदि वीस चीजें किसमें रहीथीं? वस, इससे सिद्ध हुआकि आस्मानकी पैदायश माननेवाले सांख्य मतमें पोलम पोल है। वाद रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इनसे अग्नि आदि चार तत्त्वोंकी पैदायश मानते हैं, यहभी वात ठीक नहीं है। क्योंकि रूपादिक गुण हैं वह गुणीको कभी नहीं पैदा कर सक्ते हैं! क्या? ऐसाभी हो सक्ता है कि पुत्र पिताको पैदा कर सके। हरगिज नहीं। याद रहे गुणीमें गुणोंकी पराष्टत्ति तो वेशक हो सकेगी मगर आधेय गुण अपने आधार गुणीको कभी नहीं पैदा कर सक्ता। प्रिय सांख्यो! देखिये, आपके माने हुए चोईस पदार्थोंका तो खंडन कर दिया गया। अबरहा आत्मा सो इसकी व्यवस्थाभी ठीक नहीं है। क्योंकि आप आत्माको पूर्व—अवस्थामें निर्मल मानते हैं और बादमें उसके साथ प्रकृतिका संयोग मानते हो; और जब आत्मामें विवेक पैदा होता है तो उसका मोक्ष मानते हो मगर देखिये, यह बात ठीक नहीं है। यतः बतलाइये, जिस निर्मल आत्माके साथ प्रकृतिका लगना मानते हो वो आत्मा खुद प्रकृतिको चाहता है? या प्रकृति

अपनी जबरदस्तीसे लग जाती है? प्रथम पक्षको तो आप स्वीकारही नहीं सक्के क्योंकि उसवक्त बगैर मनके उस आत्मा में इच्छा नहीं होती अगर दुसरे पक्षको मानोगें तो पूर्वावस्थामेंभी उस निर्मलात्माको प्रकृतिका लग जाना मानना पडेगा फिरतो मोक्षावस्थामें आप आत्माका बन्धन होना नहीं मानते हो, आपका यह सिद्धान्त कायम नहीं रहेगा। देखिये, कैसा व्याघ्रतटिनी न्याय समुपस्थित हुआ है? अबतो इस बन्धनसे निकलनाही मुश्कील होगया। अगर जिनेंद्रके वचनोंको स्वीकार करते तो ऐसा हाल क्यों? होता। शायद साङ्ख्योंकी इस आपत्को देखकरही दयानदजीने एक रास्ता खुला रख दिया होगा। प्रिय मित्रो! नवतत्त्वके जानने वालो! आप बखूबी समझ गये होगेकि इनके माने हुए पचीसके पचीसहि तत्त्वाभास है। इत्यलमधिकेन इति सांख्य।

प्रिय सज्जनो! अब जैमिनिके मन्तव्योंको दृष्टीगोचर करते हैं तो इनोंकी सब मतोंके मन्तव्यसे अधिक तरगिरी हुइ हालत मालुम होती है। क्योंकि ये लोक हिंसामें धर्म मानते हैं। मतलब जब दीगर लोग "अहिंसा परमो धर्म" इस पदको याद कर ससारी मामलेमें किंचित् हिंसाके सेवन करने वालेभी धार्मिक मामलेमें हिंसाको बाजुपर रखकर निरवद्य काम करते हैं। तब इधर वेदोक्त विधिपर चलने वाले जैमिनीय लोक यज्ञादिके बहार

मांसभक्षका व जीव हिंसाका त्याग करना चाहिये। ऐसा बयान करते हुए भी धार्मिक समजी हुइ अपनी यज्ञ विधिमें मांस भक्षण तथा जीव वधको स्वीकृत रखते हैं। अफसोस है! ऐसे मंतव्योंपर।

जैमिनि–क्यों? अफसोस करना शुरु किया है? अगर हमारी युक्तिको श्रवण करते तो इस तरह कभी न गभराते। देखिये, प्रथम आपको खयाल करना चाहिये कि कौनसी हिंसा बुरी और पालन जनक है. जरा खयाल दीजिये! मेरी बातपर?

कसाइ व शिकारीयोंकी तरह गृद्धिभाव या व्यनसे किइ हुइ हिंसा बुरी और पाप हेतु है परंतु जो यसमें जीव हिंसा कि जाती है इस्में कोइ पाप नहीं है क्यों कि हमारा यह मान ना है कि "वेद विहिता हिंसा, अधर्म जनिका नभवति, धर्म हेतुत्वात्–यानि धर्म हेतु होनेसे वेदोक्त विधिसे किइ हुइ हिंसा अधर्मको पैदा करनेवाली नहीं होती है. वल्के धर्म हेतु है. क्योंकि वेद विहित हिंसासे देवता अतिथि तथा पितृगणोंको प्रीति पैदा होती है मेरा यहकथन व्यभिचार ग्रस्त नहीं है किन्तु अव्यभिचारी है क्योंकि कारीरी आदि यज्ञोंके करनेसे फौरन वृष्टि आती है इससे हम साफ कह सक्ते हैं कि यज्ञसे संतुष्ट हुए देवोंका यह काम है वस इससे देवताओंको प्रीतिका होना खूब साबित होता है. बाद मधुपर्कके खिलाने-

से (मासमधु वगेरा समिलित वस्तु) अतिथिके चित्तकी प्रसन्नता तो प्रत्यक्षसेहि देखी जाती है. और पितृगणकोभी वेदोक्त कथन पूर्वक श्राद्धमें मांस दिया जाता है जिससे वें भी वडे प्रसन्न होत हैं और इस प्रसन्नताके वदलेमें वें हमारे सतानकी वृद्धि करते हैं यहबातभी साक्षात् देखनेमें आती है ! वैसेहि देवताओंको सतुष्ट करनेके लिये अश्वमेध-नरमेध (घोडा गौ और मनुष्यका मारना) आदि करनेकी विधि-जगह जगह पर हमारे आगम शास्त्रोंमें देखी जाती है अतिथिके लिये जीवोंको मारनेकाभी विधान " महोक्ष वा महाजवा श्रोत्रियाय प्रकल्पयेत् " इत्यादिक श्रुतिवाक्योंसे जाना है. पितृगणोंको सन्तुष्ट करनेके लियेभी नीचे मूजब पाठ है.

द्वौमासौ मत्स्यमांसेन. त्रीन् मासान् हारिणेनतु ।
औरभ्रेणाणचतुर , शाकुनेनैवपञ्चतु ॥१॥

मतलब-मत्स्यके मांससे दो महिनेतक हिरणके, माससे तीन महिनेतक, मेंढेके मांससे चार महिनेतक, और पक्षीयोंके मांससे पांच महिनतक पितृगणको तृप्ति रहती है.

जैन-वाहजी ! वाह ! ! खूब ! धर्मका रहस्य समज गये हो ! क्या हिंसाभी धर्महेतु वन सक्ती है ? देखिये ! अब मैं सुनाता हू जरा तवज्जह रखकरें ! आपको याद रहें ! हिंसाकभी

धर्महेतु नहीं होसक्ती ! क्योंकि इसबातमें प्रत्यक्षतया वचनका विरोध पाया जाता है. यतः हिंसा है तो फिर धर्म कैसे ? और धर्म है तो फिर हिंसा कैसे ? क्या ऐसाभी कभी होसक्ता है और वंध्यांभी है नहीं ! नहीं ! ! माता क्या और वंध्या क्यां-यह वात कभी नहीं वनसक्ती ! आपके माननेके मुताबिक हिंसा कारण है और धर्म उस्का कार्य्य है यहबातभी बाल भाषितवत् संगति नहीं खाती है क्योंकि जो जिस्के साथ अन्वयव्यतिरेक पणे अनुकरण कर्त्ता है वो उस्का कार्य्य हो सक्ता है जैसे मृत् पिंडादिकका घटादिक कार्य्य होता है एसे धर्मका अहिंसा कारण नहीं होसक्ती घटके लिये तो यह निश्चय हो चुका है कि मृत्तिकाके सिवाय और किसी पदार्थसे घट नहीं वन सक्ता. हिंसाके लिये यह नियम नहीं है यहीं धर्मका कारण वन सके ! क्योंकि एसा कहनेसे आपकेही शास्त्रमें माने हूए तपजप संयम नियमादिकोंको धर्मप्रति अकारणताका प्रसंग आवेगा ! इसलिये हिंसाको छोडकर तपजप संयम नियमादिकोंकोहि धर्मका कारण मानना ठीक है.

जैमिनि-दुसरेके मन्तव्योंको वगैरही समझे कुद पडना अक्ल मंदीमें दाखिल नहीं है हमकब कहते हैं कि सामान्य हिंसाधर्म हेतु है हमारा तो यह कहना है कि वेद्रविहित विशिष्टहिंसा धर्मजानिका है नाकि तमाम हिंसा !

जैन–जरा अब अकलको जगह देकर मेरे सवालोंकी तरफ खयाल करें ! जिन जीवोंको आप मारते हों ! क्या वे जीव मरते नहीं है ?

इसलिये धर्म हेतु मानते हों ? या मरते वक्त उन जीवोंको आर्त्तध्यान (संक्लिष्टपरिणाम) नहीं आताहै ? अथवा तो वे मरकर अच्छी गतिको प्राप्त होते हैं ? प्रथम पक्षको तो आप स्वीकारहि नहीं सक्ते ! क्योंकि प्रत्यक्ष हम उनको मरते हूए देखते ह. अगर कहोगें उनको आर्त्तध्यान नहीं होता है तो यहभी बात फजुल है यतः उनके मनको तो हम नहीं देखसक्ते हे मगर वचनसे आराटी मारते हुए देखते हे. और उनकी आंखोंमें आंसुकी धारा छूटती है बिचारे तरल नेत्रसे चारो ओर देखते हैं कि कोइ धर्मात्मा पुरुष इस दु:खदायिनी अवस्थासे हमें मुक्त करें ! इत्यादि संक्लिष्ट परिणामके चिह्न प्रत्यक्ष तया देखे जाते हैं इसलिये दुसरा विकल्पभी आपके लिये अनुपादेय है

जैमिनि–जैसे लोहेका गोला भारा होनेकी वजहसे पाणिमे डुबता है मगर फिरभी अगर उस्के अतीव बारीक पत्रे बनाये जावे तो वें तरते है. मारनेके स्वभाववाली विषभी दवाआके प्रयोगसे अथवा मंत्रसंस्कार करनेसे गुण हेतु होता है जलानेके स्वभाववाली आगभी सत्यादिके प्रभावसे हमें

मुक्त करें ! इत्यादि संक्लिष्ट परिणामके चिह्न प्रत्यक्ष तया देखे जाते हैं इसलिये दुसरा विकल्पभी आपके लिये अनुपादेय है.

जैमिनि–जैसे लोहेका गोला भारा होनेकी वजहसे पाणिमें डुबता है. मगर फिरभी अगर उसके अतीव बारीक पत्रे बनाये जावें तो वें तरते हैं. मारनेके स्वभाववाला विषभी द्वाओंके प्रयोगसे अथवा मंत्रसंस्कार करनेसे गुणहेतु होता है. जलानेके स्वभाववाली आगभी सत्यादिके प्रभावसे प्रतिहत शक्ति होकर जला नहीं सक्तीतरह वेद मंत्रद्वारा किइ हुइ हिंसा पापहेतु नहीं है प्रत्युत (वल्के) धर्महेतु है अतःइससे न फरत करना ठीक नहीं ! क्योंकि इसके करनेवाले याज्ञिकोंकी पूजा होती लोकमें प्रत्यक्ष तया देखी जाती है. अगर यहकाम न फरत लायक होता ? तो पूजा कैसे होती ?

जैन–आपके तमाम दृष्टान्त विषम हैं इसलिये इसबातके साधक नहीं बन सक्ते ! देखिये ! लोहका गोला विष और अग्नि भावान्तर (परिणामान्तरव पदार्थान्तर) होकर अपनी मज्जनादि (डुबना वगेरा) क्रियाको छोडते हैं और सलिल तरणादि (पानीमें तेरना वगेरा) क्रियायें करते हैं मगर आपके वैदिक मंत्रोंके संस्कारसे मारे हुए जीवोंमे किसी तरहका भावान्तर नहीं देखा जाता !

जैमिनि–क्यों ! नहीं ? बराबर परिणामान्तर मानते हैं !

यत वें मर कर देवगतिको जाते हैं बतलाइये ! यह परिणामान्तर नहीं तो क्या हुआ ?

जैन—यहभि एक आपका खामख्याल है क्योंकि बातको सिद्ध करनेवाला कोइ प्रमाण नहीं है देखिये ! प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो यह साबितही नहीं होसक्ता ! क्योंकि प्रत्यक्ष नाम नेत्रद्वारा साक्षात् देखनेका है सो नहि तुम देख सक्ते हों और नाहि दिखा सक्ता हों दुसरा अनुमानभी नहीं हो सक्ता ! क्योंकि लिङ्ग लिङ्गके सम्बन्धसे अनुमान होता है सो ऐसा कोइ लिङ्ग (हेतु) नहा है जिस्के द्वारा आप इसबातको सिद्ध करना चाहो तो ठीक नहीं है क्योंकि आगमभी चुबडेमेंहि पडा है (प्रस्तुत प्रकरण आगमके प्रमाण्य नहीं होने देता) अर्थापत्ति और उपमानमेंहि समावेश है अत येहभी गये ! इसलिये आपका कहना लगत है कि वें मरकर स्वर्गमें जाते है ? अगर यहबात सची होती तो अपने पुत्रादिको कोहि पूर्व स्वर्गमें पहुचाते ! तो अन्यलोकभी समझ जाते कि ठीक येह लोग इस बातको नि सन्देह तया स्वीकारते है बाद आपने कहाथाकि वेदविहित हिंसासे न फरत करनी ठीक नहीं है आपका यह कथनभी वृथा है यत, हिंसासे हमेशह न फरत करनी चाहिये ! देखिये ! आपके वेदान्तिकहि इसबातसे न फरत करते हूए कह रहे है

अन्धे तमसि मज्जामःपशुभिर्ये यजामहे
हिंसानामभवेद्धर्मो नभूतोनभविष्यति १

सुगमः इसके बाद आपने कहाथाकि अगर वेदिकी हिंसा न फरत करने लायक होती तो उस हिंसाके करने वाले याज्ञिकोंकी लोकमें पूजा कैसे होती ? प्रियमित्र ! यहां परभी आप शुन्य चित्त मालूम होते हो ! यतः उनलोकोंकी पूजा मूर्ख लोक करते हैं न कि विद्वान् इसलिये मूर्खोंकी पूजासे कोई उत्तमता नही पाइ जाती चुके। वेह लोगतो कुत्तेकी भीसेवा कर्त्ते हैं इससे क्या कुत्तेका दर्जा वढ जायगा ? हरगिज नहीं ! बाद अजा आपने कहाथाकि देवता अतिथि और पितृ आदिको प्रीति संपादिका होनेसे वेदविहित हिंसा अधर्म हेतु नहीं होसक्ती ! यहभी एक प्रलाप मात्र है क्योंकि प्रथम देवताओंका वैक्रीय शरीर है इसलिये येह कवलाहारी नहीं होते किन्तुलोमाहारी होते हैं अतः इनका यह आहार नहीं होता है तो वतलाइये ! आपके किस ग्रन्थमें लिखा है कि "मांसभक्षीहि देवःस्यात्" ताके उसकाभी खंडन किया जावें वस जब देवताओंका यह आहारहि नहीं तो वें सन्तुष्ट होकर वृष्टि करते हैं यह कैसे सावित हुआ ? अगर कथंचित् घुणाक्षर न्यायसे वृष्टि होवि गइ तो इससे हम अव्यभिचार नहीं कह सक्ते हैं. अबरहा अतिथिगण, सो इसको संतुष्ट करनेकेभी घृतदुग्ध मिष्टा-

ग्नादि वहुधाप्रकार है.

इस्के बाद आपने कहाथाकि पितृओंको श्राद्धमें मारे हुए जीवके मास भक्षणसे प्रसन्नता होती है येहबातभी प्रत्यक्ष है क्योंकि सन्तुष्ट हुए एवं अपने सन्तानकी वृद्धि करते हैं प्रिय जैमिनीयो ! यहभी आपका गलत खयाल है क्योंकि अगर यह सत्य बात होती तो कई निचारे श्राद्ध कराते २ अपनी उमर इसकाममें ख्तम करदेते हैं मगर निना सतानके मुह देखेहि मरजाते हैं और बगेर श्राद्ध कियेहि सूअर कुक्कड वगैरेके वहोत बचे देखनेमें आते है इससे आपका यह कथनभी सर्वथा वृथा है प्रिय मित्रो ! हमेशह याद रखनाकि हिंसा कभीभी धर्म हेतु नहीं होसक्ती ! बल्के पाप हेतु है इसबातको खयालमें उतारकर दयाप्रधान जैनमार्गका आश्रयलो ! और इस जहालतका नाशकरो ! क्या ? अविद्या अंधकारमें पडे ठोकर खाते हो ? इसदुनियाके तमाम मतोंमें दयाका ऐसा स्वरूप नहीं है जैसाकि जैन मतमे पाया जाता है मसलन एकेन्द्रियादिक व त्रसस्थावरादिक अथवा सूक्ष्म बादरादिक जीवोंका स्वरूप जैसा जैन मतमें बयान है आ जगत किसी मतमें न देखा ! प्रिय मित्रो ! इससेहि आपविचार सक्ते होंकि इसमतमें दयाको प्रधानपन दिया गया है अन्यथा इसकदर भिन्न भिन्न जीवके प्रकार कथन करनेकी क्या जरूरतथी ? बस यही जरूरतथी

कि इनके भेदानुभेदको जानकर दयाभावसे इनकी रक्षा करें! यतः तमाम जीवोंके भेदानुभेदके वगैर समझे दया कभी नहीं पल सक्ती है. इसीलिये एक दयावान् पुरुषने कहाभी है कि

दया दया मुखसे कहें ! दयानहाट विकाय
जाति न जाणी जीवकी कहो ! दया किम थाय ?

प्रिय मित्रो ! इससे आप बखूबी समझ गये होगें कि दया प्रधान अगर इसदुनियामें कोइ मतहै तो जैन मतही इत्यलं विस्तरेणविज्ञेषु इति जैमिनी यमतं

नोट—जैमिनिसे वैदिक मतका एक आचार्य समझें यह यज्ञादिक कर्म काण्डको प्रधान समझताथा

यएवदोषाःकिलनित्यवादे
विनाशवादेऽपि समस्तएव
परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु
जयत्यदुष्यंजिनशासनं ते ॥ १ ॥

प्रिय पाठक गणो ! सब दर्शनोंका किंचित् रहस्य आपके सन्मुख रजु करादिया गया है. इनके साथ अब इस जैन मतके रहस्यका मुकाबला कर देखियेकि किसतरह पक्षपात रहित हमारे जिनेश्वर देवने अपने केवल्य रत्नद्वारा तत्वप्रकाशाकि

याहै ? देखनेसेहि आपको इसमतकी फजीलतका इल्म होजायगा ! इसलिये मै अपने मुहसे ज्यादा तारीफ करना ठीक नही समझता हू. प्रथम आपको जैन मतके तत्त्व सुनने चाहिये ! क्योंकि जिसमतके तत्त्व युक्तिसे अबाध्य और मनन करने लायक होते हैं उसमतको पक्षकोटिमें दाखिल करना चाहिये ! देखिये प्रथम जैनमतमें सक्षेपत· दोहितत्त्व माने जाते हैं एक जीव और दुसरा अजीव. विस्तारसे विचार करनेसे नवतत्त्व होते है इनका स्वरूप नीचे मुजब समझ.

जीवाऽजीवौ तथापुण्यं पापमाश्रव संवरौ ।
बन्धोविनिर्जरामोक्षौ नवतत्त्वानितन्मते ॥ १ ॥

भावार्थ· जीव–अजीव–पुण्य–पाप–आस्रव–सवर बन्ध–निर्जरा–और मोक्ष येह ना तत्त्व जैन मतमे माने जाते हे इनमें जीवका लक्षण नीचे मूजब लिखा है

य कर्त्ताकर्मभेदाना भोक्ता कर्मफलस्यच
संसर्तापरिनिर्वातासह्यात्मानान्यलक्षण ॥ १ ॥

भावार्थ–कर्मोको करनेवाला, कर्मके फलको भोगनेवाला किये हुए फेलो (कर्मो) के मुताविक अच्छी बुरी गतिमें जाने वाला और ज्ञानदर्शन चारित्रद्वारा तमाम कर्मोका नाश करने वालाहि जीवहै । इससे अलावा इसका कोइ स्वरुप नहीं है मत-

लव इनकार्य्योंको वोहि कर सक्ता है जिसमें चैतन्य होगा. इसलिये " चेतना लक्षणो जीवा " यानि जीवका लक्षण चैतन्य है, सो चैतन्य आत्मासे भिन्नाभिन्न समझा जाता है, देखिये ! वैशेषिक लोगोने धर्मका धर्मीके साथ सर्वथा भेद स्वीकारा है और बौद्धोने एकान्त अभेद स्वीकारा है इसरोत्यनुसार वैशेषिक लोग आत्मासे ज्ञानको भिन्न समझते हैं. और बौद्ध एकान्त अभिन्न समझते हैं, ऐसे माननेसे इन दोनोंका मन्तव्य उड जाता है । अतःसर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवने इनदोनों विकल्पोंको स्वीकृत रखकर अपनी सर्वज्ञताका परम परिचय दिखलाया है. तथाहि अगर ज्ञानका आत्मासे सर्वथा भेद माना जाँय तो वादि प्रतिवादीके दरम्यान कभी जय पराजय नहोना चाहिये ! क्योंकि जिसबुद्धि प्र.गल्भ्यसे वादी प्रतिवादीका पराजय करेगा उसी प्रागलभ्यद्वारा प्रतिवादी छूट जायगा क्योंकि जैसाहि प्रागलभ्य वादिमें है ऐसाहि प्रतिवादीमें मानना पडेगा. इसलियेकि वादीमें रहे हुए प्रागलभ्यका वादीकेही साथ संबन्ध नहीं उसी प्रागपर एकका हि हक नहीं होसक्ता जैसे बाजारके रस्तेके साथ हमारे एकीलेका ताल्लुक नहीं है तो हरएक पुरुष उसपर चल सक्ता है मगर अपने घरके साथ अपनाहि ताल्लुक होता है इसलिये मरजी मुताबिक काम कर सक्ते है मरजी चाहे किसीको बैठने उठने व फिरने देवें न मरजी चाहे तो नहीं, इसलिये ज्ञानका सर्वथा भेद स्वीकारने वालोंके मतमें

यह नहीं कहाजासक्ताकि अपने ज्ञानद्वारा मैंने अमुकका पराजय किया क्योंकि पराजित पुरुष कहसक्ता ह कि यह ज्ञान मेराहि थाकि जिसद्वारा आप मेरा पराजय समझते हं अथवा ऐसा मानने पर अमुक अल्पज्ञ है अमुक विशेषज्ञ यह बुद्धि कभी न पैदा होसकेगी कहिये? अब बगैर ऐसा बुद्धिके हम जय पराजय किस्का कह सक्ते हैं ' सर्वथा भेदके इस्तमाल करनेसे मेरा ज्ञान ऐसी प्रतीति कभी नहीं सकेगी! जैसे बा जारके रास्ताको मेरा रास्ता नहीं कहसक्तेहैं अगर बौद्धोंकी तरह एकान्त अभेद मानाजावे तोभी ठीक नहीं! क्योंकि ऐसा मानने परभी मेराज्ञान यह व्यवहार नहीं चलसक्ता। फिरतो मेंइ मैं रहेगा मेरा नहीं आसक्ता। क्योंकि जहांपर भिन्न कल्पना होगी वहांपरही यह कहा जायगी कि मेरी फला चीज है दुनियामभी देखाजाता है जिस्के सामने खूब पदार्थ पडे होते है वोहि मेरा मेरा पुकारता रहता है मगर त्यागी फकीरोंके वास्ते मैंहि मै होता है मेरा कम निकलता है इस-सेभी साबित होता है कि भेद बुद्धि समझ करहि मम (मेरा) शब्दका प्रयोग होता है इस लिये सर्वज्ञ महाराजके स्वीकारमें किसी तरहका दुषण नहीं है प्रिय मित्रो मत प्रव-र्तक तो हरएक बनसक्ते है इस्में कोइ मुश्कील नहीं मगर सर्वज्ञ अल्पज्ञोंका यही फर्क है कि सर्वज्ञका युक्ति युक्त अबा-धित वचन होता है और अल्पज्ञका युक्तिसे रहित और बा ध होना

है। अब चेतना लक्षण जीवके पृथ्वी—पाणी—आग—हवा—नवा-तात—(वनस्पति) द्वीन्द्रिय—(त्रीन्द्रिय—चतुरीन्द्रिय और पञ्चे-न्द्रिय—येह नव भेद हैं इनमें जीवतत्वका विचार विशेपावश्यकी टीकामें बडे बिस्तारसे किया है देख लेना इति रोय (जान-ने लायक) ॥ चल जीवतत्त्वं ॥ इस्के बाद दुसरा अजीवतत्त्व है इस्का लक्षण जीवतत्त्वसे विपरीत होता है याने कर्म भेदों-का नहीं करनेवाला है और नाहिं कर्म फलका भोक्ता बन सक्ता है.

ऐसा जड स्वरूप अजीव तत्त्व होता है. इसतत्त्वकोभी रुपरस गन्ध स्पर्श आदि धर्मोंसे भिन्नाभिन्न समझना चाहि-ये ! इस्के धर्मास्तिकाय—अधर्मास्तिकाय—आकाशास्तिकाय—काल और पुद्गलास्तिकाय—येह पांच भेद हैं इनमें धर्मास्तिकाय अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्गल इनदोनोंकी गतिमें सहा-यक है. जीव और पुद्गलमें चलनेकी ताकत तो जरूर रहती है मगर विना धर्मास्तिकायके चल नहीं सक्ते ! जैसे मछलीमें ताकत तो जरुर होती है मगर विना जलके नहीं चल सक्ती। यहद्रव्यलोक व्यापी है. धर्म शब्दके पीछे अस्तिकाय लगा हुआ है इस्का माइना असंख्य प्रदेशोंका समूह समझाता है धर्मास्तिकायके स्कन्ध—देश—और प्रदेश येह तीन भेद माने जाते है स्कंध एक समूहात्मक पदार्थको कहते हैं देश इस्के छोटे छोटे हिस्साको कहते हैं और प्रदेश उसे कहते हैं कि

जिस्में फिर विभाग न होसके एसा एक सूक्ष्म भाग ! अजी वतत्त्वका दुसरा भेद अधर्मास्तिकाय है यहभी एक अरूपी द्रव्य है जो जीव और पुद्गलके स्थिर रहनेमें सहायक है जैसे मछलीको जलके निचेका स्थल अथवा मुसाफिरको दरख्त कीच्छाया मददगार होती है ईस्केभी स्कन्ध देश और प्रदेश येह तीन भेद लिये जाते है और यहभी लोक व्यापी है आकाशास्तिकाय लोकालोक व्यापी और पुद्गलको अवकाश देनेवाला तीसरा भेद माना जाता है जिस्में जीव-धर्म-अधर्म आकाश-काल-और पुद्गल येह छोद्रव्य होते है अलोकमें सिरफ आकाशहि है धर्मा धर्मके न होनेसे इस्में जीव और पुद्गलकी हरकत व कायम रहना नहीं होसक्ता है इसीलिये कर्मोसे मुक्त हुआ आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभावसे उडता हुआ लोकके अन्तमें जा ठहरता है आगे नही जासक्ता चुके चलनेमें मददगार धर्मास्तिकाय नामका पदार्थ इससे उपरके भागमें नहीं होता अगर ऐसा नहीं माना जाता तो फिर मोक्षगामी की कहीं भी स्थिति नरहती ! और आजतक हमें यही कहना पडताकि मोक्षगामी जीव चलहि जारहे हैं. कई आचार्य कालको द्रव्य नहीं मानते हैं किन्तु एसा कहते है कि जीवास्तिकाय धर्मास्तिकायादिक नवपुराण आदि पर्यायोंकोहि काल कहना चाहिये ! इनके मतम पांच द्रव्यात्महि लोक है मगर जो काल द्रव्यको मानते ह उनके मतमें छोद्रव्यात्मक लोक है

येह तीनो पदार्थ चलते फिरते या स्थित हूए पुरुषोंके लिये सहायक है. ऐसा नहीं समझनाकि मजकुरकामोंके नहीं चाहने वालोपर इनकी कोइ जबरदस्ती है मसलन जो मच्छली चलना चाहती है उसीके लिये पाणी सहायक है न कि हरएकके लिये.

अब चोथा द्रव्यकाल कहलाता है यह ढाइ द्वीपके अन्तर्वर्त्ति परमसूक्ष्म निर्विभाग (जिस्का हिस्सा न हो सके) एक समयात्मक होता है. इसलिये इस्के पीच्छे अस्तिकाय शब्द नहीं लगाया जाता है. यतः एक समयरूप होनेसे समूहात्मक नहीं होता. देखिये ! इसीबातको प्रतिपादन करनेवाला एक आर्य्यावृत्तच्छन्द सुनाया जाता है.

तस्मान् मानुष्यलोक व्यापीकालोऽस्ति समयएकइह।
एकत्वाश्चसकायोनभवति कायोहिसमुदायः ॥ १ ॥

जहाँ सूर्य चंद्रादि हमेशह घूमते रहते हैं वहाँ कालद्रव्य होता है मनुष्य लोकके वहार चंद्रसूर्यका घूमना बन्ध है तो वहाँ कालभी नहीं होता. इस द्रव्यके तीन भेद है अतीत अनागत और वर्त्तमान "नष्टोघटः" घडेका नाश हुआ यह अतीतकाल कहलाता है "सूर्यपश्यामि" मैं सूर्यको देखता हूं यह वाक्य वर्त्तमान कालका द्योतक है "वृष्टिर्भविष्यति" वर्षाद होगा इस वाक्यसे अनागतका स्वरूप दिखलाया है

इसके उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदिभेद सिद्धान्तमे जान लेना.

"" इसके बाद पांचमा भेद पुद्गलास्तिकाय है दुनियाके तमाम रूपी जड पदार्थोंको इस द्रव्यमें सामिल करते है इसके स्कन्ध देश-प्रदेश और परमाणुये चारभेद होते हैं प्रदेश और परमाणुमें सिरफ इतनाहि फर्क है कि बारीकसे बारीक हिस्सेका साथमें मिले रहना इसें प्रदेश कहते है और वोहि हिस्साजब अलाहा हो जाता है तब परमाणुके व्यवहारमे आता है हमारे प्रियपाठकगणको यादरहे ! कि जो पुद्गलात्मक चीज होगी उसमें स्पर्श रस गन्ध और वर्ण (रूप) येह चार गुण जरूर होगें ! सांख्यादिकी तरह यह नहीं समझनाकि हवामें सिरफ शब्द (यह पुद्गल कहा जाता है इसकोभी गुण मानते है) और स्पर्श ये दोहि गुण रहते हैं आगमें शब्द स्पर्श और रूप ये तीनहि गुण रहते है पाणिमें इनके साथ एक रसगुणके बढ जानेसे च्यार हो जाते है इनको गन्धयुक्त बनानेपर पृथ्वीमें पांच गुण रहते है किन्तु शब्दको छोडकर पुद्गल मात्रमें चार गुण रहते हैं ऐसा समझना चाहिये! देखिये ! देखिये तत्त्वार्थ सूत्रके पाचवें अध्यायके तेइसमें सूत्रमें यहि लिखा है "स्पर्श रसगन्ध वर्णवन्तः पुद्गला" यहाँपर प्रथम स्पर्शके ग्रहण करनेका मतलब यह बतलानेका है कि जहा स्पर्श होगा वहा रसगन्ध वर्ण जरूर होगें मसलन वायुमें स्पर्श गुण मुख्यतया

मालूम होता है तो इसमें वाकीके तीनगुण जरूर होने चाहिये ! अनुमान यह है " अबादीनि, चतुर्गुणानि, स्पर्शित्वात्, पृथ्वीवत् । जलादि, चारो गुणवाले हैं स्पर्शवाले होनेसे जैसे पृथ्वीमें स्पर्श गुण देखा जाता है तो वाकीके तीन गुणभी वादि प्रतिवादी उभयके मतमें निर्विवाद माने जाते हैं वस इसतरह हरएक रूपी पदार्थमें खयाल कर लीजियेगा ! पुद्गलके परम सूक्ष्म हिस्सेको परमाणु कहते हैं उसमेंभी रूप रसगन्ध और स्पर्श येह चारों गुण रहतेहैं, परमाणुका लक्षण नीचे मूजब समझें !

कारणमेवतदन्त्यं, सुक्ष्मो निष्यश्चभवति परमाणुः ।
एकरसवर्णगन्धो, द्विस्पर्शः कार्य्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥

मतलब तमाम भेदोंके अन्तमें रहने वाला होनेके सबबसे उसको अन्त्य कहते है. और वोहि सर्व जड पदार्थोंका कारण है. और वो सूक्ष्म अर्थात् शास्त्रप्रमाण व अनुमानसे जाना जाता है. क्योंकि इन्द्रियद्वारा हम उसें देख नहीं सक्ते हैं द्रव्यार्थिक नयके मतसे वो नित्य है (पर्यायार्थिक नयके मतके रूपादिका परिवर्तन होनेसे अनित्यभी है) और इससे दुसरा कोइ छोटा नहीं है इसलिये इसें परमाणु कहते हैं. (यतः परमणीयो द्रव्यं नस्यात् सपरमाणु रुच्यते इतिवचनात्) परमाणुमें पांच रसोंमेंसें एकरस पांच वर्णोंमेंसे एक वर्ण तथा दो गन्धोंमेंसे एक गन्ध होता हैं. और स्पर्शोंमें परमाणु सशु-

दायकी रूसे स्निग्ध–रूक्ष शीत और उष्ण येह चारों स्पर्श होते हैं मगर एक परमाणुकी बनिष्पत इनमेंसे दोहि होते हैं या तो स्निग्ध और उष्ण होगें या स्निग्ध और शीत होगें या रूक्ष और शीत होगें या रूक्ष ओर ऊष्ण होगें. और द्वयणुकसे लगाकर महास्कन्ध तक जितने जड कार्य है सबका यह हेतु है इन छी द्रव्योंमें धर्मा धर्म आकाश और काल येह चार द्रव्य एक कहलाते है और जीव तथा पुद्गल यह दो अनेक द्रव्य कहलाते हैं इन छी द्रव्योंमें पुद्गलको छोडकर पांच द्रव्य अमूर्त्त कहलाते हैं और पुद्गल मूर्त्त है।

पाठक गण–आपकी हमारेपर बडी कृपा है जो इसकदर तत्त्वज्ञानकी तालीम दे रहे हों मगर इनमें एक शक रहता है अगर आप इजाजत देवें तो मैं अपने दिलकी तसल्ली करलू?

लेखक–बेशक आप अपनी तसल्ली करलेवें लेखककी तरफसें आपको खुल्ली इजाजत है। जो पूछना चाहे सो पूछ सक्ते हैं। क्योंकि यह रुपी है और जीव द्रव्य यद्यपि अरुपी है मगर उपयोग स्वसवेदन सवेद्य (अपने अनुभद्वारा जानने योग्य) होनेसे इस्के अस्तित्त्वमेंभी हमें कोइ सदेह नहीं है मगर धर्माधर्म पदार्थोंमें अचेतन होनेके सबबसे स्वसवेद्यपणा नहीं पाया जाता और अरुपी होनेकी वजहसे नाही परसवेदन अगम्य सवेद्य होसक्ता है भव बतलाइये ' उन धर्माधर्मा-

श्री राष्ट्रीय ज्ञान मन्दिर, नागपुर

दि पदार्थोंको हम कैसे जान सके ?

लेखक–अब आप जरा अपना ध्यान दीजिये ! और मेरेसे जवाब लीजिये ! प्रिय मित्र वरो ! ऐसा कभी अपने दिलमें नहीं लानाकि जिस पदार्थको हम नहीं देख सके वो शश (खरगोष) के शृंगकी तरह सर्वथा नहीं होता क्योंकि इसदुनियामे दो तरहकी अनुपलब्धि (पदार्थके नहीं देखे जानेकी किस्में) होती हैं एकतो सर्वथा पदार्थके न होनेसे पदार्थकी अनुपलब्धि होती है जैसे गर्धभ शृंग अथवा अश्वशृं-ग (गधेव घोडेके शृंग) येह पदार्थ नहीं हैं इसलिये नहीं देखे जाते । दुसरी अनुपलब्धि (पदार्थका नहीं मालूम होना) पदार्थके होनेपरभी हो जाती है. इस अनुपलब्धिके आठ भेद हैं (अर्थात् पदार्थके होनेपरभी आठ सबबसे पदार्थ नहीं जाने जाते) पदार्थके बहोत दूर होनेके सबबसे ॥१॥ या बहोत न-जदीक होनेसे ॥२॥ इंद्रिय ज्ञानके नष्ट हो जानेसे ॥३॥ मनके अनवस्थ होनेसे ॥४॥ अतिसूक्ष्म होनेकी वजहसे ॥५॥ आव-रण (ढका जाना)से ॥६॥ अभिभव (एककी प्रबलतासे दुसरेका दबजाना)से ॥७॥ समानाभिहार (बराबर) मिल जाना)से ॥८॥ देखिये इन आठोंकी अब अनुक्रमसे मिसालें दिइ जाती हैं. प्रथम अनुपलब्धिके तीन भेद हैं एक देशविप्र-कर्ष (दुरकी चीजका न देखा जाना) दुसरा कालविप्रकर्ष

(माजी मुस्तक़ बीलकी चीजका नहीं देखा जाना) तीसरा स्वभावविप्रकर्ष (चीजका स्वभावही नहीं दिखलाइ देनेका है) देशविप्रकर्ष इसका नाम है जैसे समुद्रका परला किनारा अथवा मेरु या अपनेहि नगरका दुसरे नगरमें गया हुआ पुरुष देखनेमें नहीं आते । इससे हम ऐसा नही कह सक्तेकि येह चीजेंही नहीं है काल विप्रकर्षकी मिसाल जैसे हमारे गुजरे हुए बजुर्गोको हम नहीं देख सक्ते इससे क्या वें हुएहि नहीं थें ? और होने वाले पद्मनाभआदि तीर्थंकरोंको हम नहीं देख सक्ते हैं तो क्या वें होवेगें नाहि ? क्यों नहीं जरूरथें । और जरुर होवेंगें मगर कालका अन्तर होनेसेही हम देख नहीं सक्ते। स्वभाव विप्रकर्षकी मिसाल भूतपिशाच आत्मा आसमान ईश्वरइन चीजोको पास आनेपरभी हम नहीं देख सक्ते इससे क्या येह चीजेंही नहीं हें ? चीजें तो जरूर हें मगर इनका स्वभाव नहीं दिखलाइ देनेका हे । बतलाइये फिर हम कैसे देख सक्ते हे ? ॥१॥ पदार्थके न दिखलाइ देनेका दुसरा सबब चीजका बहोत नजदीक होना हें मसलन नेत्रमे डाला हुआ सुरमा अपने खूद देखनेमें नहीं आता इससे क्या उसीवक्त डाले हुए सुरमका नास्तित्व स्वीकार जायगा ? हरगिज नहीं ! यहांपर यहि कहना होगाकि बहूत नजदीक होनेसे हम देख नही सक्ते मगर अखीयेमें जरुर होना है वरना दुसरे लोग कैसे देख सक्ते ? तीसरा सबब इन्द्रियोंके नष्ट

होनेसे होनेसे होता है. जैसे अंधा आदमी रूपको नहीं देख सकता हे ओर बहेरा शब्दको नहीं सुन सक्ता है तो इसे क्या रूपव शब्दका अभाव हो जायगा? या अन्धा कहे कि दुनियाकी तमाम चीजें अरूपी हैं तो क्या अरूपी चीजें सिद्ध हो जायंगी कभी नहीं। यही कहा जायगा कि इनकी इंद्रियोंका दोष है. चोथा सवब पदार्थके नहीं दिखलाइ देनेका अनवस्थ होना है जैसे किसी जगहपर एक शख्स तीर बना रहाथा उसवक्त उस्के पास होकर सेना सहित राजा निकल गया मगर बिलकूल मालूम नहीं हुआ कि मेरे पाससे कौन चला गया? तो क्या अब इस्के नहीं देखनेसे और देखने वालोंका कथन अन्यथा हो जायगा? हरगिज नहीं। देखिये एक श्लोकमेंभी इसीतरहका बयान है.

इषुकारनरःकश्चिद्राजानंसपरिच्छदम्।
नजानाति पुरोयान्तं यथाध्यानंसमाचरेत् ॥१॥

पांचमा कारण पदार्थके सूक्ष्म होनेसे पदार्थ नहीं देखा जाता जैसे परमाणु त्रसरेणु निगोद वगैरा नहीं देखे जाते है इससे क्या इनका नास्तित्व स्वीकारा जायगा? नही! नही! यही कहना पडेगा कि सूक्ष्म होनेसे नजर नही आते। छट्ठा सबब आवरण कहा गयाथा सो आवरण नाम ढकणेका है मसलन दीवारके पीछे रइ हुइ वस्तुओंको व्यवधान होनेके स-

बत्तसे हम नही देख सक्ते है तो क्या दीवारके पीछे कोइ वस्तु नही है ? अथवा हम अपने मस्तक कान पीठ आदि शरीरके अवयवों को नही देख शक्ते तो क्या हमारे शरीरमें मचकुरा हिस्से नही है ? नही क्यों बराबर है मगर इम आवरणसे नही देख सक्ते हैं इसी ज्ञानावरणसे हमे कइ वक्त सम्यक्प्रकारसे अभ्यसित शास्त्रोंका अर्थभी भूल जाता है: सातवा सबब अभिभव (एककी प्रबलतासे दुसरेका दबजाना) कहा गयाथा इसकी मिसाल यह है की जैसे दिन के वक्त सूर्यके प्रकाशसे महत हुए ग्रह नक्षत्र तारा वगेरे नही देखे जाते तो क्या इससे वे नष्ट हो गये ऐसा मानेगें ? कभी नही वे इसी तरह रहते है मगर उनका अभिभव होनेमे नजर नही आते है पदार्थके नही दिखलाइ देनेका आठवा सबब समानाभिहार है मसलनमुगोके ढेरमें मुगोंकी मुठी व तिलोके ढेरमें तिलोंकी मुठी डाली जावे तो बराबर मिलजानेसे डाली हुइ मुठी पृथगतया मालूम नही पडती है इससे हम येह नही कह सक्ते कि हमारी डाली हुइ मुठी इसमें नही है अथवा पाणिमें लुण डाला जावें तो कुच्छ काल के बाद वो पानीमें बिलकूल नजर नही आता तो इससे हम इसमें बिलकूल लुण नही है ऐसा कह सक्ते हैं ? कभी नही, यही कहेगें कि समानाभिहार (बराबर मिलजाना) से हम नही देख सक्ते है मगर पदार्थ जरूर होता है देखीये साख्य सूत्रकी सप्तमी कारिकामें भी इसी

तरहके आठ प्रकार लिखे है तथाहि

अतिदुरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोनवस्थानात्।
सौक्ष्म्यात्-व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च ॥१॥

मतलब उपरकी बातोसे बिल्कुल साफ हो चुका है प्रिय पाठक गणो ! धर्मादि पदार्थ इन आठ भेदोंमेसे प्रथम भेदके तीसरे स्वभाव विप्रकर्षनामा भेदमें दाखिल किये जाते है। अतः इनका स्वभावही नही दिखलाइ देना है तो वें दिखलाइ कैसे देगें ? इसलिये इन पदार्थोंकाभी अस्तित्व कार्यानुमानसे अवश्यमेव स्वीकारना पडेगा। जैसे अप्रत्यक्ष परमाणुकोभी कार्य्यानुमेय होनेसे मानना पडता है इसी तरह गति स्थितिआदि कार्य्यकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसे धर्माधर्मादि पदार्थोंकीभी अनुमानसे सिद्धि बखूबी हो सक्ती है सो बुद्धिमानोको स्वयं विचार लेना !

इति ॥ २ ॥ सेय अजीवतत्त्वं.

इसके बाद तीसरा तत्त्व पुण्यको माना है " पुण्यं सत्कर्म पुद्गलाः " अर्थात् तीर्थंकरत्व देवत्व मनुष्यत्व आदिकी प्राप्ति करानेवाली जीवके साथ लगी हुई शुभ कर्मोंकी वर्गणाका नाम पुण्य है यह सुख देनेवाला है. और इससे विपरीत्त नर्कादि अशुभ स्थानकी प्राप्ति करानेवाली जीवके साथ

लगी हुइ अशुभ कर्म वर्गणाको पाप कहते हैं यह जीवको दुःख देने वाला है

पाठकगण—सांख्यादि मतके तत्वोंको एकके बिच एकको मिलानेके लिये झट तैयार होगये थे और उनके तत्वोंको एक दम तोडडालेथे अब अपने मन्तव्योंकी तरफ खयाल क्यों नहीं करते ? आपने अलादा अलादा पुण्य पापको दो तत्त्व माने है इनका समावेश बन्ध तत्वमें बखूबी होसक्ता है फिर इनको अलादा तत्व मानकर मुफतमें दो तत्व बढानेकी क्या जरुरत थी ?

लेखक—प्रिय पाठकगण ! आपका कथन ठीक है बेशक बन्ध तत्वमें इनका समावेश हो सक्ता था मगर फिरभी इनको अलादा गिने इसमें खास सबब है.

पाठकगण—बतलाइये क्या सबब है ?

लेखक—लीजिये ! सबब यह है कि इस दुनियाम कइएक सख्स सिरफ पुण्यको हि मानते है तो दुसरी तरफ कइ एक सिरफ पापको हि मानते है और कई एक पुण्य पापको आपस आपसमें मिले हुए मानते है और कहते है कि वो मिश्र सुख दुःखका कारण होताहै कई एकोंका यह मन्तव्य है कि इस दुनियामें कर्मही नहीं है और जगत्की रचनाको जो स्वाभाविकी मानते है इन लोकोंका मन्तव्य ठीकनहीं है क्यों कि

सुख दुःखका अनुभव अलादा अलादा हरएक शख्सको होता है इसलिये इनके कारण पुण्य पापकोभी अलादा अलादा मानने चाहिये ! इस बातका ध्यान करानेके लिये अलादा उल्लेख किया गया है कर्मको नहीं मानने वाले नास्तिक और वेदान्तिकोंका कहना है कि आकाशके फूलकी तरह पुण्य पाप नामकेभी कोइ पदार्थ इस दुनियामें नहीं है. वेदान्तिक सिवाय एक ब्रह्मके और किसीको नहीं मानते ! नास्तिक सिवाय भूतोंके किसीको नहीं मानते हैं इस लिये येह दोनों मतवाले परलोक पुण्य पाप आदि पदार्थोंको नहीं मानते हैं. मगर इनका यह कथन बिलकुल असत्य है क्योंकि मनुष्यत्व जातिकी समानता होने परभी एक राजा एक प्रजा एक शोकी एक भोगी एक हजारोंका पालन कर्त्ता है एक अपने पेट भरनेको भी असमर्थ होताहै एक निरोग शरीर और एक रोग ग्रहस्त होताहै इत्यादि विचित्र रचना क्यों हो रही हैं वस इसीसे साबित है कि इन सुख दुःखोंका कारणभूत पुण्य पापभी जरूर होने चाहिये ! और पुण्य पापके भोगस्थान सुख दुःखात्माक स्वर्ग नर्क गति प्रमुखभी जरूर होने चाहिये पुण्य पापकी सिद्धिमें अनुमान नीचे मूजब समझें !

सुख दुःखे कारण पुर्वके, कार्य्यत्वात्, अङ्कुरवत् ।

येचतयोः कारणे. ते पुण्य पापेमन्तव्ये, यथाङ्कुरस्य बीजं।

मतलब-कार्य होनेके सबबसे सुख दु'खोंका कारणभी कोइ जरर होना चाहिये जैसे अकुर कार्य है तो इस्का कारण बीजभी जरूर होता है इसी तरह सुख दु'ख रुप कार्यके कारण पुण्य पापभी जरूर मानने पडेंगे !

पाठकगण-जैसे स्वमति भासि अमूर्त्त ज्ञानके रूपी निलादिक वस्तु कारण हैं इसी तरह अरुपी सुखके उमदा उमदा भोजन फूलोंकी मालायें और चन्दन वगेरा कारण माने जावें और दु खके सर्पविप कटक वगेरा कारण समझे जावें और पुण्य पापको न मान तो क्या हर्ज है ? क्यों कि आपका अनुमान कारणको सिद्ध कर्ता है न कि पुण्य पापको

लेखक-विज्ञ वर्ग ! आपका यह कहना ठीकनही है, क्यों कि एकहि किस्मके भोजन करनेसे एकको आनन्द होता है दुसरेका नहीं होता । जिस भोजनके स्वादसे एक पुरुप मसन्न चित्त होकर वार वार उस्का अनुस्मरण कर्ता है दुसरेको उसी भोजनसे कोलेरा (हैजा) हो जाता है बतलाइये अब इनको कारण कैसे समझ सकते हैं ? इससे बेहेतर यही है कि आप पुण्य पापको मान लेवें । यतः शास्त्रमें कहा है और युक्ति इस बातको स्वीकार करती है कि तुल्य साधन के मिलनेपर भी जहापर फलमें विशेपता पाइ जाती है वो निर्हेतुक कभी नहीं हो सकती बल्के उस्का कोइ न कोइ सबब जरूर होना

चाहिये ! देखिये ! इसी बातका प्रति पादन करने वाली एक गाथाभी सुनाता हूं ।

जो तुल्लसाहणेणं फलेविसेसो नसो विणाहेउं ।
कज्जत्तण ओ गोयम घडोवहेउ असोकम्मं ॥१॥

और एक यहभी बात देखी जाती है कि इस दुनियामें सुखी कम देखे जाते हैं और दुःखी ज्यादा देखे जाते हैं इस्का भी यही कारण मालूम कियाजाता है कि सुखको देने वाले धर्मका सेवन करनेवाले वहोत थोडे हैं और दुःखप्रद पापके सेवन करनेवाले वहोत ज्यादह हैं, इससेभी पुण्य पापकी सिद्धि होती है. येह दोनोहि तत्व हेय (त्यागने लायक) हैं मगर इनमें पुण्यके कइएक अंग मोक्षके साधन भूत होनेसे पुण्यको कथंचित् उपादेयमें (ग्रहण करने लायक चीजको उपादेय कहते हैं) भी समार कर सक्ते हैं.

इस्केबाद पांचमा तत्त्व आश्रवमांना जाताहै. आश्रव नाम कर्मोंके आनेका है इस्के पांच हेतु हैं १ मिथ्यात्व २ अविरति ३ प्रमाद ४ कषाय और ५ योग । इनमें कुदेव कुगुरु और कुधर्मको सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझनेका नाम मिथ्यात्व है, हिंसा असत्य चोरी मैथुन और परिग्रह इनसे अनिवृत्त होनेका नाम अविरति है, तमाम किस्मके नसोंमें व इन्द्रियोंके विषयोंमें लगे रहना इसे प्रमाद कहते है. और क्रोध मान

माया लोभ इन चारको कषाय कहते हे तथा मन वचन और कायाके व्यापारको योग कहते हैं यह पाच कर्म बन्धन के हेतु (सबब) हे, इन्हें जैन शास्त्रमें आश्रवतत्त्व कहते हैं इनोके जरीये ज्ञानावरणीय आदि अष्टकर्मोंका बन्धन होता है आस्रवको पूर्व बन्धकी अपेक्षासे कार्य्य और उत्तर बन्धकी अपेक्षासे कारण समझना चाहिये । और बन्ध तथा आश्रवका परस्पर कार्य्य कारण भाव माननाही दुरुस्त है, क्योंकि विना बन्धके आश्रव नहीं हो सक्ता और विना आश्रवके बन्ध नहीं हो सकता. जैसे विना अंकुरके बीज, व विना बीजके अंकुर नहीं हो सकता । पुण्य पापके बन्धन हेतु होनेसे आश्रवके दो भेद लिये जाते है, शुभ कर्मका हेतु व अशुभ कर्मका हेतु मिथ्यात्व आदिको अपेक्षा इस्के अनेक भेदभी हो सक्ते हैं मन वचन कायाके व्यापार रुप आसवकी सिद्धि अपने आपकी अपेक्षा स्व सवदन संवेद्य हैं, और परपुरुषोंकी अपेक्षा कहींक प्रत्यक्षसे कहींक कार्य्यानुमानसे तो कहींक आगम प्रमाणसे जानी जाती है इति हेय आस्रवतत्व ॥ अब छट्ठा तत्व संवर है । पूर्व कथित सब्वावाले आस्रवोंका रोकना इस्को संवर कहते है । जैसे सम्यग् दर्शनद्वारा मिथ्यात्व रुक जाता है, और विरतिके द्वारा अविरति रूक जाती है । और प्रमाद परिहार तथा प्रमाद दुर हो सक्ता है । और क्षमा-मार्दव (निराभिमानपणा) आर्जव (सरलता) और निर्लोभता इनके द्वारा

क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारोंको रोक सक्ते हैं, तथा मन गुप्ति, वचन गुप्ति और कार्य गुप्तिद्वारा, मन, वचन, कायाके शुभाशुभ व्यापारको रोक सक्ते हैं। मतलब—कर्मोंको ग्रहण करनेवाले हेतुओंके परिणामका अभाव करनेवाले तरीकोंका नाम संवर हैं। संक्षेपतः—इस्के देश और सर्व येह दो भेद है, मगर यति धर्म बाइस परिष हें आदिकी अपेक्षा इस्केभी अनेक प्रकार हो जाते हैं। सो अन्य शास्त्रोंसे जान लेनें! इति उपादेय संवर तत्वं ॥ इस्के बाद सातमा तत्व बंध है "बन्धो जीवस्य कर्मणः" यानि कर्म पुद्गलोंका क्षीरनीरकी तरह जीव के साथ संबन्ध होना इस्को बन्ध कहते हैं अथवा बंधा जाता है। आत्मा जिसकर उसें बन्ध कहते हैं, इस्का ग्रहण कर्त्ता संसारी जीव है

पाठकगण—हाथ वगैरा सामग्रीसे रहित आत्मा कर्मोंको कैसे ग्रहण करसकेगा! क्योंकि वो अमूर्त्त है.

लेखक—आपका शक करना बिलकुल फजुल है. यतः हम कब कहते हैं कि संसारी जीव अमुर्त्त है? संसारी जीवके साथ क्षीर नीरकी तरह कर्मोंके मेळाप होनेसे हम कथंचित् इस्को मुर्त्त मानते हैं और कर्म हाथसे पकडने लायक चीजही नहीं है इस लिये इस्के ग्रहण करनेकी विधी नीचे मुजब समझें। जैसे कोइ पुरुष अपने शरीरपर स्निग्ध वस्तु (तैलादिक) लगा-

कर खुले बदन बजार व गली कुचोंमें फिरता है तो उस्के श-रीरपर रज उडकर चीमटती है. इसी तरह राग द्वेष मोह आदि मानिंद स्निग्ध वस्तुके है, इनके द्वारा आत्मापर कर्म रुप-रज चढती हैं क्योंकि आठ रुचक प्रदेशके सिवाय आत्माके असख्य प्रदेशोमेंहि मोहादि भावना उठती है इस लिये आठ रुचक प्रदेशोंके सिवाय सबके सब प्रदेशोंपर कर्म पुद्गल सबन्ध कर लेते है इस बन्ध तत्त्वके मुख्यतया दो भेद होते है एक शुभ बन्ध और दुसरा अशुभ बन्ध, अगर प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशके हिसाबसे लिये जांयतो चारभेद होते है, प्रकृति नाम स्वभावका है, जैसे ज्ञानावर्णीय कर्मका स्वभाव ज्ञानको रोकनेका है, दर्शनावरणींयका दर्शनको इत्यादि. और स्थिति नाम काल मर्यादाका है, अमुक कर्मके बन्धकी इतनी स्थिति है और अमुककी इतनी इत्यादि अनुभाग नाम रसका है तिनति त्रतर एकठाणीया दोठाणीया आदि समझना और प्रदेशनामकर्म-दलोंके सचयका है इस्का विस्तार कर्म ग्रन्थ व कर्मपयडीसे समझ सक्ते हो ! इति है ग बन्ध तत्त्व ॥ अब आठवा तत्त्व नि-र्जरा है। इस्का स्वरुप ऐसे है "बद्धस्य कर्मण साटोयस्तु सा-निर्जरामता " यानि जीवकेसाथ ताल्लुक वाले फेलों (कर्मों) वा बारह तरहकी तपश्चर्याके जरीय जीवसें अलादा करना इसे निर्जरा तत्त्व कहते हैं इसके दो भेद है, एक सकाम निर्जरा दुसरी अकाम निर्जरा, इनमें प्रथम भेद चारित्रके पालन करने

वाले तथा लोचादि काय क्लेश करने वाले महात्माओंमें पाया जाता है । और दुसरा भेद हजारों कष्टोंको वगैर धर्म बुद्धिके परतंत्र भावसे वरदास करनेवाले दीगर लोगोंमें पाया जाता है । इति उपादेय निर्जरा तत्त्वं ॥ इसके बाद नवमा तत्त्व मोक्ष माना जाता है. "आत्यन्तिको वियोगस्तु दे हा दे र्मोक्ष उच्यते यानि पांच शरीर तमाम इंद्रियें आयुष्यादि दश बाह्य प्राण पुण्य पाप वर्ण गन्ध रस स्पर्श पुनर्जन्मका ग्रहण करना तीनवेद कषायादि संग अज्ञान और असिद्धत्व इनसे आत्यन्तिक वियोग (फिर इन चीजोंके साथ कभीभी संयोगका न होना इसें आत्यन्तिक वियोग कहते है) का होना इसका नाम मोक्ष है.

पाठकगण–अजी! साहव ? शरीरके साथ तो आत्यन्तिक वियोग होना मान लि जायगा क्योंकि शरीरकी आदिहै मगर अनादि रागद्वेष रुप वासनाका नाश कैसे सकेगा ? चुंके अनादि चीजका नाश कभी नहीं होसक्ता । अनुमान यह है यदनादिमत्, नतद्विनाशमाविशति, यथाकाशं । अनादिमन्तश्च-रागादय इति ॥

मतलव–जो चीज अनादिसे चली आतीहै वो नाश भावको प्राप्त नहीं होती । जैसे आकाश अनादिहै तो नष्ट भी नहीं होता । इसी तरह रागद्वेषका नाश भी नहीं होसकेगा क्यों कि येहभी अनादिहै.

लेखक–पाठकवर्ग ! आपका कथन असत्यहै, चुके प्रवाह रूपसे रागद्वेष ठीक अनादिहै मगर आकाशकी तरह अनादि नहीं है क्योंकि हमेशहके लिये आकाश एकही रहेगा लेकिन रागद्वेष हमेशहके लिये एक किस्मका नहीं रहताहै, कभी किसी चीजपर राग होताहै और कभी किसी चीजपर इस कदर तगदियर तबद्दल (परिवर्तन) होती रहतीहै इसी तरह द्वेषको भी आप समझ सक्तेहैं। इस लिये आकाशकी मिसाल ठीक नहीं है, मगर फिरभी फर्जी तोरपर आपकी मिसालको मानकर जवाब दिया जाताहै वर्गो ? पढे ! और फायदा हाँसिल करें ! जैसे किसी पुरुषको स्त्रीके शरीरादि वस्तुका यथार्थ तत्त्वज्ञान होनेसे या उस्की विरुप चेष्टासे भर्तृहरिजीकी तरह उससे एकदम निस्पृहता पैदा होजाती है तो उस पुरुषमें प्रतिक्षण रागकी अती अती व हानि देखी जाती है इत्तोके नहा तकनि निस्के सिवाय एक क्षण गुजारना मुश्कील होता था उसको क्षण मात्रमें त्याग कर विरक्त बन जाते हैं, यहापर साफ तोरपर रागका अपचय (थोडे क्षयका नाम अपचय है) देखा जाता है इससे हम कह सक्ते है कि किसी दिन सपूर्ण सामग्रीके मिल जानेपर निर्मूल नाश भी होजायगा । अगर निर्मूल नाश आपको समत् नहीं है तो अपचय भी सिद्ध नहीं होसकेगा। देखिये किसी पुरुषको इतनी शरदी लगीहै कि उस्के तमाम अग कॉप रहे है उस पुरुषको अगर थोडी

आग मिलतीहै तो उस्की थोडीसी ठंड दूर होजाती है मतलब अग्निकी मंदता होनेपर सर्वथा शरदी नहीं उड सक्ती मगर कुच्छ आराम जरूर हो जाताहै अगर अच्छी तरहसे आग मिल जाती है तो इस्की तमाम शरदी दूर होजातीहै तो इससे हम कह सक्ते हैं कि अल्प सामग्रीके सद्भावमें जिस्का कुच्छ नाश होताहै तो संपूर्ण सामग्रीके सद्भावमें उस्का निर्मूल नाश भी जरूर होना चाहिये. वाद आपने कहा थाकि जो अनादि है उस्का नाश नहीं होता यह भी आपका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रागभाव अनादि है मगर फिर भी इस्का नाश निर्विवाद स्वीकारा जाताहै और आपका हेतु स्वर्ण मृत्तिकाके संयोगमें अनेकान्तिकभीहै चुंके स्वर्ण और मट्टीका संयोग अनादिहै मगर सामग्रीद्वारा मृत्तिकासे अलादा होसक्ताहै, इसी तरह तपआदि सामग्रीसे रागद्वेष रूपमृत्तिकाके दुरहो जानेसे आत्मतत्त्व रुपस्वर्ण वखूबी साफ होसक्ताहै; अनादिकी चीजका नाश नहीं होता इस मजमूनपर मैंने वहोत कुच्छ लिखनाथा मगर इस वक्त अल्प समय होनेसे मैं लिख नहीं सक्ता विशेषार्थी पुरुषोंको नंदीसूत्रकी पीठिका देख लेनीः वहांपर अपचयके वारेमें ज्ञानावरणीकी मिसाल देकर व्यभिचार दिखला कर वादीने खूब जोर लगायाहै तथा आत्माका रागादिसे भिन्नत्वाभिन्नत्वपर अच्छा विचार कियाहै, आचार्य महाराजने खूब युक्ति प्रयुक्तिद्वारा वादीको फटकाराहै देख लेवें ! मित्र

गणो ! मचकुरा मोक्षपदमें मजाकी कोइ इन्तहा नहींहै क्योंकि वहांपर हमारा आत्मा जन्म जरा मरण रोग सोग वगैरा सब उपाधियोंसे अलाय रहताहै, देखिये योगशास्त्रके कर्त्ता हेमचंद्रसूरि योगशास्त्रमें मोक्षका कितना सुख बयान करतेहै ? देखनेसे साफ मालूम होजायगा किह दो हिसाबसे वहांरहे वे फरमाते है ।

सुरासुर नरेन्द्राणां यत्सुख भुवनत्रये ।
तत्स्यादनन्त भागेपि नमोक्ष सुखसपद ॥१॥
स्वस्वभाव जमत्यक्ष यस्मिन् वै शास्वत सुख ।
चतुर्वर्गाग्रणीत्वेन ते न मोक्ष प्रकीर्तित ॥२॥

भावार्थ—सुरासुर नरेन्द्रोंको इस दुनियाम जितना सुखहै वो तमामका तमाम मिलकरभी मोक्ष सुखके अनन्तमे हिस्से नहीं होसक्ता ॥ १ ॥ मोक्षमें स्वाभाविक अतींद्रिय (इन्द्रियो-द्वारा न देखा जासके) और शाश्वत (हमेशह कायम) सुख होते है इस लिये चार पुरुषार्थोंमें मोक्षको अव्वल दर्जा दिया गयाहै ॥ २ ॥

इति उपादेय मोक्ष तत्त्व ॥ ९ ॥

मेरे मध्यस्थ वर्य्यों ! अवी मैंने नों तत्त्वकी सिरफ नाम मात्र व्याख्या किइ है इनके भेदानुभेदका मैंने बिलकूल ख-याल नही कियाहै, क्योंकि मात्र इतने स्वरूपसेहि निवन्ध अ-पनी हदको उल्लंघन करने लगा है, तो फिर इनका विस्तारमें किस तरह लिख सक्ता हूं ? प्रिय मित्रो ! मैं एक मन्दमति पुरुष हूं, फिरभी अगर नव तत्त्वका स्वरूप लिखने लगूं तो तीनसो पृष्टकी एक किताब वनानेकी मुझे दरकार रहती है, अ-गर कोइ गीतार्थ महाराज अपनी लेखनीद्वारा इन विषयोंको परिस्फूट करना चाहे तो मैं नहीं कह सक्ताकि सहस्र पृष्ट तकभी उनकी लेखनी रूक सके ! वतलाइए ! अव इतने स्वरूपको इस छोटीसी इवारतमें मैं कैसे लासक्ता हूं ? इस लिये अकलमंदोंको इसाराही काफी है इस वातको याद कर सिरफ एक इसाराहि किया है कि वाकीके मतोंमें जैन मत जितना तत्त्व ज्ञान नहीं है. इस लिये दीगर मजहववालोंको अपने शास्त्रोंकी तरह जैन शास्त्रोंकोभी वडे शोखसे देखने चाहिये ! ताके काच ही-रेकी अच्छी तरहसे परिक्षा हो सके ! देखिये ! एक आर्य म-हाशयने खंडनकी वुद्धिसे जैन शास्त्रोंका अवलोकन करना शुरु कियाथा मगर ज्युं ज्युं पराकोटिके ग्रन्थ देखते गये त्युं त्युं छिन्न संदेह होते गये, अखीरमें एसे परम श्रद्धालु जैन वन गये हैं कि जिनोने आर्य मत खंडनके लिये कई ट्रेक्ट जारी किये हैं, प्रिय मित्रो ! इस तरहसे आपभी उत्तम शा-

स्त्राके अवलोकनसे परम लाभ उठाओगें। जैसे हम लोग आप तमाम महजब वालोंके ग्रथोंको देखते हैं इसी तरह आपको देखने चाहिये। जैन शास्त्राका यही कथन है कि हरएक मतकी युक्तियोंको श्रवण करो। अगर न्याय हो उसे मानो। और नाम्यसे हटो। देखिये कैसी उमदा बात कही है?

पक्षपातो नमे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु।
युक्ति मद्वचनं यस्य तस्य कार्य परिग्रह ॥१॥

इत्यल पल्लवितेन विज्ञ वर्गेषु ओम् शान्ति शान्ति शान्ति ॥ द मुनि लब्धिविजय–हुशीयारपुर–देश पंजाब.

अर्हम् ।

पूज्यवर्य्य गणिजी श्री केवलचंद्रजी महाराजका संक्षिप्त,—जीवन—चरित ।

छप्पय—छन्द.

नहिं जंपे परदोष, अल्प परगुन बहु मानहीं,
हृदय धरही संतोष, दीन लखी करुना ठानहीं,
उचित रीति आदरहीं, विमल नय नीति न छंडही,
निज जसलहन परहरहीं, रामरुचि विषय विहंडहीं,
मंडही न कोप दुर्वचन सुनी, सहज मधुर ध्वनी उच्चरही,
कहि कवरपाल जगजाल यश, ए चरित्र सज्जन करहीं. १

परोपकारी, उदार चरित महान् पुरुषोंकी जीवनी पढ़नेसे मनुष्यको जैसा मनुष्य कर्तव्यका ज्ञान प्राप्त होता है, वैसा ज्ञान अन्यान्य किसीभी साधनद्वारा नही हो सकता । जैसा २ मनुष्य उत्तम पुरुषोंके चरित पढ़ते चले जाता है तैसा २ उसके मनःमे उच्च श्रेणीके विचार बंधते चले जाते हैं । व्यसनी एवं अश्रेष्ट पुरुषभी यदि महात्माओंकी दिनचर्य्या एवं जीवनीका अवलोकन करनेंका सतत प्रयत्न करता रहे तो वह अवश्य-मेव श्रेष्टता प्राप्त कर सकता हैं । और अन्तमें सुज्ञ जनभी ए-

श्रीमद् स्वर्गीय यति केवलचन्द्रजी

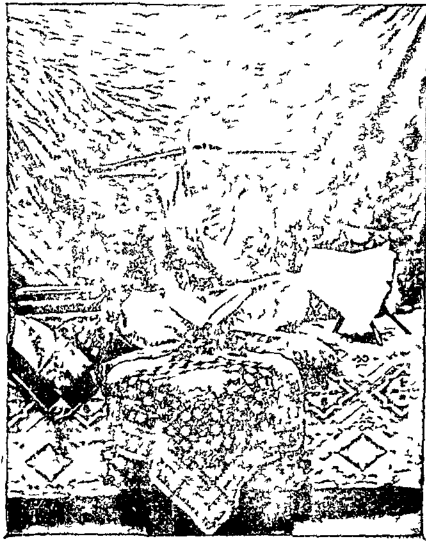

गणिजी महाराज

जन्म	मृत्यु
भाद्रपद कृष्ण १० सं० १८८५	मार्ग शीर्ष कृष्ण ९ सं० १९६७

सकी प्रशसा किये विना नही रह सके ऐसे उच्च गुणोको सम्पादन कर सकता है। उत्तम पुरुषोंकी जीवनिया इतिहास स्तभके समान है। और इसीमेही विज्ञानुरागी प्रेमसे जीवनीया लिखते पढते हैं।

मेरे परोपकारी स्थविर-महात्मा-साक्षरवर्य्य-पूज्यपाद श्रीमन् महाराज केवलचद्रजी गणिजीका जीवन चरित्र-हिन्दी जैन पत्रके सम्पादक महाशयके अनुरोधसे लिखनेका विचार किया है इसमें जल्दीके कारण कुछ त्रुटी रही विदित होतो पाठक क्षमा करे!

गणिजीश्री केवलचद्रजी महाराजका जन्म विक्रम सवत् १८८० के भाद्र पद्र कृष्ण १० दशमी गुरुवारकी रातको इष्ट घडी ०८ पल ४३ पुनर्वसु नक्षत्रमे हुआ जन्मस्थान शहर ग्वालीयर, ज्ञाति गौड ब्राह्मण, माताका नाम सुशील और पिताका नाम शिवानन्दजी था गणिजीके पिता ग्वालियरमें श्रीमान् मेघराजजी मुराणके यहापर नोकरी करतेथे चरित्र नायक जिस समय नऊ वर्षकी वयमे हुए उसी अर्सेमें श्वेताम्बर जैनाचार्य श्रीमान् ताराचद्रसूरीजी महाराज देशान्तरोंमे विचरते हुवे, अनेक यति-महात्माओंके साथ सवत १८९३ मे ग्वालियर पधारे। श्रावकोंने नगर प्रवेशका सराहनीय उत्सव किया। श्रीताराचद्रसूरि आजके श्रीपूजोंकी तरह द्रव्य लोभसे कहीं नहीं विचरे, वे जहा जातेथे वहापर व्याख्यान हमेशाह

करतेथें, और मानसीक इच्छा उनकी यही रहा करतीथीकी कीसीभी रीत्या जैन धर्म उन्नत दशामें पहुचे ! आचार्योंका क्या कर्त्तव्य हें यह वे पूरी तौरसे जानतेथे, इतनाही नही व-रन् वे. कर्त्तव्यका यथोउचित पालनभी करतेथें । आचार्यजीके गुणोका उल्लेख करनेंका यह समय नही हैं इस लिये अधिक लिखना अयुक्त समझता हूं ।

एकदिन मेघराजजी सुराणेंनें आचार्यजीसें यह विनतीकी. मेरे घरको पधारकर पावन करनेकी कृपा फरमावें । श्रीजी महाराजनें सुराणेंजीकी भक्तिवश यह कहना स्वीकार करलिया और दूसरेही दिन सुराणेजीके घरको आचार्यजी महाराज पधारे, पधरामणीका जलसा सुराणीजीने वहुतही प्रशंसनीय किया सुराणेजीने आचार्य महाराजकी केसरचंदन और सुवर्ण मुद्राओसे नवअङ्ग पुजन कर अपना आनन्द सभासमक्ष व्यक्त किया. उस समय हमारे चारित्र नायक आचार्य महाराजके चरण कमलोंमे आकर लेटगये माता व पिता प्रभ्रातिने

नोट १ कई लोगोंके मनमें यह वहेम भरा है कि–विरक्त आचार्य–मुनि प्रभ्रातिनें–सुवर्णमुद्रा (मोहोरो) ओंसें पुजन नही करना चाहिये परंतु यह उनकी भूल है । अकवर वाद-शाहको प्रतिबोध देनेवाले–जैनाचार्य हिरविजयसूरि महाराज सरीखे महात्माओंनेंभी सुवर्णमुद्राओंसे पूजन करवाई है । यह उनके जीवन चरित्रसे विदित होता है.

यहासे उठानका बहुतकुछ प्रयत्न किया किन्तु आश्चर्य श्रीके चरणोंको त्यागना आपने बिलकुल नहीचहा ! यह आचार्य जनक दृश्य देखकर आपके माता पिताने और सुराणेजीने आचार्यजीसे यह विनती की, कि, इस बालककि भक्ति-एव प्रीति-आपहीपर अधिक विदितहो रही है अतएव हम लोगों-काभी अन्त करण इस समय यही कहरहा है कि, इस बाल-कको हमेशाहके लिये आपकी सेवामें अर्पण करदेना ! आचार्यजीनेंभी उत्तम लक्षणयुक्त बालकको देख इसबातका स्वीकार करलिया और उपाश्रयको लेकर आये ।

चरितनायक विद्याके बडेही अनुरागीथे, एकवार देखने परहीसे आपको श्लोक-काव्य-कठहोजाताथा-पढाहुआ भूल जानातो आप स्वप्नमेंभी नही जानतेथे किसीभी विषयका किसीभी स्थलका-प्रमाण आपसे किसीभी समय क्यों ! न पूछलियाजाय, झट कहदेतथे आपकी स्मरणशक्ति ऐसी प्रव-लथीकी पृष्ट-पङ्क्ति तकभी आप नही भूलतेथे ब्रह्मचर्य व्रत मेंतो आप इतनें दृढथेकि स्वप्नमेंभी कभी विषयभोगकी इच्छा नहीकी । वर्तमानके ब्रह्मचारीयोंमें आपका प्रधानपद कहदिया-जायतो कोई अत्युक्ति नही हैं । विनयगुण तो आपमें इतना भराथा कि, वृद्धोंका अविनय करनातो आप जानतेभी नहीथे अलावा इसके यदि कोई अन्यान्यभी सज्जन आपसे मिलनेंको आताथा तो उसके वचनोसे ऐसा शान्त और सतुष्ट करदेतेथे, कि,-उसके हृदयमें यही भावना उत्पन्न होजातीथी कि, ऐसे

महात्माओंकी सेवा और सत्संगत वनी रहेतो अच्छा। उक्त गुणोंके कारणसें आचार्यजी महाराजका सभी शिष्योंसे अधिक प्रेम आपके उपरथा. विक्रम संवत् १९०३ में आचार्यजी माहाराजने अपने हाथसें आपको दीक्षा दी, दीक्षाका नाम "केवलचंद्र" मुनि रक्खा। दीक्षाके समय आपकी कोइ अठराह वर्षकी वयथी. व्याकरण, काव्य, कोश, न्याय, अलङ्कारादि शास्त्रोंका अध्ययन आप भलीभांती करसकेथे. ज्योतीष, वैद्यक, छन्द, प्रभृति शास्त्रोंका अवलोकन आपका भलीभांती होगयाथा. जैनदर्शनके मुख्य सिद्धान्त ग्रंथोंका पठन आप आचार्यजी महाराजके समीप करतेथे, आचार्यश्रीके साथ ग्रामानुग्राम विचरनेंसे यद्यपि शास्त्राध्ययनमें क्षति पहुचतीथी, तथापि सूरिजीस्वतः विद्वान् और पठन करवाते रहनेसें विशेष हानी पहुचनेंका संभव नहींथा. जैनदर्शनके सिद्धान्तोंका सुवोध होनेंपर षट्दर्शनके मुख्य ग्रंथोंका अवलोकन सूरीजोनें करवा दिया. विद्यामें आपकी प्रशंसनीय प्रगति और सद्गुणोंद्वारा प्रसन्न होकर-सूरिजीनें आपको युवराजपद (प्रधानपद) पर निमतकर दिये. आचार्यजी महाराजके शिष्य सम्प्रदायमें-सूर्यमलजी, सुलतानचंद्रजी, कर्पूरचंद्रजी ओर ब्रह्मचारी [1]रत्निदत्तजी

---

१ नोट-आपने आचार्यजीसे मंत्रोपदेश लेकर केवल ब्रह्मचर्य व्रतही ग्रहण कियाथा और यह प्रतिज्ञाकी भीथी, आपका शिष्यका स्वीकारकर इसी अवस्थामें आत्मसाधन करुंगा.

प्रभृति सभी शिष्योंमेंसे आपपर प्रेम अधिकथा. सूर्यमलजी भोलेभाले और बडेही सरल परिणामीथे विक्रम सवत् १०१५ माघ शुक्र अष्टमीके दिन आचार्यजी महाराजका देहान्त पहोकरण ग्राममें हुआ प्राय सभी शिष्य उस समय आचार्यश्रीके समीपथे आचार्यश्रीने देहत्यागके थोडेक पहले यह सबाको कहाकि,–मेरे शिष्योंमें सर्वोत्कृष्ट गुणधारक, सुशील, श्रम सहिष्णु और कर्तव्य परायण केवलचद्र मुनिहैं, और इसीको सूरिपद देना, तुम सभी इसीके आज्ञामें रहो तो तुमारे लिये अच्छाहै. और सूर्यमलजीसे कहा यद्यपि तू बडाहै किन्तु भोलाएव पठित न होनेसे अन्य तुझे सम्हाल नहीं सकेंगे इस लिये तु केवलचद्रकी रक्षामें रहना और लघुभ्राताको शिष्यके समान समझकर सेवा सुश्रुषा करना और चरित्र नायकसे यह कहाकि–जहा तक बनसके वहा तक सूर्यमलको तु निभाना दुखि मत करना बाद आचार्य महाराजने परमेष्ठी ध्यान करते हुवे इस नश्वर देहका त्याग कर दिया. स्वर्गारोहण क्रिया जैनशास्त्रानुसारकी गई. गुरुमहाराजके वियोगसे दुखित हुवे हमारे चरित्र नायकने कुश्ती कसरतका जो शौकथा वह उसी दिनसे त्याग कर दिया आपको जैसा विद्याका अनुरागथा वैसाही दण्ड मुद्गर फीरानेका एव कसरतका भी बडाही प्रेमथा आपकी मानसिक शक्तिके साथ शारीरीक शक्तिभी एसी प्रबल थी कि बराबरीके दस बीस व्यक्तियोंको कुछ चीज नहीं

समझतेथे. शहर बीकानेरमें कइ प्रबल पहलवानोंका मानमर्दन आपनें कर दियाथा. आपके देहान्तके थोडे दिन प्रथम एक शत्रु युवकसे बल संबंधी वार्तालाप करते उसका हाथ पकड लियाथा तो वह उसे छुटवाना मुश्किल होपडा ! वृद्ध वयमें भी आपमें ऐसी शारीरीक शक्ति विद्यमानथी.

ताराचंद्रसूरिजी महाराजके देहोत्सर्गके बाद-गच्छकी वडीही शौचनीय दशा होगई-कइ विघ्नसंतोषी यतियोंनें बीकानेरमें प्रपंच जाल बीछाकर सूरिजीके शिष्योंमें द्वैमतस्य उत्पन्न करदिया. सुरुतानचंद्रजी तो अपनी ढाइपा अलगही पकानें लगे. अने आचार्य होजानेंकी कोशीश करनें लगे. कर्पूरचंद्रजी दोचार यतियोंकी सम्मतिसें सूरि बनकर बेठगये आपने सभीको बहुत समझाए परंतु जब यह स्पष्ट विदित होगया कि यह लोक दुराग्रह नहीं छोडते है तब मध्यस्थ वृत्तिको त्याग तटस्थ वृत्ति स्वीकार करली. और-स्वर्गवासी गुरु आचार्य महाराजका आराधन करनेंका पीछे पोहोकरन लौट कर चले आये. आपकी गुरुभक्ति सराहनीयकी क्योंनहो ? कहाहैं: " गुरुके प्रसाद सब विद्याको बोध होत, गुरुके प्रसाद तें प्रकाश उरछायोंहै । गुरुके प्रसाद शुद्ध आनंदरूप होत. गुरूके प्रसाद शिव कालकूट खायोहै । गुरुके प्रसाद वाल्मीकी व्यास कविभये, गुरुके प्रसादही तें रामगुण गायोहै । गुरुहीके कृपासें आनंद होत सालिग्राम-गुरुपदकी कृपासे पूर्णपद

पायोंहै ।।" गुरुपदके आप पूर्ण भक्तथे संवत् १९१६–१९१७ के दो चातुर्मास पोहोकरण किये। वहा गुरुमहाराजने स्वप्नमे आपको वह प्रगान किया कि " जा–देव–गुरु और धर्मके प्रसादसे तुझे अखण्ड सुख रहेगा, तेरे हाथसें अच्छे २ धर्मोन्नतिके कार्य होंगे, और तेरा तेज–पुंज और शिष्य प्रशिष्यकी वृद्धि होगी, और जो जो मेरे कुशिष्यहैं जो कदाग्रह कररहेहै उनका अतमे नाम निशानतक नहीं रहेगा अर्थात् निर्वंश होजावेगे " इस स्वप्नके थोडे दिनोंके बाद और आपके सद्गुणोंके वश पहोकरणाधिपति श्रीमान् ठाकुर सहाब भभुतसिंहजीने आपका आदर सत्कार प्रशसनीय किया और एक पटा लिख दिया उसकी नकल हम यहापर उद्धृत करते है ।

पट्टेकी–नकल

श्रीपरमेश्वरजी

ठाकुर साहेबके
कचेरीकी महोर यहा
पर है

सयतश्री ठाकुरा राजश्री बभुतसिंहजी लिखावत वाजे–

—जरा गामरां जागीरदारारा, कामेतीया, चोधरीया, भोमियां-दिसे, गुरां केवलचंद्रजी बीकानेर जावे छे सो रात रहे जीणरी चोकी पोरो जायतो राखजो हर वीदा हुवे जठे आगलै गाम पुगाय दीजो. संवत १९१७ का मिती पोह वदी १२.

श्रीमान् ठाकुर सहावनें यहां तक कहाकि,—आप बीका-नेरसे शीघ्र लौट आवें और यही आपकी सेवा भक्ति होती रहेगी वीराजे रहै और सहावणे श्रावकोंनेंभी आपसे यही कहा की महाराज! आप हमारे यहांपर विराजे रहै हमारे तो अब आपही आचार्य हैं। किन्तु आपकी इछा बीकानेर जानेंकी होनेंसें आप रवाना हो चूके. बीकानेरमेंभी आपका वहुत कुछ सत्कार हुआ, क्यों नहो, कहा है "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" परस्परमें लडनेवाले दोनों पक्षके भातृगणभी आपसे सदा संतुष्ट रहतेथे इसका कारण तटस्थ वृत्तिही समझें।

शहर बीकानेरमेंभी कइ व्यक्ति आपके उपदेशसें धर्ममें पावंद हुए. आपके सदुपदेशसे श्रीमान् धर्मचंद्रजी सुराणेजीकी धर्म पत्निने शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्रा निमित संघ निकाल-नेका निश्चय किया और माघ सुदीमें संघ बीकानेरसे रवाना हुआ. उक्त संघके मुख्याधिष्ठाता आपही थे उन दिनोंमें रे-ल्वे न होनेसे खुशकी रास्तेही संघ रवाना होनेंसे गाडी ५०० ऊंट ४००, घोडेस्वार रक्षाके लिये १०० और मनुष्य सं-

ख्या करिब ५००० थी, यति-साधु-साध्वी-गणभी करीब सोकी सख्यामेंथे, आलावा इसके सब रक्षार्थ बीकानेर नरेशकी ओरसेंभी कई घोडेस्वार दिये गयेथे. दर्शन पूजनके लिये एक देहरासरभी साथमें था देरासर वगेराकी देखरेख आपही करतेथे नागोर, फलोधी-पार्श्वनाथ, कापरडी, पाली, वरकाणा, नाडोल नाडोलाइ, राणपुर, मुन्छाला महावीर, पचतीर्थी सिरोही, आबुराज, पालणपुर, सखेश्वर, राधनपुर, वडनगर, वीसनगर, सिद्धपुर-पाटण-(हेमचन्द्राचार्यकी) प्रभृति स्थलेकी यात्रा करता हुआ सघ शत्रुजयकी तराटी शहर पालिताणा पहुचा और सहर्ष सघने सिद्धगिरिकी यात्राकी, और अपनी २ आत्माओंकों सभीनें धन्य माना. एक मास पर्यन्त शहर पालिताणमें सबका मुकाम रहा, तदनतर वहासे रवाना होकर शत्रुजय निकटवर्ति पचतीर्थी और गोगा-नवखडा पार्श्वनाथजीकी यात्रा करके गिरनार पर्वतकी तराटी शहर जुनागढको सघ पहुचा रेवतगिरि पर्वतपरके मदिर जुहारे-और अरिष्ट नेमी भगवान्‌की यात्रा करके सबनें अपनेको कृतकृत्य हुवे माना। जुनागढसे अमदाबादके मदिरोकी यात्रा करके सब बीकानेर लौट आया, इस यात्रामें करीब ६ मास लगे, ऐसा गौरवशाली सघ बीकानेरसे आजतक नही निकला, शहर पालीताणामें उक्त सघनें हमारे चरित्र नायक महाराजको गणि एव-आचार्य पद-दिया, आपने अभय पद स्वीकार क

रने नमय स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्तकर दियाथा कि—" मेरी इच्छा यह कभी नहींकी मैं किसी प्रकारकी पदवीसे विभूषित होकर फिरूं और नमेरी इच्छा पदवी लेनेकीथी किन्तु जब आप लोग देते है तो आपका मान रखनेके लिये मैं स्वीकार कर लेताहूं। बातभी यही हुई, आपने अपने जीवनमें सादगीको कभी नहीं त्यागी और न कभी किसीको अपने मुहसे यह कहा या लिखाकी मै अमुक पदवि विभूषित हूं! बस! कोई पुछता जो उत्तरमें हमेशाह यही कहा करतेकि मैं भी एक जैन भिक्षुक हूं, सब मुनियोंका दास हूं, आपके साथ जिन्होंने वार्तालाप किये हैं वे इस बातको ठीक सत्य समझ सकते हैं।

वि० सं० १०१८ चातुर्मास आपका शहर बीकानेरमेंही हुआ, भाईयोंके वैर विरोध (कदाग्रह) को देख आपके बीकानेरमें रहना आत्माका श्रेयनही समझा, चातुर्मास समाप्त होने पर तुरंत वहांसे विहारकर शहर इंदोर पधारगये और संवत् १०१० का चातुर्मास शहर इंदोरमें बडे उत्साहके साथहुआ. इंदोर नरेश श्रीमान् होलकर सरकार श्रीयुत तकुजीराव बडेही गुणज्ञ और साधुसंतके प्रेमीथे इससे महारे चरित्र नायकसे कईवार मिले, इन्दोर सरकारनें आपसे कईवार कहा, ग्रामादि जिसवस्तुपर आपकी इच्छाहो और जो आप मांगें मै देनेंको तैयारहूं किन्तु हमारे चरित्र नायकतो यही कहतेरहे कि हमें सबकुछ आनंदहै, किसीबातकी हमें इच्छा नही हैं। मनुष्यमें

निर्लोभताका गुण आना सहज नहीं है किन्तु हम जोरशोरके साथ कह सकते है कि महाराज केवलचंद्रजी सदाके लिये निर्लोभीथे, उन्होंने अपने जीवनकालमें किसी तरहसें धनसंचय करनेका प्रयत्न नहीं किया उननोंमें एक एक अलौकिक गुण ऐसा रहा हुआथा कि–वे–धारलेतो लाखों नही, पर करोडोंही रूपये कमालेते, परंतु कमाना किसेथा ! उनकी संसारयात्रा जितनी पवित्र–विशुद्ध–और निर्दोष–समाप्त हुई है वैसी संसारयात्रा उनके समान वयके आचार्य और यतियों भाग्येही स्यात् किसीकी हुइहो ! अस्तु चातुर्मासके बाद शहर इंदोरसे रवाना होकर शहर बुरहानपुर पधारे वहांपर वीरचंदजी कोठारीने आपशे विनतीकी, कि, आप एक मास पर्यन्त अवश्य ठहरें क्योंकि मेरे नवपद ओलीका उद्यापनहे। यह उत्सव आप सरीखे महानुभावोंकेही कथनानुसार यथाविधि होना मे मेरा सौभाग्य समझता हु । आपनेंभी धर्मकार्य जानकर एक महातक ठहरेरहे। उद्यापन समाप्तिके बाद, मल्कापुर, खामगाम, बालापुर, पातुर, मीडशी होते हुवे शिरपुर अन्तरीक्ष पार्श्वनाथजीकी यात्रा की, और वहांसे लौटकर शहर बंबइको पधार गये संवत १९२० का चातुर्मास आपका बंबइमें बडे समारोहके साथ हुआ गणेशदास कृष्णजीके दुकानके मुनिम श्रावक केवलचंद्रजी सुराणेनें बहोत बडा उत्साह किया, भक्तिपूर्वक रखे, वहांसे आप पुना (दक्षण) पधारे वि. सं० १९२१ चातुर्मास

९

आपके पुनाकाही हुआ. पुनेसे आप लौटकर खामगांव पधारे इन दिनोंमें ब्रह्मचारी रविदत्तजी जो कि आचार्य श्रीताराचंद्र सूरिजीसें मंत्रोपदेश लियाथा और ब्रह्मचारी हुवेथे वेभी अकस्मात् खामगांवमें आगये, दोनोंका मिलाप होनेसे संतुष्ट हुवे. और कइ वर्ष साथ विचरे. इस स्थलका जल, वायु अच्छा मालूम होनेसे नव चातुर्मास खामगांवमेंही किये. यह स्थान निरुपद्रवी और एकान्त होनेके कारण इन नववर्षोंमें आपनें वर्धमान विद्या आदि अनेक विद्याओंकी साधना की। आपके सत्यशीलादि गुणोंसे वराड प्रान्तके स्वपरधर्मी सबकोई आपके दर्शनोंके अभिलाषी रहतेथे और प्रस्तुतभी अनेक विशेष व्यक्तियां आपके सद्गुणोंसे परिचित है. इन नव वर्षोंमें ब्रह्मचारी श्रीरवीदत्तजीभी आपके साथ रहे और दोनोंने मिलकर विद्याओंका साधन किया. सं १९३० में आपके शहर बीकानेरसे भ्राताओंके कई पत्र ऐसे आये कि, जिससे आपने मारवाडको जाना उचित समझा और रेल्वेद्वारा खण्डवा, जबलपुर, प्रयाग, दिल्ली और खुशकी रास्ता, भीयाणी, बिसाउ, रामगढ, आदि शहरोंमें होतेहुवे शहर बीकानेर पधारे. बिसाउके ठाकुर साहब श्रीमान् चंद्रसिंहजीने आपकी बहुत कुछ सेवा भक्ति की ठाकुर साहबको पुत्र नहीथा, इससे पुत्रके लिये क्या उपाय कियाजाय इस विषयमें आपसे पूछागया, आपने प्रसन्न होकर वरदिया कि–" इसी वर्ष आपको पुत्र होगा " वास्तवमें हु-

आभी नेसाही–ठाकुर साहबने पुत्रोत्पत्तिके बाद आपको कई-वार आमत्रणकिये, परतु आप फिर गयेही नही. धन्य है विरक्तता तूझे ?

सवत १९३० में आचार्य गच्छीय उपाश्रयमें एक विराट सभा भरीथी, सभापति हेमचद्रसूरिथे. इस सभामें आपने अपने मतव्योंका पूर्ण समर्थन किया. किसीभी विद्वानकी यह सामर्थ्य न हुइ की आपके कोटीका कोटीका कोई खण्डन कर सका हो, सारे पडित चूप होगये, आपका इस सभामें पूर्ण विजय एव सन्मान हुआ और पडितोंने आपको विद्यावाचस्पति पद दिया. सवत १९३१ से १९४८ अठराह वर्ष पर्यन्त आप मारवाड प्रांतमेंही विचरते रहे प्राय. बहुतसे चातुर्मास बीकानेरमेंही हुए ।

सवत १९४९ चोमासा आपका शहर डुगरगढ (प्रान्त बीकानेर) में हुआ, डुगरगढके हाकिम साहबने आपके गुणों से प्रसन्न होकर एक ऊटकी बेगारका परवाना दे दिया, उसकी नकल हम यहापर उद्धृत करते हैं ।

परवानेकी नकल.

१ श्री रामजी.

डूंगरगढके
कचेरीके सिके छाप.

शहरश्री डूंगरगढरा हाकमां देसरंगे वरोभोमीयां चोधरी-यां जोग ९ तीछा गुरां केवलचंद्रजी अठेसुं श्रीबीकानेर जावे छे सो इयांरे साथे ऊंट १ वेगाररो छे सो मारगमें गांवदरगांव ऊंट १ वेगाररो दियां जावजो, फोडा मती घालजो. संवत १९४१ मीति भादरवा सुदी ७।

आपका सविस्तर पत्रव्यवहार यहांपर नहीं दर्शा सकते परंतु बडेर धनी श्रीमान् शेठ साहुकार जागीरदार वगैरा उच्च कोटीके लोक आपको बहुत चहातेथे और आप अपनी सादगीमेंही मग्न रहतेथे, गौचरीके अन्नको अमृत समझतेथे प्रायः गौचरीके लिये आपही उठा करतेथे. जब बहुतही वृद्ध

होगयेथे तोभी शिष्य समदायको यही उपदेश करते रहतेथे कि,-मुझे गौचरीकाही अन्न ला दो।

सवत १९३६ में आपके वृहतशिष्यकी माताने अपना बालक आपके समर्पण कर दिया और ८ वर्ष तक लालन पालन करके विक्रम सवत १९४० आपके सुपुर्द कर दिया इन अठराह वर्षोंम गच्छकी ऐसी हानि हुई, ऐसा विग्रह और क्लेश हुआ कि लिखते हमारी लेखिनी काप उठती हे और वह उक्त घटना अप्रासगीक होनेसे एव सार रहित होनेसे हम यहापर लिखना युक्तही नही समझते

पाचोराके निकट एक वनोटी नामक एक छोटा खेडा है उसमें जैन श्रावक धूलचद्र वगारीया रहताथा उसके क्षयका रोगया और घरमें पिशाच बाधाथी, वह कई यत्न करनेपरभी रोग शात नहीहुए दैवयोगसें ब्रह्मचारी श्रीयुत रविदत्तजी वहापर चलेगये उनसे धूलचद्रजीने बिनती की कि, महाराज ? यह मेरा रोग कैसे जाय? तब ब्रह्मचारीजीने उत्तरदिया कि जिनआचार्यका मै शिष्यहु उन्ही आचार्य महाराजके मुख्य शिष्य केवलचद्रजी गणि बीकानेरमें विराजमान हैं यदि वे तेरे भाग्यसे यहांपर आजाय तो तेरे यह दु ख दूरहोना कोइ कठीन बात नही. यहबात सुनकर वनोटीसे धूलचद्रजी वगारीयाने कईपत्र लिखे और अन्तमें एकसो १०० रूपयोंका मनिओर्डर

भेजकर विनति की "मेरा घर अवश्य पावन करें" आपनेभी दक्षण जाना श्रेय समझकर शिष्योंके साथ रेल्वे द्वारा रवाना होकर पांचोरा पधारगये और ब्रह्मचारी रविदत्तजीसे मिले. रविदत्तजीनें गच्छ संबंधी वार्ता पूछी, उत्तरमें आपने फरमाया कि सूरीजी महाराजके वचनानुसार दोनोंभ्राता लडते २ परलोक वास सिधारगये और थोडेदिनोंमें उनका वंशही भ्रष्ट होजायगा ऐसा अनुमान है. वातही वहीहुई वि० सं० १९५२ तक दोनोंभ्राता (मुलतानचंद्रजी–कपूरचंद्रजी) ओंके अनेक शिष्योंमेंसे एकभी नाम मात्रके लिये नही रहा–कई दीक्षा त्यागकर चलेगये और कई मरगये. जो लोक गुरुकी आज्ञा न माने उनका यही हाल होताहै. कहा है " गुरुराज्ञागरियसि " वनोटी निवासी श्रावक धूलचंद्रका रोग एवं पिशाच वाधा आपकी कृपासे दूर होगई और वह दृढ श्रावक होगया. पांचोरेमें कई दिनोंतक ठहरकर वहांसे स शिष्यपरिवार और ब्रह्मचारीजीके साथ आप खामगांव पधारे. खामगांमको वहुत रोजसे आना होनेके कारण नगरवासियोंने इसवर्षके चातुर्मासमें याने सं. १९४९ में वडाभारी जलसा किया और सं १९५० के आषाढ शुक्लादशमीको आपके हाथसे वृहत् शिष्यकी दीक्षा हुई. दीक्षाकानाम आपने "वालचंद्र" मुनि रक्खा, सं. १९५२ का चातुर्मास आपका आकोले हुआ, इसी चातुर्मासके वाद शिष्य परिवार सहित आप शत्रुंजय–गिरनार प्रभृति गुजरात

देशके जैन तीर्थोंकी यात्रा करनेको पधारे, यात्राकरके पीछे खामगामको लौट आये ततः पश्चात् (स० १९५३ से १९६७ तक) आजतकके १० चातुर्मास आपके खामगाममेंही हुए थे यद्यपि आप शेप कालमें विचरतेभी थे किन्तु चातुर्मासके दिनोंमे लौटकर खामगामको आजातेथे स १९५६ में पाचोरेके संघके साथ केसरीयाजीकी और मक्षी पार्श्वनाथजीकी यात्रा की स १९५९ बीकानेर और फलोधी पार्श्वनाथजीकी यात्रा की स १९६० में सम्मेतशिखर प्रभृति पूर्व देशके तीर्थोंकी यात्राको पधारे, जबलपुरमें आपके उपदेशसे एक जैन पाठशाला स्थापित हुई स १९६३ में आपने अपने लघु-शिष्यको शहर धूलियेमें दीक्षादी दीक्षामहोत्सवका कुल खर्चा श्रीमान् श्रावक कनीरामजी गुलाबचद्रजी खींवसराने किया इनदिनोंमें विद्यासागर, न्यायरत्न, श्रीमान् शान्तिविजयजी महाराज भी शहर धूलियेमें थे. दीक्षाकी सपर्ण विधि मुनिराज शान्तिविजयजी महाराजके हस्तसे हुई, आपका और मुनिमहाराजका परस्पर बडाही प्रेमथा दीक्षाउत्सवका जलसा प्रशसनीय हुआ कुल श्रावक श्राविका इस उत्सवमें सामिलथे कई यति देशदेशान्तरोमे आयेथे इस दीक्षाके थोडेही दिनोंके पश्चात वेदनीय कर्मोदयसे चरित्रनायक धूलियेके उपाश्रकी सिढीयोंसें उतरतेहुवे, पगचूकजानेसें गिरपडे, और जाये पावको चोट जोरसे लगनेसे हड्डीने स्थान छोडदीया पग सूज गया

और वहोत वेदना होने लगी. तथापि आप नहीं घवडाये और सभीको धैर्य देतेरहे. कई डाक्टरो-वैद्योका इलाज करने पर वेदना वेशक आराम होगई किन्तु हड्डी फिर पीछे स्थानपर न आनेके कारण चलना फिरना वंध होगया था, वह वैसाही रहा " वृद्ध वयके कारण रक्त कमजोर होजानेसें पग शक्ति नहीं पकडता इससे यह हड्डी ऐसीही रहेगी और चलना फिरना होना दुसवार है " वडे २ विद्वान डाक्टरोका यह अभिप्राय होनेसे उपाय करना वंधकरदिया. तीनमासके पश्चात् झूलियेसे खामगामको लेकर आये. चलना फिरना वंध होजानेके कारण शेष कालमें विचरना वंध करादिया गया. सं. १९६९ में आकोलेके संघकी विनंतिसे अपने वडे शिष्यके पास रेल्वेद्वारा थोडेदिनोके लिये आकोले पधारे, आपके प्रभावसे आकोलेके जैनश्रावकोंनें एक जैनपाठशाला स्थापन की है वह आजतक वरावर चलरही है, वहांसे थोडे दिनके पश्चात् लौटकर पीछे खामगामकोही पधारगये. तदनंतर आपका यह दृढ निश्चय होचुकाथा कि,-अव हमारा आयु थोडा शेष रहा है अव हम कहींभी नही फिरेंगे और आत्मध्यानमें विशेष लीन रहेंगे, आपके स्वभावके वारेमें हमको एक काव्यका स्मरण हुआ, वह यहहै-

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहम् ।

सन्तोप वहते परर्द्धिपु परावाधासु धत्ते शुचम् ॥
स्वश्लाघा न करोति नोज्झति नय नौचित्यमुल्लघय-।
युक्तोप्य प्रियमक्षमा न रचयत्येतच्चरित्र सताम् ॥
(सिन्दूरप्रकरण)

भावार्थ –सज्जन–अर्थात् सत्पुरुष परायेके दोष नही कहाकरते, और अन्योके अल्प–तुच्छ गुणोकोभी निरतर कहतेही रहते हैं। पुन परसम्पत्तिमे आभिलाप–अमत्सरताको स्वीकारते हैं, परबाधा–परपीडा परको दु ख देनेमे शोक–सता पको धारण करते है । पुन: आत्मश्लाघा–आत्मप्रशसा नही करते पुन नीति (न्याय) मार्गका त्याग नही करते, पुन औचित्यता–योग्यताका उल्लघन नही करते, पुनः अप्रिय अहित कहने परभी अक्षमा (क्रोध) की रचना नही करते अर्थात् क्रोध नही करते , इस प्रकार सज्जनोका चरित्र है, सत्पुरुषोंमे यह उपरोक्त गुण हुआ करते हैं ।

सोम प्रभाचार्यजीनें उक्त काव्यमें सत्पुरुषोके जो लक्षण कहे है वे हमारे चरित्रनायकमें अक्षरश सत्य मिलते थे आपका देहोत्सर्ग कोई ८३ वर्षकी वयमें हुआ. आपके नेत्रोका तेज मरण पर्यन्त ऐसा था कि नेत्रोंका तेजही वैसाही था. आपको शास्त्र लिखनेका बहुतही अधिक प्रेमथा एक दिनमें

करिब तीनसो श्लोक वृद्ध वयमेंभी लिख सकेथे. अक्षर आपके मोतीयोंके दाणोंके समान सुंदरथे. लिखनेका इतना प्रेम होनेपरभी एक अक्षर तक विक्रय नही किया. आपके कर कमलों द्वारा लिखीहुई कई पुस्तकें इस समय हमारे पास मौजूद हैं । ग्रंथावलोकनकाभी आपको कम प्रेम नहीथा. एकनएक ग्रंथका अवलोकन करतेही रहतेथे. आपकी संस्कृतके सभी विषयोंमें अच्छी गतिथी. क्लिष्टसे क्लिष्ट काव्य क्यों न हो—आप बराबर उसका अर्थ कर बतलातेथे. योग विषयमें आप ऐसे प्रबलथे कि–यम–नियमादि अष्टांग योग क्रियामें उनकी स्पर्धा करनेवाला हमारे देखनेमें आजतक कोई नहीं आया. आप हमेंशा योगमेंही तल्लीन रहतेथे. प्रमाद तो आपके निकट तक नहीं आताथा. आपका देहपात वि० सं० १९६७ के मार्गशिर्ष वदी ८ अष्टमी गुरुवार को दिनके तीन बजेहुआ. आपने अपने वृहत्शिष्य बालचंद्रको कईमास प्रथमही यह कह दियाथा कि, अब हमारा यह शरीर थोडेही दिनोंका है. उक्त शिष्यने आपकी चिरायुकी आशा करके कहा कि, महाराज ! आपके शरीरमें किसी प्रकारकी आधि व्याधि नही हैं, अतएव आपके शरीरका पांच वर्ष कुछभी नही बिगडेगा. शिष्यको धैर्य रखवानेके कारण आपने कहा, तो अच्छा है ! परंतु बेटा कभी तो जानाही है, इसका क्या हर्ष और क्या शोक ! बात वही हुई, थोडेही महीनोंके पश्चात् इस लोकको

त्यागकर आप परलोक पधारगये मृत्युके चार दिन प्रथम केवल हिक्का (हिचकी) की व्याधी रही, शिष्यपरिवार औपत्रोपचार करनेलगे, आपने कहदिया क्यों उपाय करतेहो, अब हम नही बचेंगे! तथापि शिष्योंने कहा, नहीं महाराजा यह तुच्छ व्याधी अभि मिटजायगी और आप अच्छे होजावोगे, दवा लेनी चाहिये, आप शिष्योंके आग्रहसे दवा ले लेते थे दुष्ट हिक्का क्रमनः बढती हुईही चलीगई, कोई दवा कारागामद न हुई जब सभी वैद्य डाक्टर हताश हो चुके और सभीने यह कह दिया कि, इस हिक्काके बारेमें हमारी समझमें कुछभी नहीं आसक्ता आर यह अच्छी होना कठीन है, तब सभीको यह निश्चय होगया अब गुरुमहाराजका शरीर रहना नितान्त असम्भव है। आपने शिष्यासे कहाकि,–"मै तुमको प्रथमसे हीं कहचुका अब मेरा आयुष्य अधिक नहीं है, तुम नाहक मोहजालमें पडेहो, महावीर सरीखे तीर्थंकर महाराजाओंकोभी इस नश्वर देहका त्यागकरना पडा है, तुम धर्मध्यान करते रहो,–परमेष्ठी मंत्रका जाप हमेशाह करते रहना मैं परमेष्ठीहीका ध्यान करताहू मुझे यकीन है कि मेरा पण्डित मरण होगा और अगले भवमें मेरी सद्गति एव स्वर्गगति होगी मेरेको तुमने अपने हृदयमें समझना मैंने जो जो शास्त्र अक्षर पढाये है वे सभी मंत्रवत् है ससारके जालसे सदा दूररहना आत्मा अकेला आया है अकेलाही जायगा, कोई किसीका

साथी नही है, संसार मोहजालसे बंधाहुआ है, तुम लोक जैन धर्मकी दृढ श्रद्धा रखना, मैं तुमसे दूर नहीं हूं, जब मुझे याद करोगे और वह कार्य उचित समझुंगा तो अवश्य मै आकर तुमारा कार्य कर दूंगा. उस समय वृहत् शिष्यनें कहा आपका यह अन्तिम उपदेश हमारे लिये रत्नोसेभी अधिक मूल्यवान है, हम यह कभी नही भूलैंगे, आपके मुखसे आपकी सद्गतिका वृत्तान्त सुनकर हमको वहोत आनंदहुआ. आप ज्योतिषी देवता होगे यह योग्यही है, आपनें फरमाया, इसका प्रमाण तुमको शीघ्र मिलजायगा, फिर आपने यह कहा कि, तुमको जो जो बात पूछना हो तो पूछ लो. अब समय थोडा शेष रहा है, अब में मौन स्वीकार करके आत्मध्यान एवं परमेष्टी ध्यानमेंही स्थिर रहना श्रेय समझता हूं, फिर आप किसीसे नही बोले. आराधना विधि एवं क्षामणा विधि तो आप प्रथम करही चुके थे. शिष्यपरिवारभी परमेष्टी महामंत्रकी ध्वनी करते समीप वैठेरहे । करीब २ वजे दिनके श्वासोश्वास लेना बंध होगया-सभीकी यह समझ हुई की देह त्याग दीया; परंतु संध्याके ६ वजेतक आपका शरीर ऐसाही उष्ण एवं तेजश्वी था. तीन वजेहीसें काष्टकी वैकुंठी-देवविमान बनवानेको कारीगर बिठवादियेथे, सामको ५॥ साढे पांचवजे-विमान तयार होगयाथा. रेसमी वस्त्रोंसे विमानको सुशोभित कियागया था. चांदीकी ध्वजा पताकाओंकी शोभा अद्वितीयथी, उक्त विमा-

नमें विराजमान करके–गणीजी महाराजको विराजमान करके बडे समारोहके साथ, स्मशान यात्राका जुलुश निकाला गयाथा खामगामके प्रायः सभी श्रावक साथमेंथे–संसारकी असारता के सूचक गानेगाते हुवे एव जय २ शब्दोंकी ध्वनीके साथ गुरु महाराजको स्मशानमें पहुचाये जिस स्मशानमें पहुचे उस समय सध्याके ५॥ साढेपाच बजनेका समय था गुरुमहाराजका शरीर उष्ण रहनेसे सभीके मनमें यह शंका रहीथी कि आप योगनिष्ट हैं सायद समाधिस्थ होंगे तो ! या जीवात्माके कुछ प्रदेश शेष रहे होंगे तो ! इस विचारमे सभी सन्देह युक्त होकर देख रहेथे, इतनेमेंही आकाशमें एक आश्चर्य जनक दृश्य देखनेमें आया, गुरुमहाराजको जहापर विराजमान कियेथे उस स्थानके ठीक उर्द्ध दिशासें एक प्रकाशमय गोळा नीचे उतरा, और ठीक उत्तर दिशामें जाकर थोडीदेर तक ठहरगया इधर देखते हैं तो गुरुमहाराजका शरीर ठंडा गार होगया ! बस तुरतही श्रावकोंने आपकी चिताको अग्नि दर्शन करवादिया उक्त उक्त शुभ्र गोलाकार जो पदार्थ उत्तर दिशामें ठहरा हुआथा वह थोडे समयके पश्चात् दण्डाकार (शुभ्रवर्ण) होकर दो घटेतक बराबर रहा. उस समय ऐसा विदित हो रहाथा मानो यह गुरुजीके स्वर्गगमनकी यह सींढी तयार हुइ है ! स्मशानयात्रामें जो लोक साथमें थे उनको और खामगाम निवासी अन्यान्य सभी लोकोको यह विश्वास

हो गया कि यह दृश्य गुरुमहाराजका देहान्तके कारण हुआहै यह दृश्य खामगाममेंही नहीं किन्तु सैकडो कोशोमें देखनेमें आयाथा. गुरुमहाराजकी मृत्युके और उक्त चमत्कारिक घटनाके संबंधमें नागपुरके मारवाडी सप्ताहिक पत्रमें और बंबई जैन-पत्रमें—सविस्तर वृतान्त प्रकाशित होचुकाहै, प्रसिद्ध २ विद्वानोंने और कई पत्रकारोंनें गणीजीके मृत्युके संबंधमें शोक प्रकट कियाथा. गणीजीके शिष्योंपर कई महाशयोके सैकडो पत्र—शोक दर्शाने वाले आयेथे. उन पत्रोके उत्तर उन महाशयोंको उसी समय मिलचुके हैं । आप सरीखे उच्च कोटीके महात्मा यतिसम्प्रदायमें होना कठीन है । जिन २ महाशयोंने आपके दर्शन किये है वे इसमें लिखी हुई बातोंको अक्षरशः सत्य समझ सकते हैं ।

आपने अपने वृहत् शिष्यको तीसरे दिनकी रात्रीको स्वप्नमें दर्शन दिये और कहा, जिस गतिके बारेमें तुझसे कहाथा वही गति मेरी हुई है, और तुमको मै वर देताहूं—तुम सुख शान्तिसे धर्मध्यान करते रहो और मुझे तुम दुःखमें निकट समझो । आपके स्वर्गगमनके बाद कई लोगोकी मानता सफल होजानेसें विधर्मी भी आपको अपने गुरु मानते हैं और भेट पूजा भेजते हैं. आपके दहन—स्थानपर स्थूभ (देहरी) बनाया गया हैं । एक कविने आपकी योग्य स्तुति की है यह इस प्रकार है ।

दीपक ज्यां उद्योत कारी जैन धर्म बीच दीपे
शास्त्र अनेक जान ओ ध्यान विधि नीकी है।
ताराचंद्र सूरि गादीतें तपस्या तेज दीपे
शत्रुनपै सिंह सम सज्जन उपकारी है ॥
काव्य कोश न्याय व्याकरणादिकके समुद्र
अच्छे है नि कलंक धर्म बुद्धि अपारी है।
केवल मुनिंद्रचंद्र भक्ति लय लीनकारी
कविरर ! दु खहारी महिमा अपारी है ॥ १ ॥
निर्मल परिणाम सचे निर्वाहक नेकीके
सबकी भलाइ स्याद्वाद चित चायो है।
जानकार जिनमतके ओ प्ररूपक सचे
दिलके ढलेल रस शांत मन छायो है ॥
पूज्य ताराचंद्र सूरिपदके उद्योत कारी
शीतल स्वभाव वचनसिद्धि कहाये है।
इष्टके अखण्ड श्री केवलचन्द्रजी मुनीन्द्र
बडे २ कामोंमें सवाई फते पाये है ॥ २ ॥
धन्य ! शिष्य बालचंद्र विद्यामें बडे प्रवीण
धर्मधुरंधर गुणिजन मन भाये है।
अमृत जबान पंडिताई चतुराई चित्त
श्रोतृजन समूहको बोध अति लगाये है ॥

केवल गणिके शिष्य दोनों धर्मके स्वरूप
दृगनतें देखते दिल प्रफुल्लाये है ।
वल्लभ प्रभाकर तनु सुन्दर अनंग ज्यों
माणककी सुशील चिमनको सुहाई है ॥ २ ॥

(कवि चिमनलाल.)

इस कविनेंभी आपके गुण कथनमें स्वल्पभी अत्युक्ति नहीं की ।

आपकी जीवनीसें संबंध रखने वाले कई कागद-पत्र मारवाडमें रहजातेके कारण (जल्दीवश) सें यहां वे प्रकाशित नहीं करसका, अतएव किसी समय अवसर मिला तो अवश्य विस्तार पूर्वक जीवन चरित्र लिखनेका साहस करूंगा, हालमें इतना लिखकर विश्रान्ति लेना उचित समझता हूं ।

खामगाव (वराड) ता. २३-११-१९११ ई. } जैनधर्माऽभ्युदय चिन्तक, वालचंन्द्र मुनि ।

श्रीमद् यति बालचन्द्रजी

मंगलाचरण

नमः श्री वीतरागाय वीत दोषाय चार्हते ।
शोक संताप संतप्त जन समीणनंदवे ॥

तोटक वृत

जय आदिजिनेश्वर शोकहरा, जय शांति जिनेश्वर शांतिकरा;
जय नेमिजिनेंद्र कृपाउनिधि, जय पार्श्व जिनेंद्र विख्यात अति
जय वीर प्रभु त्रिशलासुतजी, जस नामथकी जय थाय हर्जी;
गुरु गौतम मंगलकारि स्मरो, सहु शोक निवारि अशोक धरो.
वली जंबु मुनिश्वर शील शुचि, गुण गान करो तस धारि रुचि;
करि मंगल ए त्रिविधी निरतु, मृतरोदन रोधन बोध रचुं.

विवेक सर्व सौख्यानां मूलं शास्त्रे निरूपितं ।
ततो विवेक मार्गेण वर्तनीयं विचक्षणैः ॥

अर्थ –सर्व शास्त्रोंमें आचार विचार (विवेक) यही समस्त सुखका मूल कहलाताहै वास्ते विचक्षण पुरुषोंनें विवेक मार्गसेही चलना चाहिये (जिससे सब सुख मिले.)

अविवेक समुत्पन्ना या या सन्तीह व्यापदः ।
हास्यास्पद परंपरा ता परिहार्या विवेकिभिः

अविवेक (अज्ञान) पनेसे जो जो खराव चाल अपनेमें वर्त्ततेहैं और उन चालोंसे परधर्मी (अंग्रेज वगैरः) अपनी हंसी करतेहैं ऐसी खराव चालोंको विवेकी पुरुषोंको दूरसे ही त्याग करनी चाहिये ।

मृत्युके बाद नुकता करनेका हानिकारक रिवाज.

पापाधिक्यपरा रूढि त्यक्त्वा पुण्यविवृद्धिदा ।
कुर्वंतु सज्जना सर्वे येन सौख्यमवाप्नुयात् ॥१॥

अर्थ-जिसमें पाप विशेष हो ऐसी दुष्ट रूढिको निकाल कर, जिससे सुख (मोक्ष) प्राप्त हो ऐसी पुण्यको बढानेवाली रूढिका सर्व सज्जनगणो प्रचार करो

आधुनिक समयमें कितनेक प्रचलित हानिकारक रिवाज हैं कि जिनसे अपनी जैन कौमकी प्राचीन जाहोजलाली बिलकुल नष्ट होगई है, सामाजिक स्थिति शोचनीय होती जाती है और अवनतिके बीज उगने लगे हैं-उन रिवाजोंमेंसे मृत्यु बाद नुक्ताभी एक है

यह रिवाज जैन कौममें कबसे शुरू हुआ है, इसका विचार करो इस बाबद कोई शास्त्रोक्त आधार नहीं निकलता, वैसी श्रावक लोग चर्चा करते हैं कि इसका प्रमाण किसीभी ग्रंथमें मिलता नहीं, परन्तु यह शास्त्र विरुद्ध है. इसका सम्बन्ध

पुरावा देनेमें आता है, कि जिसका अस्वीकार किसीसे होता नहीं ।

सिद्धांतकार श्रीसय्यभवसूरि श्रीदशवैकालिक सूत्रमें साधुने कैसी भाषा बोलना उसका ज्ञान करानेके वास्ते उस सूत्रके सातमें अध्ययनकी ३६ मी गाथामें इस मुजब कहा है ।

तहेव संखडि नच्चा, किच्चं कज्जंति नोवए ।

श्री हरिभद्रसूरिकृत वृत्तिः—

तथैव संखडि ज्ञात्वा संखड्यन्ते प्राणिनामायूंषि यस्यां प्रकरण क्रियायां सा संखडी । तां ज्ञात्वा करणीयेति पित्रादि निमित्तं कृत्यै वेपोति नो वदेत् । मिथ्यात्वोपबृंहण दोषात् ॥

मुनिको कैसी भाषा बोलना उसका यहांपर प्रस्तुत प्रसंग है, उस प्रसंगमें मूल सूत्रकारने पहिले दूसरी बात कही और बादमें वे कहतेहैं कि, संखडिन समझ कर वह करने योग्य है ऐसा मुनि नहीं बोले " इसका टीकाकार स्पष्टार्थ इस मुजब करते हैं कि वैसेहि संखडिन समझकर (प्राणीयों कि मनुष्यकी जो क्रिया करनेमें खंडित होते हैं उसका नाम संखडि अर्थात् नुक्ता) पित्रादिके निमित्तपर करनेके योग्य है ऐसा मुनि नहीं बोलते कारण कि ऐसा कहनेमें मिथ्यात्वरूपी वृद्धि होनेका दोष लगता है ।

सिद्धांतकार मुनियोंको, नुकता या मृतभोजन करने योग्य

है उसमें प्रसग बताते है कि पित्रादिके निमित्त अर्थात् माता, पिता, पितामहादि, वृद्ध मृत्यु पावें तो पीछेसे नुकता करनेके सम्बन्धमें मुनिको पूछकर या विना पूछे करना योग्य है, ऐसा नहीं कहते क्यों नहीं कहते ? उसके खुलासेमें मुनिराजको त्रिविध २ प्राणातिपातादिका त्याग है वो हेतु वताते तो कभीसे श्रावकभाई उसमेंसे निकलनेका रास्ता तलाश करलेते, मुनिराजको तो त्रिविध २ हिंसादिके पचखान होनेसे वो करने योग्य ह ऐसा नहीं कहते, परन्तु अपने श्रावकको त्रिविध२का त्याग नहीं, उससे अपनको करनेमें या कहनेमे कुछ अनजान नहीं परन्तु धुरन्धर युगप्रधान १४४४ ग्रन्थोंके बनानेवाले जैन शासनके स्तभभूत श्रीमान् हरिभद्रसूरि महाराज कहते हैं कि–मिथ्यात्वकी वृद्धि हो उस बाबद मुनि ऐसा नहीं कहते अब मिथ्यात्वका त्याग तो मुनि और श्रावक दोनोंको है–इसमें श्रावक साधुसें अलग हो जावे ऐसा नहीं, जितनी आवश्यकता मुनिराजको मिथ्यात्वसे बचनेकी है उतनी श्रावककोभी है इसमें न्यूनाधिक नहीं–इससे मुनिराज जब मिथ्यात्वका हेतु समझकर उसको कर्तव्य कहनहीं सके तब श्रावकभी उसको कर्तव्य नहीं कहसके, मानसके वैसेही आचरण होतेहे ।

इस परसे इतना तो सिद्ध होताहै कि यह रिवाज परमपरा या बहुत वर्षोसें जारी हुआ मालूम नहीं देता–परन्तु मध्यमें जब अन्न घी वगैर॰ रसादि पदार्थ किसी समय सस्ते हुएहोंगे

उस समय बिलकुल रंज न हो ऐसी वृद्ध मृत्युके समय उसके बहुतसे सगेसोई इकठे होनेसे अन्य दर्शीके देखादेखीके वास्ते जिस किसीकी इच्छा हुई होगी ऐसे लोगोंने नुकता (जीमन) किया होगा, उसके बाद दिनोदिन वृद्धि पाकर यह रिवाज ऐसी ऊंडी जडसे जम गया कि जिसको निकालनेमें अब बडी भारी मिहनत उठानी पडती है, और उस जडको देखकर मुग्ध होनेवाले लोग जब वह जरा खिसी कि फिर उसको मजबूत करनेको तय्यार होते हैं—इसी कारण यह रिवाज अभी प्रचलित होगया है।

यह नुक्ता (जीमनवार) करनेकी रीति सब दूर एकशांह प्रचलित है ऐसा नहीं परन्तु कितनेक स्थलपर फलाने दिनको करनेका और कितनेक स्थलपर वर्ष २ में या जब दिलमें आवे तब इच्छा मुजब करनेका रिवाज है।

यह रिवाज निर्दयता, निःशूकता, निर्लज्जता, निर्धनता और निंद्यता, अर्पन करता है वोह नीचेकी हकीकत परसें ज्ञात होगा—

निर्दयता—कितनेक मृत्युके जीमनवारको शकुन समझते हैं बहुत दिनोंसे बीमारीके आराम हुएलेके वास्ते ऐसे जीमनवारका दिन देखते हैं, मृत्युके वक्त वृद्ध मृत्युमें लोग विरुद्धका विचार न करते दिलासेके बदलेमे तीन दिनका स्मशानमेंही

नहीं करलेते हैं, और कितनेक भोजनभट्ट तो ऐसी मृत्युका रस्ताही देखते है, जहां ऐसी मृत्यु हुई कि बहुत खुशी होते हैं खुशी होते हैं इतनाही नहीं पर ऐसा मौका किसी महिनेमें न मिले तो यह महिना तो खाली गया ! इस महिनेमें तो कुछ मालताल उडानेको न मिला ! ऐसा विचारते हैं कहो इससे ज्यादा और कोनसी निर्दयता होती है ? !

निःसूक्ता-देवपूजादि धर्म कृत्योंको त्यागकर-सूतकसें सूसकी बनकर भोजन करनेमें दुगच्छा करते नहीं

निर्लज्जता-जब कुटुम्बमें कोई मृत्यु होती है तब सगेसोइयोंको चिट्ठी लिखकर नुकतेके दिन बुलाते हैं और शोकको देशवटा देकर आनन्दसे नुक्ता करते है-थोडे दिनोंके पहिले स्वर्गस्थके स्नेही रुदन शोक करतेथे वेही आज लो लड्डू, लो जलेबी, कहते है और क्षणिक सुख तथा मोटाइके वास्ते हजारों रुपियेकी धूलधानी करडालते हैं कोई बाळ अथवा युवा मृत्युमेंभी ऐसा खर्च करनेमें आता है और उस समय युवा व वृद्ध पुरुष और स्त्रियां खानेको आती हैं-एक तर्फ मृत्युवालेके यहां बाहिरके लोग आनेसे उसके घरवालोंका रजकेमारे हृदय फट रहाहै, दूसरी तर्फ मिष्टान्न उडा रहे हैं यह कितना शरमामाट आने लायक दीखता है-धिक्कारहै ऐसे मृत्युपाये हुए के पिछे मिष्टान्न उडानेवाले निर्लज्जोंको !

निर्धनता–गांवके अग्रेसर सेठ लोगोंकी खेदकारीके वास्ते जबलग इस रिवाजको देशवटा देनेमें न आवेगा वहांतक द्रव्यस्थितिवाले या विना द्रव्य संपत्तिवाले, होंशवाले या लगन गिननेवाले, सुखसें आजीविका चलानेवाले हो या आजीविका वाले दुःखदायकोंके वास्ते यह रिवाज एक फर्ज रूप होता है उससे असंपत्तिवान संपत्तिवानकी देखा देखीसे इज्जत रखनेके वास्ते अज्ञानके गाढ अन्धकारमें पडकर नुकता करनेमें पीछे नहीं पड़ते, पैसे न हो तो घरबार या खेतीवाड़ी जो कुछ मिलकत हो वो गिरवी रखते हैं या वेचडालते हैं अगर ऐसा नहीं तो कुटुम्बियोंसे पैसे उधार लेकर या बहुत व्याजपर कर्ज लेकर अपने यहां आये हुवे औसरको पार पाड़देते हैं, ऐसी वड़ाई पीछेसे बिलकुल साधन रहित होजाती है. थोड़ी मुद्दतके बाद मांगने वाले जब पैसे लेनेको आते हैं, और विलम्ब होनेसें खराव शब्द कहते हैं तब उसको घरआदि वस्तुए वेचनी पड़ती हैं. वह न हो तो घर आदि मांगने वालेको देना पड़ताहै. वहभी न हो तो वख्तपर कारागृहकी मुसाफिरी करनेको जाना पड़ताहै, इस तरह उसका बिलकुल नाश हो जाताहै और बाल बच्चे भूंखे मरने लगते हैं, तथा जनसमाजमें औगुनका पात्र होता है.

निंद्यता–कानफरन्सोंमें, मंडलोंमें, सभाओंमें बडे बड़े विद्यमान लोग भाषण द्वारा और मुनिराज व्याख्यान द्वारा

इस घोर कृत्यका तिरस्कार करते है–

मृतभोजन– [नुक्ते] बाबद इतनी सामान्य हकीकत कहनेमें आई है अब उसपर अधिक विवेचन किया जाता है–

मृत्युके बाद–जीमनवार [नातीभोजन] करना या उसमें खानेको जाना यह सुज्ञ जनोंका योग्य है ?

यह सवाल सिर्फ जैन कामके लियेही है, ऐसा नही परन्तु सर्व जनसमूहको लागू होना है ?

इस सवालका निर्णय करनेमें प्रथम तो लाभालाभका विचार करना चाहिये, ऐसा करनेसे लाभका कोई एकभी अंश ज्ञात नही होता, परन्तु नुकसान अत्यन्त मालूम होताहै ! इसके बारेम जितना वर्णन किया जावे उतनाही थोडा है !

मनुष्य और पशुमें फर्क इतनाही है कि मनुष्यमें ज्ञानहै पशुमें ज्ञान नही, इससे मनुष्य विचार पूर्वक धर्म अर्थ और काम यह त्रिवर्गको साध सक्ताहै और पशुमें ज्ञानका अभाव होनेसे उसका इस साधनपर विचारही नही होता, अब यह त्रिवर्ग [धर्म, अर्थ और काम] कितने दर्जे उपयोगी और उसके साधनेमें यह रिवाज [मृतभोजन] कितना विघ्नभूत होता है उसका यत् किंचित् विचार करना अप्रासंगिक असार्थक न होगा ।

धर्मकी मुख्यता और त्रिवर्ग साधनकी कितनी अगत्य-ताहै उस बाबद सोमप्रभाचार्य सिन्दूरप्रकरनमें जनाते हैं कि।

त्रिवर्ग संसाधनमन्तरेण, पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति, नतंविनायद् भवतोर्थकामौ॥

"(धर्म, अर्थ और कामरूप) तीन वर्गके साधन बिना मनुष्यका आयुष्य पशुके आयुष्य सम निष्फल है. इन तीनोंके बाबद धर्मको श्रेष्ट कहते हैं कारण कि उस (धर्म) विना अर्थ और काम नहीं हो सक्ता।

धर्मः-इस शब्दका अर्थ बहुत विस्तारवाला है तोभी "यतो अभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः" इतनाही नहीं, अभ्युदय और मोक्षकी प्राप्ती हो वह धर्मबिन्दु ग्रंथकी टीकामें कहाहै, धर्मका मूल दयाहै. शोककारक बनावके समूहमें मृत्यु समान दूसरा कोई बनाव शोकप्रद नहीं, एक तो मनुष्यका मनुष्य जाता और फिर जहां शोकाग्निमें डूबे उसके स्नेहीयों की छाती फाटती है, रुदन करतेहैं, उनका हृदय भेदक विलाप सुनके पत्थर सरीखा हृदय पिघले विना नहीं रहता उस समय औसारीमें बैठकर मिष्टान्न वगैरः उडाना यह कितनी बडी दयाकी लगनी कहलाती है ! मृत्युके बाद जीमनेको जाना यह मार्गानुसरीके साधारण गुणोंको मलीन करता है, कारण कि खानेके लोभी शोकजनक और शरमसे भरे हुए मृत्युके बादका जीमनवार

खानेको जाते हैं उनमें दयालु लज्जालु इन्द्रियोंको वश करने वाले आदि मार्गानुसारीके गुण कहा रहे? वैसेही हालके मचलित निन्दनीय रिवाज देखकर मृत्युके बाद (जीमनवार-नुकता) मार्गानुसारीके निन्दनीय काममें न प्रवर्तनेके गुण कहां रहे? सर्व प्रियजनो! साधक धनका निकम्मा व्यय होता है इसमें मार्गानुसारीयोंकी दीर्घ दृष्टि कहा रहो? इसका प्रमाण योगशास्त्रमें बताये हुए मार्गानुसारी गुणोंमसे कितनेक नाश होते है, तो फिर मोक्ष रूपी वृक्षका मूल जो सम्यक्त्व उसका उसमें सम्भवही कहासे हो! और जब सम्यक्त्व न हो तब मोक्षके साधनभूत ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नोका अभाव स्वय सिद्धहै तो फिर धर्म कहा रहा? वास्ते धर्मके विघ्नभूत ऐसे रिवाजाका नाश करनेको, सूरि जनोंने तन मन और धनसे तत्पर रहना इसीहीमें श्रेयहै-ज्ञातिका उदय है और आगे क्रम २ से धर्मकी साधनाको पायगा।

अर्थ और कामका विनाश इन हानिकारक रिवाजासे होताहै यह जाहिर है-कारण कि अर्थ यानि द्रव्य जो कि खर्चनेसे विनाश पाताहै और पैदा करनेके साधन नाश पातेहैं वैसेही कामका इस कार्य्यसे विनाश होताहै कारण कि काम जो सासारिक सुख भोग उसका कारण अर्थ है अर्थसेही उसकी सिद्धि हो सक्ती है अर्थके विनाशसे कामका विनाश होताहै।

इस मुजब तीनो वर्गोंका विनाश होनेसे प्राणी महा मिह-नतसे मिला हुआ मनुष्यभव हार जाते हैं, वास्ते जिसमें किसी तरहके लाभका कारण नहीं ऐसे रिवाजोंको देखनेसे अपन कैसी अधम स्थितिमें आ पड़ेहैं, अपने खुदको तथा अपने बान्धवोंको कितने दुःख उठाने पड़ते हैं, अपन आंखोसे देखते हैं तोभी मिथ्याभिमान रूपी गाढ अंधकारमय भइ हुई अपनी आंख खुलती नहीं सो कितना शोककारक मङ्कारहै ? और हमेशाः व्योपारमें नफे टोटेका विचार करने वाले व्योपारी पूत्रों ! इस व्योपारमें अपनेको कितना नुकसानहै और कितना नफाहै यह क्यों देखते नही ! लोगोंमें कहनावतहै कि, आगिल बुद्धि वनिया—सो क्या अपनी दिव्य दृष्टि बिलकुल नष्ट होगई है ? देश और कालका विचार कहां गया ? अपने खुदके लडकेको उच्च शिक्षा देनेके लिये तो पैसे नही मिलते परन्तु मृत्युके बाद खर्चनेके वास्ते तो पैसे मिलेही मिले, जिसकी बिमारीमें दवा वगैरः में खर्चनेके वास्ते २०, २५ रुपये चाहिये वह तो खर्चनेमें आंखे ऊंडी बैठती हैं परन्तु मृत्युके बाद तो ५०० या ७०० या (१,०००)हजारोंको उमंगके साथ खर्चकर नुकता करते हो ओ हो यह तो कितनी बडी अज्ञानता है ! ! !

इस उपरांत धर्मादा जीमनेवाले अपन खुद होते हैं कारण कि जिसके यहां मृत्यु हो उसके पास नुकता करनेका बिलकुल साधन न हो तोभी अपने सगेसोई मिजवानसे लेकर बने उस तरह

यह कार्य करनेकी आवश्यकता वतलाते ह इससे जव वह साधनहीन पैसा मिलानेको हरएक तरहसे निष्फल होता है तव उसे याचकपना करनेका मौका आता है और वाहिरगाम जाकर लोगोंके सामने अपना दुःख रोके महान परिश्रमसे धर्मादा तरीके पैसे निकलवाता है, इस मुजब पैसे लाकर वह नुकता करता है, और उसको खानेवाले अपन होते हैं यह प्रकार अपन को कितना शर्माने लायक है? धर्मादा खानेको जाना इससे और क्या ज्यादा हलका है! श्रेष्ठ ज्ञाती जैन कोमके वीरपुत्रो! आपकी विवेक बुद्धि कहां गई? उसका थोडा वहुत सद्उपयोग करो! और ऐसे हानिकारक रिवाजोंको जडमूलसे नाश करनेको अपने पवित्र सनातन धर्मको मान देते सीखो! इसीसे आपका श्रेय होगा और जैन कोमका श्रेय करनेको साधनभूत हो सकोगे।

अव एक सामान्य स्थितिका मनुष्य कि जिसपर उसके सारे कुटुम्बका आधार होता है, जव वह मृत्यु पाता है तव उसकी विधवा अथवा छोकरोंको उसका नुकता करनेमें कैसा दुःख उठाना पडता होगा उसका ख्याल नीचेकी हकीकतसे ज्ञात होगा?

जव कुटुम्बमें इस प्रकारसे वेढव वात हो गई हो तो पांच सात दिन वाद मृत्युवालेके सगेसम्बन्धी उसका नुकता करने की वात चलाते हैं और घरमें उसकी विधवा स्त्री तो उसका

रुदन कियाही करती है उस वक्तमें बिलकुल मरजी न हो तोभी सगे सम्बन्धी उसको जबरदस्तीसें कहते हैं कि मृत्यु पायाहुआ मनुष्य विना नुकते रहता है, यह कितना हलकापन है, वगैरः शब्द कहकर उसकी विना मरजीसेही, यदि उसके पास पैसा न होतो घरवार या मिलकत बिकवाके नुकता करवाते हैं, तीन दिन मिष्टान्न उड़ाकर सगे सम्बन्धी तो अपने२ घर जाते हैं, तब विधवा बाईको अपना तथा अपने बालबच्चोंका गुजारा किस प्रकार चलाना तथा बच्चोंको विद्या किस तरह पढानी यह मुशकिल पड़जाता है, साधन रहित उस बाईको मजूरी करनी पड़ती है उस वक्त गुजरान जितने पैसे मिलते हैं, वक्तपर नहीं मिले तो उसके निराधार बच्चे भूंखे रहते हैं, उसके सगोंको तो उसकी कुछभी फिकर होतीही नहीं, उनको तो तीन दिन तक माल पानी उड़ानाथा वहां तक सिखावन देनेको आतेथे और इस वक्त उसके सामने तक नहीं देखते, इस दशामें उस विधवा स्त्रीको आना पड़ता है, यह कितना बड़ा जुल्म कहलाता है ?!

इस बाबद नीचेकी गुजराती कविता ज्यादा समझमें आवेगा इससे हरेक बान्धवोंको वह बांचनेकी प्रार्थना है।

दाडा (नुकता) नां दुखडां बेनी कहुं केटलां,
एज दुखे हुं रही रखडती रोज जो,

* * * * *

(जैन ता. ४-१०-८)

मृत्युके बाद नुकता जैनोके वास्ते निषेध है इतनाही नहीं परन्तु अन्य दर्शनीय जो मृत्युके बाद प्रेतावस्थाको मानते हैं और प्रेतका श्राद्ध करनेसे उद्धार हो ऐसा मानते हैं उनके शास्त्रोंमेभी मृत्युके पीछे ज्ञातिभोजन करने करानेकी खास विधि नहीं है मनुस्मृतिर्मे कहाहै कि–

द्वौ देवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत् सुसमृद्धोपि न प्रसेज्जेत विस्तरे ॥१॥
सत्क्रियां देशकालौच शौच ब्राह्मणसपद ।
पचैतान् विस्तरोहन्ति तस्मान्ने हेत विस्तरम् ॥२॥
न श्राद्धे भोजयन्मित्र धनै कार्योऽस्य संग्रह ।
नारि न मित्र यविद्या त्त श्राद्धे भोजयेद द्विजम् ॥३॥
य सगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानव ।
सस्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमा ॥४॥

अच्छी समृद्धिवाला हो उसको देवनिमित्त दो और पितृ कार्यमें ३ ब्राह्मण जिमाना अथवा ऊपर कहेहुवे दोनो निमित्तमें एक२ ब्राह्मण जिमाना, विस्तारमें अशक्त होना चाहिये (अर्थात् ब्रह्मभोजनको इससे ज्यादा बढाना नहीं),

(मृत्युके पीछे) सत् क्रिया, देश, काल, शौच और ब्राह्मणकी संपदा, इन पांच वस्तुका (ब्रह्मभोजनके) विस्तारसे नाश होता है, तथा उसमें विस्तारको नहीं इच्छना चाहिये. (अर्थात् जो अधिकाधिक ब्राह्मणोंको जिमानेकी खटपटमें पड़े तो वि- धि मुजब मरनेहारेकी उत्तरक्रिया हो नहीं शक्ती, इससे सत- क्रियाका नाश होता है. जितनी स्वच्छ जगा चाहिये उतनी नहीं मिलती, वक्तपर खराबभी नही मिलती और शास्त्रोक्त चोखाई नहीं रह सक्ती इत्यादि.) २

श्राद्धमें मित्रको न जिमाना चाहिये, धनादिक तथा दूसरे उपायो द्वारा उसकी मित्रता संपादन कीजियें. जो ब्राह्मण वैरीके मुताबिक या मित्रकी तरह न मालूम हो उसी उदासीन वृत्तिवंत- को श्राद्धमें जिमाना (जब श्राद्धमें भोजनका निषेध करनेमें आता है तब ज्ञातिका निषेध तो स्वयमेव सम्भावित है.) ३

शास्त्रके अज्ञानसे श्राद्धभोजन कराके जो मनुष्य मित्रता सम्पादन करता है वह श्राद्ध निमित्तपर मित्र करनेवाळा अधम मनुष्य स्वर्गलोकसें नीचे पडता है) ४

श्राद्धमें जीमनेसे ब्राह्मणकोभी प्रायश्चित लेना पड़ता है तभी वह शुद्ध होता है. हारितमुनिने कहाहै कि–

चांद्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके ।
एका हस्तु पुराणेपु प्राजपत्यं विधियते ।।

" मरनेवालेके पीछे नव श्राद्ध (११ दिन तकके श्राद्ध) जिमनेवालोंको चान्द्रायण व्रत करना, मिश्रक (मासिक श्राद्ध) जिमनेवालोंको प्राजापत्य व्रत करना, और पुराण (साल पिछेका श्राद्ध) जिमनेवालोंको अर्धप्राजापत्य व्रत करना "

श्राद्ध करनेसे प्रेतका उद्धार होता है ऐसा माननेवाले अन्य दर्शनीयोंको श्राद्ध जीमनेमें दोष बहुत करना पडता है, कारण कि श्राद्ध यह मरनेवालेके पीछे करनेमें आता है और जो श्राद्ध जीमनेवालोंको प्रायश्चित लेना पडता है और प्रायश्चित तो हमेशा दोषवाली होता है इससे मरनेवालेके पीछे जीमनवार करना यह निषिद्ध है-इसपरसे सिवाय अन्य दर्शनीय मृत्युके बाद भूरता नहीं, इससे तथा ऐसे प्रागम जीमनको जाना नहीं ऐसी प्रतिज्ञा करके मालूम होते हैं—परन्तु उनमें गल्ती अन्दर न होता यह मालूम होता है कि उनमें श्राद्ध करना यह शास्त्रोक्त ऐसा मानते हैं परन्तु अपने तो प्रथमसे पहिले ही मानते हैं कि मृत्यु पामाहुआ मनुष्य, देहका त्याग करके दूसरी गतिमें जन्म धारण करता है इससे पीछे कुछ भी क्रिया पुण्यदान करना यह उसका बिलकुल लागती नहीं होता इससे यह न्याय जैनदर्शनके अनेक दाखला पूर्वक बना है तो यह हानिकारक रिवाज अपनोंमेंसे निकालनेको शक्तिमान हो सकते हैं।

मृत्यु पीछे नुकता करनेका रिवाज कोई २ ठिकाने रूपान्तर भया हुवा देखनेमें आता है, मृत्युके बाद उसका कारज तुरत न करे तो बादमें उस निमित्तसें संघ या और कोई नामसे जीमनवार करनेमें आताहै; परन्तु दीर्घ दृष्टिसे विचार करनेसें मरनेहारेके पीछे संघ या और कोई नामसे जीमन किरना यहभी निषेधही है, साधर्मि भाईयोंको भोजन खिलाना हो तो दूसरे कई प्रसंग मिलते हैं, परन्तु जहांपर मृत्यु और जीमन इन दोनों शब्दोकी घटना होही नही सक्ती वहां मृत्युके पीछे भोजन कैसा शोभे ? वास्ते मृत्यु पीछे संघ या नौकारसीके नामसे भोजन न करते उसमें जितने रुपै खर्च हो उतने रुपै दुःखीपडे हुवे स्थितिके जातिबन्धु या धर्मबन्धुकी सहायतामें लगाकर उच्च स्थिति पर लानेके काममें तथा निर्धनताके कारण विद्योन्नति करनेमें अटके हुअे बालको विद्योन्नति करानेके काममें खर्चकर उसका सद उपयोग करनेमें आवे तो जैन कोम जो अधम स्थितिको पहुंचती जाती है उससे बचे ' और जैन कोमको लक्ष्मीने वरा है, यह प्राचीन कहनावत अज्ञान रूपीगाढ निद्रा वश नाश पाई है, वह फिर जन्म धारन करेगी ।

शास्त्रविरुद्ध और सांसारिक अधम स्थितिका मूल बहुत समयसे जड जमाकर बैठनेवाला मृत्युके बाद जीमनवार करना ऐसे दुष्ट रिवाजोंको जडमूलसे नाश करनेमें अपना श्रेय है यह

अपन अव्वलही समझ चुके है सो जिसकेलिये धनवानका धन अयोग रीतिसे खरचाताहै, और गरीब अधम स्थितिको पाते हैं, ऐसे रिवाजोंकोही बन्ध करनेसे परोपकार मिलता है इस बातमें मै शामिल हु तथा मिलताहु ऐसा कहकर अपने आगेवानोको बैठा रहना इसमें कुच्छ फायदा न होगा इसलिये तमाम आगेवानोंको इकठे करके समझवान ज्ञानवान अग्रेसरोंको चाहिये कि वे दूसराको समझावे और ऐसा सक्त ठहराव करे कि जिसके यहा मृत्यु हो तो उसके (मरनेहारेके) पीछे बिलकुल नुकता करना नहीं, वैसेही उसके साथमें उस ठहरावका उल्लंघन करनेवाला पेसावालाहो कि गरीब उसकों ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि दूसरे उल्लंघन न करे और मजबूत जड जमजाय, और यह नुकता करना आगेवान लोगोंके यहासेही बन्ध हो तो कियाहुआ ठहराव जल्दही अमलमें आवे. इस लिये इस विषयमें आगेवान लोग तन मन और धनसे परिश्रम करे तो इस दुष्ट रिवाजको देशवटा देना कोइ मुशकिल नही है ।

इस दुष्ट रिवाजको बन्ध करने बाबद सुधरेहुवे विद्यमान जैन बाधवों जो इस दुष्ट रिवाजके विरुद्ध है वो अपनी शक्ति व विद्वत्ताका उपयोग कर भाषन अथवा अन्य कोइ उपायसे इससे कितना नुकसान है वगैरः कुल हकीकत विस्तारपूर्वक आगेवानोके दिलमें जमानेका प्रयत्न करे तो उससे विपेश अ-

सर होनेका संभव है ।

विशेष करके यह रिवाज अटकानेके संबंधमें अपने मुनिराजोंको खास आग्रहपूर्वक विनंति करनेकी जरूरत है वह इसी लिये है कि उनके उपदेशसे अनुसार अपने कर्तव्यको करना सीखेंगे.

अपनी जैन कोममें बहोतसे सी पुरुष ज्ञानसे नहीं परन्तु श्रद्धासे प्रेमके साथ मानते हैं । वह उपदेश मुनिमहाराज एक शहरमें मृत्युके बाद जीमनवार बन्ध करनेका उपदेश देंगे तो पहिले तो कितनेक (श्रावक) आगेवान भिडकेंगे कि यह क्या मुनिराज ऐसा उपदेश देते है वगैरः कहकेसे निन्दा करेंगे. तोभी उनके मेम्बर आगेवान और समजते हुवे श्रावक उनका उपदेश ग्रहण करेंगे, और फिर दूसरी वक्त जब दूसरे मुनिराज ऐसाही उपदेश देकर समझावेंगे, तब आगेके मुनिराज की अवगणना करनेवाले आगेवानो समझेंगेके पहिले मुनिराज जो बात करगये वह सत्य ज्ञात होती है. अपनमें दूसरोंकी तरह उपदेश न माना इसमें भूलकी है, इसी तरह मुनिराजोंने जैन कोमकी दुःखदाई स्थिति अपने अन्तःकरनमें लाकर इस दुष्ट रिवाजसे गरीबोंके घरबार निकाले हैं, विधवाओंकी जीवनदोरी टूट जाती है, हृदयमें खेदित होतेवक्त लड्डु जलेबी पापड सेव चबा चब खाने वालोंकी बुद्धि मलिन होती है, पेटभरुओंके

कलेजा ठण्डे करने, ओर रोटीके साथ घीको पानीक मुआफिक करते है और अपनी निर्दयता वतातें हैं, शोकका वेश पहिनकर हर्षका जीमन जीमकर दयाजनक हास्यपात्र होकर मूर्खता वताते है। नुकता करनेवाले और खानेवाले धर्म की अज्ञानता वताते हैं, आर धर्मविरुद्ध अनाचार सहकर विद्वान् वर्ग में धर्मको हलका करते है। उस रिवाजको अटकानेका आप प्रयत्न करें, ओर उसके साथ इतनी सूचना करनेकी है कि एक शहरमें एक मुनिराज उनके रहनेके वक्तमें थोडा वहुत सुधारा करगये हों तो, उस सुधारा रूपी बीजको उनके पीछे आनेवाले मुनि-महाराज अपने उपदेशसे जल सींचा करें, तो जैनाचार विरुद्ध इस दुष्ट रिवाजसे जैन कौमको मुक्त करनेको वे शक्तिमान होंगे ओर तभी वे पूरे कर्तव्यनिष्ठ माने जावेंगे।

अतमें आगेवान, तथा विद्यमान जैनवन्धु मुनिमहाराजा, यह हानिकारक रिवाज वन्द करने में कर्तव्यपरायण होकर अपने कर्तव्यको पूरा करेंगे ऐसी आशासे इस लघुलेखकी समाप्ति करने में आती है। इत्यलम्, सुज्ञेषु किंवहुना।

श्री सघका दास

कस्तुरचन्द गादिया

मृत्युके पश्चात रोना पीटना।

हानिकारक रिवाज का निषेध

प्रियपाठको ! अपनी जैन कौम जो कि एक समय आचार और विचार दोनोंमें उन्नतिके उच्च शिखर पर चढ़ी हुईथी, वही जैन कौम अभी बहुत कुचाल, कुसंप, अज्ञान वगैरः राक्षसी शक्तियोंके नीचे दवाकर विगदा गई है। जिस जैन कौममें संस्कार शुद्ध व्योहार नीति वगैरः में एक समय शांति रखतेथे उस कौममें हाल हानिकारक आचरण दाखिल हुए हैं और बहुत गहरी जड जमाकर वैठे हैं। जिससे अपनी सामाजिक स्थिति विगडी हुई है, वैसाही व्योहारिक दृष्टिमें लोग अपनी निन्दा करते हैं. अपनी जैन कौममें फिलहाल जो हानिकारक रिवाज प्रचलित हैं उनमें से नीचेके मुख्य हैं–

१ कन्याविक्रय.
२ वाललग्न.
३ वृद्धविवाह.
४ एक स्त्रीकी हयातीमें दूसरी स्त्रीसे व्याह करनेका रिवाज.
५ लग्नादि प्रसंगमें वैश्याका नाच आतसवाजी छोडना और गालीगाना–
६ मृत्युके वाद जीमनवार (नुकता)
७ मृत्युके वक्त रोना पीटना.

८ फर्जियात खराब खर्च–

० देखादेखी सोबतसे हुताशनि (होली) आदि धर्म विरुद्ध पर्व तथा आचरण वगैर

ऐसे दुष्ट रिवाजोंसे, अपनी जैन कोमकी सामाजिक स्थिति बहोत शोचनीयहे ऐसा कहनेमें कदापि असत्य नहीं है अपनी सुनीति, सदाचार, धन वगैर धीरे २ नष्ट होता जाता है और अवनतिके घोर अन्धकारमे अपन पडते है ऐसे हानि-कारक रिवाजोंको नाबुद करनेका अपनी कोन्फ्रेन्स ६–६ वर्षोंसे ठहराव पास करती है, और उससे कुन्छ सुधारेकी आशा पेदा हुई है पर अभितक सभ्य जैनबंधुओ ! कृपालु ब्रिटिश राज्यके इन्साफी अमलके नीचे इस आर्य्यावर्त्तमें अपन लोग विद्या देवीके चरण सेवन करने लगे है इससे विद्या बढती है, सत्या-सत्य तथा सारासार मालुम होता है, विद्याके अभावमें इस समय भुतकालकी अपेक्षा अपनी स्थिति बहोत बिगडी हुई मालुम होती है, विद्वान आचार्य और साधु जो पुर्वकालमें थे वैसे आज नहीं है ? इससे ऐसा हुआ कि लोगोकी नित्य प्रति समय घटती चली और उससे अपनेमें अनेक कुरिवाज जारी होगये कि जिनकी शास्त्रोंमें साफ मनाहै ऐसा होना विद्याका अभाव कहा जावे नहीं तो क्या, कारण कि विद्या जो है सो मनुष्यको उत्तमोउत्तम गुण देती है पर अविद्या तो

उलटे रस्ते भयङ्कर मनुष्यको भ्रष्ट करती है. इसीसे जैन बांधव उलटे रस्ते चले और अन्यधर्मी लोगोंके देखे देखी उनके अनुसार कार्य करने लगे. एक समय ऐसाथा कि अपना सतेज अवलोकन कर अन्यधर्मी अनुकरण करतेथे. और आज ऐसा आया कि अपने जैनधर्मी बांधव अन्य धर्मियोंका अनुकरण करते हैं यह कितने अफसोसकी बातहै कि लोगोंकि. इतनी कुसमझ होनेका कारण क्या ! ! अपने अपने पांव होने परभी दूसरोंके पैरोंसे चलने लगे इसका मतलब क्या है? यही हैं कि विद्याका अभाव !

मान्यवरो ! अब उस समयके जानेका वक्त आया है, अविद्याने भागनेकी तक साधी है और वहम आदि अधकारके नाश होनेकी तय्यारी है. प्रथमकी विद्या, शक्ति और कीर्ति मिलाने का समय नजदीक आया है. इस लिये सुहृदय बान्धवो ! ऐसे सुसमयका लाभ लेनेके लिये एक मतसे उठो ! ऐसे एक नही परन्तु अनेक दुष्ट रीतियोंको नाबुद करनेके लिये निबन्ध लिखनेकी अत्यन्त आवश्यकता है इस लिये मै आशा रखता हुं कि मेरे स्वधर्मी भाइ इस विषयमें परिश्रम कर मुझे आभारी करें.

शोक, रुदन और छाती कूटना—ये तीन आर्त्त ध्यानवाली जैनोकी प्रवृतियां हैं—शोक यह मानसिक प्रवृतिहै—याने चिन्ता

करना इसका नाम शोक और शोकको अरती भी कहते हैं-यानि हरएक प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका सयोग और अप्रिय वस्तुका सयोग के लिये सताप करना इसका नाम शोक-

रुदन (रोना) ये शोक बताने वाली बहारकी चाचिन्ह बहती ह यानि चित्तके अंदर जो शोक पैदा हुआ उसको रुदन कहते है-क्रदन [रुदना] यह शोककी अत्यन्त अधिकता बताने के वास्ते अपने खुदके [शरीर] मस्तक, छाती, पेटको कूटने ह इसका नाम कायक प्रवृति याने कुटन है-

इस रीतिम तीनों शब्दोंकी व्याख्या करके अब उसका स्वरूप बनानेम आताहै-

स्वरूपाख्यान

शोक, रुदन (रोना) और कुट्टन (रुदना) यह कोइ वख्त अन्तःकरन भावसे होता है और कोई वक्त मात्र दूसरे लोगोंको रजित करनेको या खुदके अति स्नेहका ढग बताने वास्ते रूढी तरीकेसे होता है-जैसा कि पुत्रके मरने पर मा बाप, भरतारके मरनेपर उसकी स्त्री आदि अति स्नेही बहोत करके अन्तःकरणसे शोक रुदन आदि करते ह परन्तु थोडा स्नेह रखने वाले या अन्दरसे अभाव रखने वाले सगे सोई तथा मित्र वगैर बहोत करके रुदन करते ह यह

दूसरोंको अति स्नेह वतानेके लिये रूढी तरीकेसें करते हैं-

शोक करना, रोना कूटना, इसके शब्दार्थ और स्वरूप वताने के पीछे इन प्रवृतिओसे क्या क्या बुरे फल होते हैं इसका अव विचार कीजिये.

दोप विवेचन

आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, इन चार ध्यानों मेंसे आर्त्तध्यान मेंही शोक, रुदन, वगेरे प्रवृतियें रही हुई हैं ऐसा श्री चतुर्दश पुर्वधर भगवान श्री भद्रबाहु स्वामीजीने आवश्यक निर्युक्तिके ध्यान शतकमें कहा हुआ है.

तस्सय कंदणसोयण परिदेवणताडणाइं लिंगाइं, इठणिठविओगा विओग वेअण निमित्ताइ १५

अर्थ-यह ध्यानके आक्रंदन. शोक, रुदन, और कूटना ये लिंग हैं और यह लिंग इष्ट (अच्छी) वस्तुका वियोग अनिष्ट (खराव) वस्तुका संयोग और वेदना इन तीन हेतुओसें होता है.

और आर्त्तध्यान ये तिर्यंच गतिका मूल है. कहा है कि.

अट्टझाणं संसार वड्ढणं तिरिय गई मूलं.

याने आर्त्त ध्यानसे जीवको कुच्छ भी लाभ नहीं मिल-

ता नाहक कर्म बधाताहै और उससे दूसरे भवमें तिर्यगादि गति प्राप्त होती है इसालिये इस आर्त्त ध्यानको त्यागनेकी तजवीजमें सत्पुरुषोंको प्रयत्न करना चाहिये ऐसा शास्त्रकार कहते हैं

सव्वच्यमायमूल वज्जेयव्वे पयतेण १८

अर्थात् आर्त्त ध्यान सर्व दुःखोंका मूल है, इस लिये प्रयत्नसे उसका त्याग ही करना चाहिये

यहांतक विचार करनेसे मालूम होता है कि गई वस्तुका शोक करना यह मूर्खताके लक्षण हैं एक वक्त भोज राजाको कालिदास कविने कहाया कि-

गत न शोचामि कृत न मन्ये
खाद न्नगच्छामि हस न्न जल्पे
द्वाभ्या तृतीयो न भवामि राजन्
कि कारण भोज भवामि मूर्ख ॥

अर्थ-मैं गई वस्तुका शोक नहीं करता, कि हुई बातका विचार नहीं करता, खाते खाते नहीं चलता, हसते २ नहीं बोलता, दो मनुष्य एकान्तमें बात करते हो तो मैं तीसरा वहा शामिल नहीं होता, तो हे भोजराज! आपने मुझे मूर्ख कहकर

क्यों बुलाया ?

इसी मुताबिक मनुष्य के मरनेके बाद अतिशय रोना कूटना यहभी मूर्खताही है. अपने रोने कूटनेसे मराहुआ पीछा आता नहीं. प्राणीमात्र अपनी आयु पूर्ण होनेसें मरते हैं वैसेही अपनभी अपनी आयुके अंतसें मरेंगे. ऐसे दैवाधीन कार्यमें अतिशय रोना कूटना ये धीरजकी खामी बतलाते हैं और बीना धीरजके मनुष्यसे कोई बडा कार्य पार पडता नहीं यह तो सब कोई जानते हैं.

अतिशय रोने कूटनेसे क्या २ गेरफायदे हैं उसका वर्णन करनेके पहिले-मनुष्यके मरनेके अव्वल उसके सगे सोई और मित्रोंकी क्या फर्ज है यह बतानेकी आवश्यकता है-

अंतकाल समय सगे व स्नेहीयोंका धर्म अकस्मात मृत्युसे मनुष्य मात्र निरुपाय है (और इसी लिये शास्त्रकारोंने कहाभी है कि हिलते चलते हरएक काम करते मनुष्यको अपना चित्त बहोतही निर्मल रखना) इससे जब कोई मनुष्य थोडे दिनतक बीमारीयां भुगतकर मरता है कि उसवास्ते उसके सगे सोइ मित्र इत्यादिका कर्तव्य है कि उसकी दवा वगैरः करें और उसकी चाकरी करना चाहिये उसका ध्यान दुष्ट ध्यान तर्फ नही जाने देना. धर्मकथा वगैरः चालु रखकर उसका दिल निर्मल रखना, आडी टेडी बातें न करना

चाहिये कितनेक मूर्ख उसके दुःखका कुच्छ न करने रोना रडना शुरू करते हे और धैर्यको छोड देते हे इससे स्वर्गस्थका चित बिलकुल डोलता हुआ जाता है उसकी मनोवृति ससारी मार्गमे रमाती जाती है और उसका दुःख बढता जाता है बहोतसे तो स्वर्गस्थके मरनेके अव्वल उसको स्नान करवाते हैं इससे उसका जीव बहोत घबराता है स्नान कराते हैं इतनाही नही परन्तु प्राणीका जीव घटमें रहता हे और उसे एक गीली (लीपीहुई) जगामे सुलाते हे, इससे प्राण लेने वाले सबसे पहिले उसके स्नेही ही होते हे—सचमुच इनको उसके स्नेही नहीं परन्तु शत्रु समझना अगर उस प्राणीके शरीरमें थोडी बहोत शक्ति हो तो उसीवक्त उसके स्नेहीयाकी ऐसे घातकी कामके लिये लकडी लेकर मारे ऐसे स्नेही उसके हित चहाने वाले नहीं परन्तु दुश्मन हे सच्चे स्नेहीयोंका धर्म उससे अलगही होता है वो अव्वलसे आखिरतक उसको सद्गति होय ऐसा उपाय करते हे, दवा वगैरः से उसकी अच्छी तरह सेवा करते हे रोने पीटनेका शब्द उसके कानमे जाने नही देते, जबतक उसके बदनमे प्राण रहता है वहातक उसकी पथारी बदलने नही देते रोना वगैरः करके उसका दिल डोलडोल नही होने देते उलटे मिठवानीमे उसका चित निर्मल करते हे ऐसे जो हो वोही उसके स्नेही, बाकी दूसरे तो नाम मात्र स्नेही।

मरनेके बाद स्मशानमें जाते वक्त दिखाव.

वर्तमान समयमें मरे हुवे मनुष्यको स्मशानमे ले जाते वक्तका दिखाव सुधरी हुई प्रजाको वहोत हांसीपात्र होजाता है. घरमेंसे मुर्देको वहार निकाला कि उसीवक्त स्त्रीयें धडा धड कूटती हुई लम्बे अवाजसे रोती हैं और शरीरका किसी प्रकार भान न रखते सुसरे भरतारकी लाजको प्रदेश रख देती हैं. पुरुषभी रोने कूटनेमें कोइ बाकी रखते नही और वूम मारकर इस प्रकार जोरसे रोते हैं कि उत्तम विचार वाले सद्गृहस्थ उसका रोना देखकर हंसते हैं. कोई तो कमरको हाथ लगा कर ऐसे चिल्लाते हैं कि उस वक्त उसकी आकृति डरा-वनी होजाती है. वहोत वूम दे बाजारमें रोनेसे मरे हुए प्राणी का चित्त भंग होता है. जरासा ठंडा विचार करके देखा जावे तो मालुम होता है कि मरे हुअे मनुष्यके पीछे जाने वाला समुदाय यह एक शोकराजाकी वरात है. वरातमें मनुष्यको रीतिसर चलना चाहिये. गम्भीरता वताना चाहिये, उस वदलेमें उल्टे दूसरे लोग मशकरी करते हैं. दुनियाका स्वाभा-विक नियम है कि मुर्देको देखकर मनुष्यके दिलमें वैराग रस प्रगटे तो ऐसे मौकेपर लोगोंको ऐसी रीतसे वर्तना चा-हिये कि उसके वर्तावसे दूसरे लोगों के दिलमें वैराग्य पैदा हो.

वैसा न करते हालकी वक्तमें अलग वर्ताव होना है. कितनेक तो मात्र दूसरोंको वतानेके लिये ढोंग करके रोते हैं.

और कितनेक गावके अन्दर सब होते हैं वहातक रोते हैं आर दरवज्जे वहार गये कि सब चुप रहजाते हैं और मरजीमें आवे वैसी आडी टेढी बातें करते २ स्मशानमें पहोंचते हैं उनको शरम नहीं आती कि मरण जैसे गम्भीर अवसरपर आडी टेढी वातें करते हैं !

स्मशान

स्मशानमें पहोंचे कि शोक रंज तो सब दूर होजाता है ऐसा मालूम देता है–बाद वहा कोइ कुच्छ बात करता है कोई कुच्छ बात करता है कोई हंसी और गप्पे मारते हैं तो कोई खाने वगैर की बात करते हैं तो कोइ मौसरकी–इस मुताबिक स्मशानमें जुदी २ टोलीयें होकर अलग २ बैठते हैं कोई अन-जान मनुष्य आया तो वो ऐसाही धारता है कि यह लोग गम्मत करनेको यहा आये हैं अफसोस ! अफसोस है कि ये कैसी धिक्कारने योग्य रीति है—

मृत्युमें गप्पे क्या मारना चाहिये ? नहीं २ वह वक्त गम्भी-रताका है मगर उस वक्त हसी मश्करी करते हैं ऐसे मौकेपर बहोतही गम्भीरता रखना चाहिये और मरेहुयेका व अपनी जातिका मानभंग नहीं करना चाहिये–

मुर्देको जलाये बाद सब अलग २ बिखर जाते हैं और कोई कहां आगे जाकर बैठता है तो कोई और आगेवान सब

इसमेंसे उत्तमोत्तम पुरुष धर्ममेंही प्रवृत्त रहते हैं. उत्तम पुरुष भावि भाव विचारकर विकार पाते नही. मध्यम पुरुष अश्रुपात करके शोक दूर करते. हैं परन्तु अधम मनुष्य ही कूटते हैं.

ओमिति पंडिता कुर्युरश्रुपातंच मध्यमाः
अधमाश्च शिरोघातं शोके धर्म विवेकिनः

अर्थ-पंडित पुरुष शोकमें यह समझते हैं कि जो होनेका है सो तो होगाही, फिर चिन्ता करनेकी क्या जरूरत? मध्यम पुरुष अश्रुपात करते हैं और अधम पुरुष शिर कूटते हैं परन्तु विवेकी पुरुष शोकमें धर्मही करते हैं-

हालकी रूढी.

पाठक गण! यह तो अवश्यही कबूल करेंगे कि हिन्दुस्थान भरमें मालवी, मारवाड़ी, गुजराती स्त्रीअें जैसे अमर्य्यादा रीतिसे कूटती हैं और रोती हैं ऐसा आज दिनतक सुननेमें नहीं आया, जो कोई चालके वास्ते. अपने जैनबांधवोंको शर्म्म हो, और दूसरी सुधरी हुई कोमके आंखको आवरुका कलंक लगता हो तो मरनेके बाद रोने कूटनेका वहोत बुरा रिवाज है. कदाचित कोई ऐसा प्रश्न करे कि वहोत दिनोंसे जड़ मूल फैला कर धूल धानी करने वाला जैन प्रजामें कायम होकर उनको रुला २ कर दुःख देता है तो हां? हम कहेंगे के वो

रिवाज मरनेके पीछे रोना कूटना हमारेमें अवतक विद्यमान है.

अपनी कोमकी औरतों के रोने कूटनेका अलग ही रिवाज है कि मुर्दा घरसे बहार हुआ के जैसे ज्वालामुखी पर्वत धधकता २ वहार निकलता है उस प्रकार शिर और छाती कूटने लगती शरम लाज सब छोडके खुले बालो सहित कूटती हैं यदि रोना कूटना सिखाने वाली अपनी कोम की स्त्रीयों को शिक्षक कहीजावे तो भी कोई हर्ज नहीं.

जिस घरमें कोई मर जावे तो उस घरकी स्त्रीका तो मरण हुआ, क्यों कि दूसरी स्त्रीया रोनेके लिये आती हैं वो तो एकही दिन रोरो कर चली जाती परन्तु उस घरकी स्त्रीको नित्यही रोना पडता है, फिर वह घर कुलवान हो कि कुल हीन, घरकी स्त्रीके रोनेमें खामी पडे तो परस्त्रिया उसकी जातिमें निन्दा करती है कि इसको तो रोना कूटना याद नहीं ऐसी छाप लगाती है

अहा! रूढि कैसी बलवान है! यह रुढी ऐसी जमी है कि उसके सेवग अपने शरीरकी दरकार न रखते, परज्ञातिमें जो निन्दा होती है उससे डरते नही. (काठियावाडमें यह रीति इतनी प्रचलित ह कि औरतें बहुत कटती है। वो उपदेश द्वारा बन्द की जारही है) और परलोकमें होनेवाली अवग-तीका भजन यहासे हो। ? धिक्कार है एसी रूढीको।

रोना कूटना थोडे दिनतक नहीं चलता, बहोतसी जगे

महिनोंके महिने तक दिनमें २-४ चार २ वार रोना शुरू रहता है. सालभर तक उसके सगे सोई उसके यहां जाते आते हैं और वेचारे पर खर्चका भार डालते हैं, फिर चाहे वह धनवान हो कि धनहीन, पर सगेसोई तो उसके घरवालोंको रुला कूटाके खा पी कर चले जाते हैं, धन्य है रूढी !

वर्त्तमान कालमें रोने कूटनेकी चाल तो वहोत ही जरूर वान होगई है. जोर २ से रोना और हृदयको कूटते वक्त औरतोंको शोकसे ज्यादा यह विचार होता है कि ठीकतोरसे रोती कूटती हूं कि नहीं ? मुझे कोई मूर्ख तो न कहेगा. इस परसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि हालका रोना कूटना फक्त लोगोंको दिखानेके वास्ते ही.

मनुष्यपर रोने कूटनेमें भाग लेते हैं, कितनेक पुरुष मुर्दे पिछे जोरसे रोते चले जाते हैं और दूसरे लोग उनकी हँसी करते हैं, स्त्रियोंसे पुरुष ज्यादा ज्ञान रखते हैं और स्त्रियोंसे दृढ होनेपरभी ऐसे रिवाज चलाते हैं यह वहोत शरम की बात है.

है परमेश्वर ! वह दिन कब आवेगा कि रोने कूटनेसे जो गैरफायदे होते हैं वो मेरे जैन बन्धु जान ले.

रोने पीटनेसे होनेवाले गैरफायदे.

शोक याने चिन्ता और चिन्ताको शास्त्रमें राक्षसकी उपमासे बुलाते हैं. नीति शास्त्रमें कहा है कि-

चितया नश्यते रूप चितया नश्यते वलम् ।
चितया ह्र्यते ज्ञानं व्याधिर्भवति चितया ॥

अर्थ–चिन्ता करनेसे रूपका नाश होता है, चिन्तासे वल नष्ट होता है, चिन्तासे ज्ञान मद होता है और अनेक प्रकारकी व्याधि उत्पन्न करने वाली यह चिन्ता है ।

चिन्ता वडी अभागनी, पडी कालजा खाय ।
रती २ भर सचरे, तोला भर २ जाय ॥ १ ॥
चिन्तासे चतुराई घटे, चिन्ता वुरी अथाग ।
सो नर जीवित मृतही है, ज्या घट चिन्ताआग ॥२॥

शरीरका नुकसान–शरीरका वनाव इस प्रकार है कि अहार तथा विहार बरावर रहा वहातक तनदुरुस्ती ठीक रहती है परन्तु इसमें जरा फेरफार हुआ कि तुरन्तही शरीरमें रोग पैदा होगा जितना विकार अपने वीमार शरीरमेंसे निकलता है उससे ज्यादा जो निकाल लें तो रोगीका शरीर क्षीण और दुर्वल होजाता है. वैद्यकशास्त्र कहता है कि कान और आंख के बीच रहेहुवे भागमें (कनपटीमें) दो पुका होवे है उसमें लोहीमेंके पानीका भाग कितनीक वार जुदा पडता है वह खारा पानी आखके रस्ते वहार निकलता है उसको अपन आंसू कहते हैं भय, शोक, क्रोध, प्रीति, गूर वगैर. मनोट-

तिसे लोहूके फिरनेकी गतिमें बहोत फेरफार होता है, लोहू जब एका एक उकलता है और गति बहोत उतावली होती है जब पहिले पुल्कमेंसे बहोत पानी अलग होजाता है और परिनाम ऐसा आता है कि आंसू बहोत बहार आते हैं. जिस लोहूका वीर्य्य होता है वह लोहू मुक्त पानी होकर आंसूरूपमें बहार निकल जाता है उससे आंखको बहोत नुकसान होकर तेज घट जाता है.

कूटनेसे अनेक गैरफायदे हैं—छाती तथा आंख लाल-सूर्ख हो जाती है, छातीमें चांदिअें पड़ जाती हैं, खून निकल आता है, पेटमें अनेक प्रकारके रोग पैदा होते है, स्त्रीका कमल उंधा होजाता है, मूत्राशयमें विगाड़ होनेसे पिशाव बन्ध हो जाता है, छाती कूटनेसे आस पासकी नसे चगदा जाती है उससे सोजा चड़आता है, और उससे गांठ गुमड़ेकी भी व्याधी होती है, स्त्रीके स्तनके अन्दर रोग पैदा होता है उससे दूध विगड़ता है इससे धवनेवाला वालक रोगी होता है और बच्चा पीला पड़ता है उसका अङ्गबल घटकर वीर्य्य खराब हो जाता है इतना ही नही परन्तु वालक न्यून वयमें मरजा-ता है. अपनी संतति निर्फल होनेका यही रोने कूटनेका हानि कारक कारण है!

रोने कूटनेसे गर्भवती स्त्रीको बहोत नुकसान होता है.

बहोत शोक करनेसे बालक रोगीष्ट जन्मता है तथा अधूरा पड जाता है—श्री कल्पसूत्रकी कल्पलता नामकी टीकामें कहा है कि—

कामसेवा—प्रस्खलन पतन प्रपीडन प्रधावनाभिघात विषम शयन—

विषमासन—अति रागातिशोक—आदिभिर्गर्भपातो भवेत्

अर्थ—कामसेवासे, ठेश लगनेसे, पडनेसे पीडा होनेसे, दौडनेसे, धक्का लगनेसे, बराबर नहीं सोनेसे, बराबर नहीं बैठनेसे अति प्रीति बतानेसे अति शोक करनेसे गर्भ पड जाता है—

पटाग्से पेटमें गढान उत्पन्न होती है और उससे जवान स्त्रीका बधा तूट जाता है और भर जवानीमें मरीसी दिखती है, छोकरीयोंको जान बूझकर रोना कूटना सिखलाती है इस से ऐसा करनेहारे लोग जान बुझकर छोकरीयोंके शरीरमें रोग पेदा करते हैं।

शोकसे मनपर होनेवाली असर

शरीर और मनका इतना सम्बन्ध है कि शरीरके रोगसे मन बिगडता है, शरीर अच्छा होता है तभी मन अच्छा होता है और मन अच्छा होता है तभी शरीर निरोगी रहता है चिन्ता करनेवाले, दूसरेका सुख देखकर जलनेवाले, नाहक फिकर करनेवाले शख्स कैसे निर्बल होते हैं यह पाठकोंको भली भाति

ज्ञात है-तेज मिजाजवाले, घड़ी २ में गरम होनेवाले, उकल-ते लोहीवाले मनुष्यों की काया कैसी विना ताकतकी होती है वो पाठको को समझानेकी कोई आवश्यकता नहीं स्वयंही समझ सकते हैं. वैद्यक शास्त्र कहता है कि-मनको हदसे ज्यादा परिश्रम देनेसे तनकी शक्ति घटती है, पाचन शक्ति न्यून होती जाती है, काम करनेका उत्साह रहता नही ज्ञानतंतु निर्वल हो जाते हैं, क्षय रोग उत्पन्न होता है और आखिरको अकाल मृत्यु होती है. तव कुच्छ कार्य्य होता नही. शरीर क्षीण होजाता है तव बुद्धि घटती है, स्मरणशक्ति मंद हो जाती है !

शरीरके रोगके उपाय सहल मिल सक्ते हैं परन्तु मनके रोगके उपाय मिलने कठिन हैं. वियोगके लिये बहोत स्त्री पुरुष मा वाप लड़के इत्यादि दुःखी होते हैं परन्तु लगातार शोक करनेसे रोने कूटनेसे कई व्याधियां पैदा होती हैं और उसका परिनाम भयंकर होता है ! हमेशा: रुदन (शोक) कर-नेसे दिल विगड़ जाता है, घरका कार्य्य नहीं सूझाता, शरीर क्षीण होज़ाताहै, कोईका मुंह नहीं देखते, वाल वच्चोंको सम्भा-ला नहीं ज़ाता, अंतको शरीर और दिल क्षीण होनेसे मृत्यु होज़ाती है ।

चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरं ।

नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ॥
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीय ।
स्वस्थे चित्ते बुद्धय सभवन्ति ॥

अर्थ-धातुसे बधा हुआ यह शरीर मनके आधीन है-चित्त नाश पानेसे धातुकाभी नाश होता है इससे चित्तका सदा रक्षन करना चाहिये-चित्त अच्छा होता है तभी बुद्धि पैदा होती है।

दूसरे लोगोंके विचार

सुधरे हुए लोग जब अपनी औरतोंको रोती कूटती देखते हैं तब वे लोग अपने इस दुष्ट रिवाजकी हँसी करते हैं और उनके दिलमें ऐसे विचार पैदा होते हैं कि (इन लोगों) की औरतें मूर्ख हैं और निर्लज्ज, विनाशयावाली, ढोंगी और अकुशल्य हैं ससारका स्वाभाविक नियम यह है कि घरको शोभाना स्त्रीका काम है परन्तु (अपनको) अपने घरकी शोभा कितनी है जो कोई अपनी स्त्रीयोंकी इस रीतिको देखकर प्रश्न करें तो भाईयो ! अपन क्या जबाब देंगें ? इस वक्त अपन सिद्ध हो जायेंगे इसलिये स्त्रीयोंमेंसे इस निर्लज्ज चालका नाश हो ऐसा उपाय करनेके वास्ते तत्पर हो जाओ।

उपदेश.

माता-पिता-भाइ वहन-जमाई-लड़की-पुत्र-प्रिय मित्र प्यारी भार्य्या वगैरः मरजाते हैं तब रंज पैदा होता है और रोना जरूर आता है, यह सही; परन्तु यह सब हद वहार न होना चाहिये. उस समय क्या करना चाहिये-वहोतसे लोग दुःखसे वावले हो जाते हैं, आंखमेंसे चौधारा आंसु वरसाने को छाती और माथा कूटते हैं, तथा जमीन पर पछाड़ मारते हैं, क्या इससे तुम्हारा शोक दूर होजाता है! ऐसा करनेसे तुम्हारे शरीरका वल कम होता है, दिल निर्वल होजाता है और वुद्धि घट जाती है, अलवते यह तो सही है कि मरनेके वरावर दूसरी कोई आपत्ति नहीं! धनगुमा हो तो परिश्रमसे पीछा मिलासक्ते हैं, गई हुई विद्या फिर अभ्यास करनेसे मिल सक्ती है, रोगकी आफत औषधिसे दूर होती है; परन्तु मनुष्य रूपी रत्नकी सब विपत्तियोंसे वड़ी विपत्ति है. एक मनुष्यकी साधारन वस्तु जाय या उसका नाश होजाय तो दिलमें खेद अवश्य होता है, तो अपने वहुत स्नेही मनुष्यके जानेका खेद क्यों न होगा! अपने स्नेहीके मरते वक्त शोकसे हृदय विलकुल व्याकुल हो जाता है पर यह असर ज्ञानवान पुरुष को नहीं होती!

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चंदनं चारुगंधं,

छिन्नं छिन्न पुनरपि पुन स्वादु चैवेक्षुकांडम् ।
दग्धं दग्ध पुनरपि पुन कांचनं कांतवर्ण
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥

अर्थ–वारवार चन्दनको घिसो तोभी वह सुगधीही सुगधी देता है, इक्षु (साठे) को वार २ काटो तो भी वह स्वादिष्टता देती है, सोनेको कितनीही वार तपाओ तो भी उसका रग शोभायमानही दीखाता है–ऐसेंही उत्तम पुरुषोंकी प्रकृतिमें प्राणत होनेपर भी फेराफार नहीं होता–हरएक प्रकारके दु:ख वह सहन करते हैं. ऐसे समय धैर्य्य रखना यहही मुख्य साधन है पैदा होता उसका नाशभी होता है यह पाठकगण समझतेही हैं तो मृत्युके वक्त आप गहिले बन जाते है यह मूर्खताकाही चिन्ह है।

नष्ट मृतमतिक्रांतं नानुशोचति पडित ।
पडितानां च मूर्खाणां विशेषोय यत स्मृत ॥

अर्थ–जिस वस्तुका नाश हुआ, जो मनुष्य मरगया और जो बात होगई उसका शोक पडितजन नहीं करते–पडित और मूर्खमें इतनाही फर्क है।

ना प्राप्यमभिवांछति नष्टं नेच्छातिशोचितु ।
आपत्स्वपि न मुह्यंतिनरा पडितवुद्धय ॥

अर्थः—जो वस्तु नहीं मिलसक्ती उसकी इच्छा पंडित लोक नहीं करते और जिस वस्तुका नाश होगया हो उसका रंज नहीं करते, आपत्तिमें मोहके आधीन नहीं होते; कारन कि वह अच्छी तरह जानते हैं कि जिसका जन्म उसका मरनभी है, जिसका नाम है उसका नाश होता है ! जिसका वड़ा सम्बन्ध था व राजा, महर्षि और रिद्धिवंत थे वेभी चलेगये तो अपन किस बुनियादमें ? वो अच्छी तरह जानते हैं कि (The virtue of adversity is fortituded) विपत्तिका सद्गुण धीरज है (यानि विपत्तिकी मुख्य औषधि धैर्य्य है) शोकके लिये दीन होने और धैर्यको छोड़ देनेसे उसके ज्ञानको निन्दा होति है. पंडित पुरुष ऐसे वक्त धैर्य, उत्साह और शौर्यका त्याग कदापि नहीं करते. वो शोक रूपी विकराल सैन्यके सामने धीरज रूपी तपके मारसे फतहमन्द होते हैं, उसमें ही धीरपुरु का धैर्य मालुम हो जाता है और उसी वक्त उनकी कसोटी निकलती है, कहा है कि—

आपत्स्वेव हि महतां शक्तिरभिव्यज्यते न संपत्सु
अगुरोस्तथा न गंधः प्रागस्ति यथाग्निपतितस्य

अर्थ—महान् पुरुषोंकी संपत्ति में नही परन्तु विपत्ति मेंही शक्तिकी परीक्षा होती है जैसे कि अगर चदनकी सुगंध अग्नि में पड़े पीछेही मालुम होति है.

और सच्च कहा जावे तो ऐसी घातकी चाल सज्जन लोक कदापि करते नही, प्राणात होते पर भी विरुद्धाचरण उन्होंसे होता ही नहीं, कारन कि–

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधिविक्रम ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनंश्रुते
प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

अर्थ–विपत्ति में धैर्य, क्रोधमें क्षमा, सभामें वाणी की प्रवीणता, युद्धमें पराक्रम, कीर्तीकी इच्छा, शास्त्राभ्यासका व्यसन यह महान पुरुषोंकी एक स्वाभाविक वस्तु है।

परन्तु अपनेमें इससे उल्टा रिवाज है "रोतेथे और पीहरवाले मिले" एक तो अज्ञानपना और उसमें ऐसे खराब रिवाज आ मिले. ज्यादा मदवाड हुई कि उसकी सेवा करना तो अलग रहा और चिल्हा २ के रोना शुरु करते हैं जिससे बीमार आदमी घबडा जाता है और उसका अतकाल शीघ्र हो जावे, यही तो अपनी खूबी! मनुष्य मृत्यु पाया कि धांधल मचाते पुरुष शर्म्माते नहीं, वैसे ही स्त्रिया अमर्याद रीतिसे रोनी कूटती है, जराभी लज्जा नहीं रखती, ज्ञातिमें कोई मरा कि कतनीक औरतोंकी रोने कूटनेकी हौंस पूरी होती है, धिकार

है ऐसी नीच स्त्रीओंको! इस दुष्ट रिवाजने लोगोंकी मति कैसी वदल डाली है कि मरा सो छूटा, उसको तो कुच्छ देखते नहीं परन्तु पीछे रहे हुए मिथ्या शोकमें पड़कर अपने आप दुःखी होते हैं यह कितनी मूर्खाई है! अपना प्यारा मरजानेसे रंज तो होताहै परन्तु क्या वह रंज लोकोंको वतलानेके लिये? तुम्हारी अंतरकी लगनी वाह्य वृत्तिसे दूसरोंको वताओ. अलवत सही है!

शास्त्रभी कहते हैं कि शोक रुदनसे करम वंधते हैं. श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय उनके अध्यात्मसार ग्रंथमें कहते हैं कि

क्रंदनं रुदनं प्रोच्चैः शोचनं परिदेवनम् ।
ताडनं लुंचनं चेति लिंगान्यस्य विदुर्बुधाः ॥

अर्थः—आक्रंदन—उचैस्वरसे रोना, शोक करना, नाम लेकर रोना, सिरकूटना वगैरः कों पंडित आर्त्त ध्यानके लक्षन कहते हैं श्रीनेमिचन्द्र रचित षष्टिशतकमें कहा है कि—

तिहुअण जणं मरंतं दट्ठुणानि अंति जे न अप्पाणं ।
विरमंति न पावाओ धिद्धिद्धिट्ठत्तणं ताणं ॥

अर्थः—त्रिभुवनके जनको मरण वश होते देखकर प्रमादसे व अभिनिवेशसे अपनी होनेवाली मृत्युको नहीं देखते और पापसे नही डरते उनकी धृष्टताको धिक्कारहै; कारण कि—

नरेंद्रचंद्रेदुदिवाकरेसु तिर्यग्मनुष्यामरनायकेसु ।
मुनिंद्रविद्या धरकिन्नरेसु स्वच्छंदलीला चरितोहि मृत्यु

अर्थः-नरेंद्र, चन्द्र, सूर्य, तिर्यंच, मनुष्य, देवता, इन्द्र, मुनिंद्र, विद्याधर और किनरोंमें मरण यह तो अपनी मरजी मुजब लीला करते हैं।

फिर षट्शितकमें कहा है कि-

सोएण कंदिउण कुट्टूऊणे सिरचउअरच ।
अप्प खिनति नरए तंपिहु धिद्धि कुनेहतम् ॥

अर्थ -अपने प्यारेके वियोगसे जो शोक पैदा होता है उसके वास्ते छाती माथा कूटतेहैं ऐसे कुस्नेहीको धिक्कार ! धिक्कार ! धिक्कारहै, कारण कि-

शोचंति स्वजनानतं नियमानान् स्वकर्मभि
र्नेष्य माण तु शोचति नात्मान मूढ बुद्धय ॥

अर्थ -मूढ बुद्धि वाले मनुष्य अपने प्यारेकी मृत्यु जो निजकर्मसे हुई है उसका शोक करते हैं परन्तु खुद एक दिन खिंचा जायगा उसका शोक नहीं करते-

फिर आगे षट्शितकमें कहते हैं कि,-

एगं पिअ मरण दुहं अन्नं अप्पांवि खिपइ नरए ।
एगंच माल पडणं अन्नं लुगडेण सिरिधाओ ॥

अर्थः—एक तो प्यारे स्वजनके मरनेका दुःख, दूसरा उसके वास्ते रोकूटकर आत्माको नरकादि दुर्गतिमें डालना यह कोनसा न्याय कि एक तो मेडी परसे गिरना फिर और उसपर लकड़ीका मार अर्थात् कोई ऊपरसे गिरा और उसके हाथ पाव टूटा और उसके साथ उसपर लकड़ीकी मार पड़े तबवह कैसा कष्ट उठाता है ? ऐसेही मूर्खलोग अपने कुटुम्बीके मरनेके दुःखके साथ २ रो कूटकर आत्माको नरकादि दुर्गतिमें डालते हैं!

ऐसे खुल्ले शब्दोंसें रोने कूटनेको निषेध ठहराया है तो ऐसी चाल किसलिये जारी रखतेहो ? ऐसा घातकी रिवाज जारी रखनेसे अपनने अपना मान घटाया है, दूसरे लोगोंमें हाथसें करके हँसी करवाई है, समझवान व असमझवान, चतुर और मूर्ख, पढेहुए और अपढ, सर्व जने घातकी जुल्मी निर्लज्ज और दुःखदाई रूढीके तावे होकर अपने सर्व प्रकारके सुखमें एक बड़ा भारी भपुका सिलगा रख्खा है, सुशील जैन बान्धवों! आप उत्तम विद्या सम्पादन कर सच्चा क्या है और झूठा क्या है यह समझने लगे हो, रोने कूटनेकी निर्लज्ज चाल रूपी बेड़ीके बन्धनमें आकर आपका दिल तो जलता होगा,

आपको स्वज्ञातिका भला करनेकी इच्छा होनी चाहिये, आपको आपके पवित्र शास्त्र पर तो पूरी श्रद्धा हैही, टोटा रखकर नफा मिलाना यह तो आपका खास गुण हैही, तो वेहमी और अज्ञान मनुष्योंके हसीके पात्र होकर ऐसी अज्ञान सूचक नफट और निर्लज्ज चालका नाश करके आपके ज्ञातिभाइयों को क्या सुखी न करोगे ? अवश्य करोगे !

रोने कूटनेका रिवाज हानिकारकही नहीं, पर शर्माने ऐसा और धिक्कारपात्र है ! हरएक चतुर मनुष्यका कर्तव्य है कि अपने घरमेंसे और जाति तथा देशमेंसे ऐसे नफट चालको जड मूलसे निकाल देना चाहिये.

आप विचार कीजिये कि इस चालको निकाल देनेमें आपको कोई तरहका गैरफायदा होगा क्या ? बिल्कुलनहीं ! उलटे अनेक जातके लाभ मिलेंगे. दूसरे लोगोंमें आपकी आबरु वढेगी आपके वास्ते अच्छे विचार पैदा होंगे, आपके धर्मका मूल दयाही है ऐसा अन्यदर्शनीय लोग बराबर समझेंगे, सांसारिक सुधारा करनेमें आप अग्रेसर होनेमें नामांकित होजाओगे

कदाचित् आप पूछेंगे कि कुटुम्बीके मृत्युके वक्त रोना कूटना नहीं तो क्या करना ? उसके जवाबमें मृत्युके समय ऐसा गहेलापन न बताते प्रभुका स्मरण करना चाहिये—और मृत्युके बाद अपने सगे सोई आकर रोने कूटने लगे तो

उनको ऐसा करते हुए अटका कर नोकरवाली (माला) उन्हें देकर कहना चाहिये कि प्रभुका नाम ले कर अवतार सफल करो. वडोदेमें एक अच्छे घरमें मृत्यु होगईथी तब उसके घर रोने कूटनेको आई हुई स्त्रियोंको इसी मुजब नोकरवाली देनेमें आईथी, उसी मुताबिक हरएक जगह ऐसा रिवाज होना चाहिये. इसलिये ज्ञातिके सर्व अग्रेसर महाशयोंसे मेरी नम्रता पूर्वक प्रार्थना है कि वोह अपनी ज्ञातिको इकठ्ठी करके सर्वानुमतसे इस चालका सुधारा करके अपनी ज्ञातिके कलंकको नष्ट करें—और यह करना हरएक ज्ञातिके अग्रेसरोंका कर्तव्य है !

कदाचित् कोई कहेंगे कि वहोत दिनोंसे होती आई चालको नष्ट करने की खटपटमें कौन पड़े और लोकोका अपयश कौन सिरपर ले ! भाईयो ! रोने कूटनेकी चालसे वड़ा भारी नुकशान अपनेको सहन करना पड़ता है यह अपनको ज्ञात हो तो ऐसी खराब रीतिको सुमार्गमें ले जाना और उस रस्ते अपनको चलना. बान्धवों ! इस रस्ते चलनेकी होंस न करना चाहिये क्यों कि यह पाप है और स्वाभाविक नियमसे उलटा है. मनुष्य लदाका कर्तव्य यह है कि कोई खराब रूढीका अपनेमें प्रचलित होना ज्ञात हो जावे तो उसको निकालनेका उपाय करना चाहिये, इसमें आपको कोई द्रव्य व्यय न होगा सिर्फ जबान हिलानेका काम है.

ऐसी हानिकारक घातकी चालको आपके हाथ से ही बन्द करना यही सबसे उत्तम है। अपने महान दयालु बृटिश सरकारने राजपूताने में बालहत्या होनेका अटकाया, सती होनेंकी चाल बन्द की इत्यादि हिन्दू लोगोंके कुरिवाजों में बहुत कुछ सुधारा किया गयाहै, वैसेही जाहिर रास्ते में दिलकाप उठ आवे ऐसा शरीर पर घातकीपना करनेवालों को सरकार मना कर सकती है। परन्तु हरएक सामारिक सुधारे आप अपने हाथसे ही करें उसीमें ज्यादा मान और शोभा है। इसमें आपकी जगह जगह प्रशसा होगी, और लोग वस परपरा तक आशीर्वाद देंगे। ऐसे पुण्यके काम करनेसे आपकी आत्मा सद्गति भोगेगी।

मृत्यु के बाद मे जीमना.

मृत्युके बाद रोने कूटनेके साथ ? जीमनवारका बहुत निकट सबध है। इसमे मृत्युके बाद जीमनवारके विषयमें दो बोल बोले जावें तो अनुचित नहीं है।

जगतका स्वाभाविक नियम है कि हरएक मनुष्य आनन्द यश और समागमकी आकाक्षा रखते हैं। उसके हरएक काममें और उसके हरएक सम्बन्धमें और उसके हरएक तरगमें हरएक मनुष्य ऐसी इच्छा रखते हैं कि मुझे फलाना काम करनेमें आनन्द मिलता है इसलिये वह काम करना चाहिये, फलाने काममें यश मिलेगा इसलिये दूसरे काम करनेको

आशा न रखते वही काम करना, और आखिरमें प्रतिष्ठित मनुष्यका समागम होनेसे मुझे शोभा मिलेगी इस लिये उन (प्रतिष्ठित मनुष्य) का समागम करना चाहिये।

इसी हेतुसे जीमनेकी परिपाटी प्रचलित हुई होगी ऐसा ज्ञात होता है। यह परिपाटी संसार व्योहारका आनन्द देने वाली है यह तो सब कबूल करेंगे, परन्तु इतना ध्यान में आवेगा कि जीमना, जिमाना यह लग्न अथवा उसके जैसे दूसरे प्रसंगमें आनन्द देने वाली है। परन्तु मृत्युके समय जिस वक्त प्रिय स्नेहीके अकाल मृत्युसे आपके हृदयमें एक जंगी चोट लगी ऐसा हो जाता है और उसके जखमके मारे आप रोते हैं तो ऐसे प्रसंगमें जातिके लोगोंको मिष्टान्न खिलाना यह कौनसे प्रकारके आनन्दका कारण है सो ज्ञात नहीं होता।

मृत्यु यह कोई छोटी बड़ी बात नहीं है। मनुष्य मरगया और लकड़ीका टुकड़ा टूट गया यह बराबर नहीं, तोभी मृत्युके बाद जीमनवार इतना जरूरतका हो गया है, कि दूसरे शुभ अवसर पर न होतो नहीं सही, परन्तु मृत्युके बाद जीमनवार तो करना ही चाहिये, स्वर्गस्थके कुटुम्बको एक मनुष्य रत्नकी खामी पड़ी उसका तो कुछ नहीं, परन्तु उसकी जानका भोग देना ही चाहिये. खर्चकी शक्ति हो या न हो, भविष्यम पालन पोषणके सांसे हो तो भलेही हो, परन्तु स्वर्गस्थका नुकता तो करना ही चाहिये। यह कहांका शानपन ? स्त्रीकी अघरनी और मा बापका

करियावर यह फिर से बारबार आते नहीं, ऐसी कहावत है। इससे ऐसा प्रसंग आवे तो घरबार और घरकी वस्तु वगैर बेचकर जातिको जिमाने के लिये लोग तैयार होते हैं ।

मौसर करना यह एक जातिका हकही होगया है, यदि सरकारके करमेंसे माफ कराना हो तो अर्ज करके माफ करा सकते है, परन्तु इस रिवाजने तो इतनी जड जमादी है कि उठताही नही धिक्कार हे ऐसे रिवाजको ! शक्ति हो न हो परन्तु जाति वालोंको तो जिमानाही चाहिये यह कितनी दुःखदाई बात है। पतिके मृत्युके बाद उसकी विधवा स्त्रीका घरबार बेचकर नुकता करना यह जुल्म नहीं है ?

मरनेहारेके घरवालोंकी आखोंमेंसे चौधारे आसू बहरहे हैं वे दूसरोंके सामने ऊचा मुंहकरके देख नही सकते ऐसे समय जाति वाले मिष्टान्न उडाते है। क्या यह आपको कमशर्माने लायक बात है। जिस जगह लोग शोकम निमग्न हो रहे हैं वहां जातिवाले हर्ष मानते है यह क्या कम अपमान दायक बात है ? परन्तु कितनेक मनुष्य कहते है कि हम कब कहने को जाते है कि तुम नुकता करो और यदि नुकता न करे तो जाति उसे सजा थोडीही देती है ? यह बात सत्य है कि जाति सजा नहीं देती परन्तु जातिके कितनेक लोग उसे दृष्टात देदे कर गमी दोट कर देते है, तो इससे ज्यादा क्या कम ! जाति वाले तो नहीं अटका सकते परन्तु लोगोंके दृष्टांतोंसे नुकता करना पडता है ।

इससे ज्ञातिके सर्व मनुष्योंका कर्तव्य है ऐसे हीनकारक रिवाजोंको बिलकुल उत्तेजन नहीं देना चाहिये, इतनाही नहीं परन्तु इस दुष्ट रूढीका अपने प्यारोंमें पैरही नहीं रखने देना, यदि प्रवेश हुई हो तो उसको निकाल देना चाहिये और इस रीतिसे बेचारे गरीब लोगोंको पड़ते हुए बोझ से मुक्त करने चाहियें।

मृत्युके बाद नुकतेका रिवाज दूर करना यह गरीब लोगोंका काम नहीं है, सेठिये तथा अग्रेसरोंको इकट्ठे होकर ठहराव करना चाहिये, कि कोई घरको मृत्यु हो तो नुकता (जीमनवार) बिलकुल करना नहीं, और यह पहिले पसवाल्जेंने निकालनी चाहिये. कितनीक वक्त ऐसा होता है कि जातिके बन्धेहुये धारेको कोई उल्लंघन करे तो उसको सजा होती नहीं परन्तु ऐसी बाबतोंमें अग्रेसरोंको ध्यान रखना चाहिये कि जिससे धारा तोड़ने वाला पैसेवाला या गरीब हो उसे योग्य शिक्षा देकर ऐसे ऐसे दुष्ट रिवाजोंको निकालना चाहिये।

लोगोंको यह रिवाज बन्द पड़नेसे बेचैनी तो होगी, परन्तु ऐसा करनेका कोई कारण नहीं, जब वो कई बार जीम २ कर कलेजा ठंडा करलेते हैं परन्तु जब उनके खुदके घर ऐसा मौका आवेगा तब मालूम होगा कि जातिको जीमाते आंखें खुलती हैं, ऐसे लोगोंको समझना चाहिये कि बेचारे गरीब घरमें घीका छींटा नहीं देखते, खानेको आज मिला तो कल नहीं, रात दिन परिश्रमकर पैसा कमाकर

अपना गुजरान करते हैं, उसके घरमें मृत्यु होनेसे जीमार्नी रूपी देंढी पावमे पडनेसे जो दुःख सहन करना पडता है वह तो एक परमेश्वरही जानता होगा।

इसमें जातिके अग्रसरोंसे नम्रता पूर्वक मेरी प्रार्थना है कि, जो अपनी जातिमें ऐसे निकम्मे पैसे उडाते हो, और आपको जातिके गरीबोंकी दया हो तो कृपाकर मृत्युके बाद नुकता (यह रजके समय हर्ष) तुरन्तही बन्द करना चाहिये इसमे आपको हजारों गरीब जाति वालोंको निभा लेनेकी आशीस मिलेगी।

श्री सबका दास
कस्तुरचन्द गादिया

Seth Chandanmalji Nagori, Esq

श्रीयुत् शेठ साहेब चंदनमलजी नागोरी

मु. छोटीसादडी (मेवाड)

मनोनिग्रह.

लेखक–चंदनमल नागोरी छोटी सादडी–मेवाड.

प्रिय पाठक ? "मन एव मनुष्याणं कारणं बंध मोक्षयो" यह शास्त्रका खास वचन है मनुष्यको बंधनमें डालनेके लिये और मोक्ष प्राप्तिके लिये मन प्रधान तुल्य है मनोनिग्रहका विषय अत्यंत गहन है इसकी व्याख्या सविस्तार करनेकी व लिखनेकी शक्ति लेखकमें नहीं है मगर पाठकोंको अनुभव होगा कि, यह मन कोई वख्त ऐसी कुविकल्प जाल फैला देता है कि प्राणीको कृत्याकृत्यका विचारही नहीं आनेदेता और मनको वश रखना भी आवश्यकीय है–और यह वशीभूत होना भी मुश्किल है क्यों कि कुविकल्प जालोंसे निवृत्त होना सहज नहीं है, जैसे पारधीकी जालमें आया हुआ मच्छ नीकल नहीं सक्ता इसी तरह मनरूपी पारधीकी कुविकल्प जालमें आया हुआ जीव निकलनेको असमर्थ होता है और जिस कदर पारधी जालमें आई हुइ मच्छीकों मारनेका प्रयत्न करता है इस तरह यह मन नर्कमें लेजानेका प्रयत्न करता है और अनेक विचारोंकी श्रेणीमें विचारशील होकर तैने जो सुकृत्य किया है तो उन्हें क्षणभरमें नष्ट करने वाला और दु-

गति लेजाने वाला यह एक मन है इस लिये शास्त्रमें बयान है कि मनका विश्वास नहीं करना, मनके विश्वाससे दुःख उत्पन्न होता है जैसे विश्वाससे जालमें आया हुआ मच्छ निवृत्त हो नहीं सकता इसी तरह मनका विश्वास कर कुविकल्प जालोंमें आया हुआ प्राणी निवृत्त होनेमें अशक्त होता है.

आपको मालुम होगा कि, देवपूजा, प्रभुभक्ति, सुकृत्य और नित्यानुष्ठान आदि करते वख्त मन दूर देशोंमें मुसाफरी कर आता है और मुसाफरी भी ऐसी जबरदस्त करता है कि एक मिनीटमें क्या सेकेन्डमें तमाम हिन्दुस्तान आदि मुल्कोंमे घूम आता है, जब अपने मनको स्थिर कर दो घड़ीके लिये सामायिकादि क्रियामें प्रवृत्त होते हैं उस वख्तका हाल जरा दीर्घ द्रष्टीसे विस्तार कर विचार करो कि प्रथम शुद्ध स्थलमे स्वच्छ आसन ऊपर पवित्र मुनिराजकी समक्ष दो घड़ी स्थिर रहनेका नियम लेनेपर भी यह पापी मन वशमें नहीं आता. और लेखक अनुभवसे लिखता है कि पड़िक्कमणादि क्रिया करते वख्त जो कृत्य करनेका व समझनेका और पश्चाताप करनेका है उसे भूल कर घरके धंधोसे जा लगता है. हे परमात्मा ? पड़िक्कमणादि अवस्थामें. चौराशी लक्ष योनि व अढार पाप स्थान, अब्भुठीयो, आयरिय उवज्झाये, अढाइजेसु और वंदित्तु आदिका सारांश और रहस्य समझनेका खास कृतव्य होने पर भी मन इधर उधर भगता फिरता है. और

पूर्वाचार्योंके जीवनचरित्र (सज्झाय) का अनुकरण करनेके लिये जो सज्झाय कही जाती उस पर ध्यान नही देकर पडिक्कमणा जल्दी खतम हो जानेकी इच्छामें लगा रहता है इस तरह मनकी कुविकल्प जालोंमें फसा हुवा मनुष्य आधे घंटेमें पडिकमणा खलास करके अपनी आत्माका उद्धार हुवा माने वह भूल करता है ?

पडिक्कमणेका खास उद्देश यह है कि किये हुवे पाप पर निरीक्षण करना अंत करणसे पश्चाताप कर पुन' ऐसे दुष्कृत्य नही करनेका विचार कर निरधार करना यह खास आवश्यक क्रियाका हेतु है

वाचक वृंद ? खास हेतु समझनेके शिवाय ऐसा मत सोचना कि शुद्ध भावसे और मनकी एकाग्रतासे क्रिया न हो तो बिल्कुल करना ही नही चलो इत्यत टली मगर शास्त्रानुकूल और शुद्ध करनेका अभ्यास करते जाना

हे सुज्ञो ! जिस वख्त धर्मक्रियामें ध्यानारूढ होते हैं उस वख्त यह मन अनेक स्थल व्यापारमें घरमें पुत्र परिवार में और दुश्मन सेगला भला बुरा करनेमें लगजाता है हाथमें माला मुहसे रामराम और पेटमें छुरी करनेकी दानत ऐसी धर्मानुष्ठानकी क्रियाके वख्त रखनेको समर्थ हो जाता है ऐसे दुराचारी पाखंडीका विश्वास करना अनुचित है

प्रिय आत्मबंधुवर्य ? ॐकार आदिके जाप करो, तपश्चर्या

करो, ध्यान करो, आश्रव रोको, इंद्रीय दमन करो, मौनव्रत स्वीकारो, आसन स्थिर रहो, ध्यानारूढ रहो, गुफामें बैठो या हिमालय पर्वत पर जाओ, जनसमूहके मध्यमे रहो या जंगलके वीचमें जाओ, निवृत्ति स्थलमे जाओ या प्रवृत्ति स्थलमें रहो मगर जहांतक मन वशमें न होगा सर्व कष्ट क्रिया निष्फल है. जहांतक स्थिर चित्तसे शास्त्र नियमानुसार नहीं चलोगे और इर्षा निंदा राग द्वेशमें अहोनिश मग्न रहोगे वहांतक सर्व क्रिया अप्रमाणिक है वास्ते हे वीरनंदनो ? मनको वश रखनेके लिये पूर्वाचार्योंके कर्त्तव्यको स्मरण कियाकरो. एकदा श्रीआनंदघनजी महाराजने अपने मनको वश रखनेके लिये प्रार्थनाकी है और संगीतमें गा कर फरमाया है कि,

राग अलइया वेलावल.

जिया तोहे किस विध समझाऊं ।
मना तोहे किस विध समझाऊं ॥
हाथी होय तो पकड़ मंगाउं, जंजीर पांव नखाऊं ।
कर असवारी मावत हो वैठुं, अंकुश दे समझाऊं ॥ १ ॥
मना तोहे किस विध समझाऊं ।
घोड़ा होय तो पकड़ मंगाउं, करड़ी लाग देराऊं ॥
कर असवारी शहरमें फेरुं, चाबुक दे समझाऊं ।
मना तोहे किस विध समझाऊं ॥ २ ॥
सोना होय तो सोहगी मंगाउं, करड़ा ताप देराऊं ।

ले फुकरणी फुकण लागु, पाणी ज्यु पिघलाऊ ॥
मना तोहे किस विध समझाऊ ॥ ३ ॥
लोहा होय तो एरण मगाउ, दोइ धमण धमाऊ ।
मार घणाका घम घोर लगाउ, जत्रीमें तार कढाऊ ॥
मना तोहे किस विध समझाउ ॥ ४ ॥
ज्ञानी होय तो ज्ञान सीखाउ, अतर वीन बजाऊ ।
'आनदघन' कहे सुणभाई मनवा, ज्योतिसें ज्योत मिलाऊ ॥
मना तोहे किस विध समझाऊ ॥ ५ ॥ ॥

श्रीमन् महात्मा आनदघनजी महाराज स्वात्माको मार्थनाके तुल्य कहते है कि हे मनवा (मन) ? जो तु हाथी होता तो मैं पकड कर तेरे पांवमें जजीर डालकर सवारी करता और अकुश देकर तुझे अच्छी तरह समझाता, मगर वश किया जाय तु हाथीभी नहीं।

हे मन ! जो तु घोडा होता तो मैं पकड कर काठेदार लगाम लगाके उपर बैठकर शहरमें फिराता और चाबुक दे कर समझाता, मगर तु घोडाभी नहीं है.

हे मन ! तु धातुओंमें सर्वोत्तम शिरोमणी सुवर्ण अर्थात् सोना होता तो मैं तेरे लिये सोहगी मगवाता और खुब करडा ताप लिलाकर उष्ण तापसे पानी जैसा पिगला कर समझाता मगर तु सोनाभी नहीं है.

वाको मन न छूके काहुं ठोर ॥ मना ऐसे ॥ ३ ॥
जुआरी मन जुआ वसेरे ।
कामीके मनकाम (मेरे मना कामीके मन काम) ॥
आनंदघन प्रभु युं कहेरे, (आनंदघन मना युं कहेरे)
नित्य सेवो भगवान, मना ऐसे जिनचरना चित्तल्यारे ॥५॥

वाचकवृंद ? अनुभव विद्वद्वन महात्मा योगीराज स्वात्मा को सदुपदेश देते हुवे फरमाते है कि हे मन ? ज्यों ज्यों दिन निकलते जाते हैं त्यों त्यों उमर कम हो रही है, जो क्षण गया वह पुनः आनेका नहीं वास्ते अरिहंत प्रभुका स्मरणकरनेमें तत्पर हो. जैसे गाय उदरपोषण अर्थात् पेट भरनेके लिये वनखंडमें जाकर घास और पानीसे निर्वाह करती है मगर जो उसकी संतान (वछडा) साथ न होगा तो उसका मन छोटे बच्चेपर बना रहेता है, इसी तरह हे मनवा ? तुंभी व्यवहारिक धार्मिक कार्य करते वख्त तरण तारण भव भयनिवारण परमात्माके चरनकमलमें ध्यान रखनेको प्रवृत्त हो.

हे सुज्ञो ? जैसे पांच पांच सात सात स्त्रीयों-झुंडके झुंड पानी भरनेको वापिकाकी तरफ जाती हैं और मटका शिर पर लेकर सखी सहेलियोंके साथ हंसती हुइ स्मित वदनसे मशकरीमें व्याप्त होकर वसुंधरा पर चलती है; मगर उनका ध्यान पानीके मटकेसे अलग नहीं होता, इसी तरह हे मनवा ? तुंभी सुमति रूपी रंभापरी होकर शियल ? समता ?

ब्रह्मचर्य ? घोर तपश्चर्या ? तीर्थ यात्रा ? देशविरती ? चैत्य प्रतिष्ठा ? जीर्णोद्धार ? सुपात्रदान ! ओर चतुर्विध सधर्मि भक्ति रूप सहेलियोंके झुंड साथ लेकर सुकृत्य रूपी मटका शिरपर लेकर धर्म रूपी वापिकामें धृति ? क्षमा ? औदार्य ? गांभिर्य ? निष्कपटता ? सरलता ? मृदुता ? विवेक ? सवर ? उपशम रूपी जल भरनेको जा और फिर राग, द्वेष, तज्जन्य, कषाय, मोह, क्रोध, लोभ, मान, माया, मिथ्यात्व, प्रमोद, और जो तेरे शत्रु है वह तेरे सिरपर रहा हुवा जो सुकृत्य रूपी मटका उसे गिरानेका प्रयत्न करेंगे, मगर हे मनवा ? तुं ध्यान भ्रष्ट मत होना।

पाठक वर्य ? दीर्घ द्रष्टीसे विचारने तुल्य है कि पेट भरनेको बीच चोकके मध्यमें नटवा हाथमें वांस पकड कर रस्सी ऊपर चलनेको समर्थ होता है और नीचे तमाशबीन लाखों मनुष्य शोर मचाते ह, मगर उस नटवेका ध्यान लोगोंके शोर बकोरकी तरफ नहीं जाकर स्थिर रहता है, जो ध्यान भ्रष्ट होकर नीचे पडजाय तो नटवा मरण प्राप्त करे- इसी तरह हे सुज्ञो ? हे मन ! तु भी सुकृत्य रूपी वांस हाथमें पकडकर धर्म रूपी रस्सी पर चलनेकी हिम्मत कर और लाखों मनुष्योंके शोर रूपी अनेक प्रकारके विघ्न तुझे प्राप्त हो तोभी तु ध्यान भ्रष्ट नहीं होकर प्रभुस्मरणमें चित्त लगाकर अर्हंत ध्यानारूढ होना, और जो मनको वशमें नहीं रखकर

ध्यान भ्रष्ट होकर सुकृत्य रूपी डोरीसे गिरजायगा तो मरण प्राप्त कर नर्कादिमें उत्पन्न होना पड़ेगा. वास्ते जो तुझे योग्य मालुम हो वैसा करनेमें तत्पर हो.

फिर श्री अनुभववेत्ता योगीराज फरमाते हैं कि हे मन ? जैसे जुआ. (जुगार) खेलनेवाले मनुष्यके व विषयानंदी मनुष्योंके ध्यानमें जुगार और विषय हरवख्त व्याप्त रहता है इसी तरह तुंभी ज्ञानरुपी जुगार खेलनेमें तेरे काठीयाओंको खो दे अर्थात् हार जा. और धर्मरूपी इश्कमें मस्त होकर श्री महावीर परमात्माका स्मरण करनेमें तत्पर होजा.

हे वाचकवृंद ? योगीराजके सुविचारोंको हृदयतट पर बसाओ और मनको वश करनेके लिये विद्वद्न महात्माका अनुकरण करो और शुरुसे मनवश रखनेका प्रयत्न किये जाओ और फिजूल विचारोंको देशनिकाला देदो. एक जगह एक सुरिश्वरने फरमाया है कि,

विन खाधां विन भोगव्यांजी,
फोगट कर्म बंधाय ॥
आर्त्तध्यान मिटे नहींजी,
कीजे कवण उपाय रे ॥ जिनजी ॥
मुज पापीनेरे तार ॥ इत्यादि ॥

भाई ! श्री आदीश्वर भगवानके स्तवनमें श्रीमन् महात्मा

जिनहर्षजी महाराज उपरके फिकरेमें बयान फरमाते हैं कि बिना खाये बिना भोग बिदुन और बिना किये ही मनुष्य बातभी बातमें कर्म चीकने करलेता है और आर्त्त रौद्र ध्यानमें मगन रहकर तत्त्वको स्मरण नहीं करता, वास्ते जिनहर्षजी महाराज कहते हैं कि हे जिनजी ? मनको वशमें रखनेकेलिये क्या उपाय करना चाहिए और जब हमसें कोइ उपाय नहीं होगा तो भी हे परमात्मा ! मुज पापीपर दयाकरके ससार रूपी समुद्रसे तिरादेना यही वारवार वीनती है

हे सभ्यो ? महात्मा आनदघनजीकी तरह या श्री जिन हर्षसूरिजीकी तरह आपनभी कभी अपने मनको समझानेका प्रयत्न किया है ? या मन वशमें नही रहनेकी हालतमे निश्चेप-कारक परमात्मासे कभी वीनती की हो तो स्मरण करो अरे पाठक ! पूर्वाचार्योका अनुकरण करनेकी तुम्हारी खास फर्ज है और तुम बडे बडे दृष्टात सुनते हो मगर उनका अनुकरण नहीं करते यह तुम्हारे हकमें ठीक नहीं है हे मनुष्यो ! तुमने श्रीगुरुमहाराजकी अमृत-मय देशनासे श्रवण किया होगा कि मनको वशमें न करनेसे नटणीके साथ विषय भोगकी लालसासे कुल भ्रष्ट कराथा उसी नटवेके स्वरूपमें नाचनेवाले एलायची कु-मरने मनको वश किया तो नाचते नाचते केवलज्ञान प्रगट हो गया हे भाई ! नृत्यकलामें मनको एकाग्र नहीं कियाथा, मगर एलायची

कुमारने नाचते नाचते मुनिराजको देख कर अर्हत ध्यानारूढ हुवा था और संसारकी वासना नष्ट होगइ थी जिससे केवल प्रगट हुआ.

और आपने सुना होगा कि आरिसे भुवनमें मनकी एकाग्रता करनेसे भरतेश्वर चक्रवर्त्तिने केवल प्राप्त कियाथा. इस तरह जैनशास्त्रोमें गजसुकमाल, मैतार्य मुनि स्कंधाचार्य आदिके व-होतसे द्रष्टांत मोजुद हैं, ज्यादा जाननेकी खवाहीशवाले जि-ज्ञासुओंको मुनिराजोंसे दरियाफ्त करना.

सभ्य पाठको ? ऊपरका हाल सब समझमे आगया होगा. मगर तुम अपने मनको वशमें रखनेका प्रयत्न किये जाना और जब आपका मन आपसे प्रतिकूल हो तो वीतराग देवके समक्ष जाकर अर्ज किया करना कि जिससें आपकी प्रवृत्ति स्वच्छ हो.

एकदा श्री आनंदघनजी महाराज मन वशमें न आनेसे श्री कुंथुनाथ स्वामीसे वीनती करते हैं सो पाठकोंके समझनार्थ नीचे लिखता हुं उसें पाठक ध्यान पूर्वक पढें.

॥ राग गुर्जरी "अंबर देहो मुरारि" ॥ यह देशी ॥.

मनडुं किम ही न वाजे हो कुंथु जिन,
मनडुं किम ही न वाजे,
जिम जिम जतन करीने राखूं,

तिम तिम अल्गु भाजे हो ॥ कुंथु जिन ॥ १ ॥
रजनी वासर वसती उजड,
गयण पायालें जाय, ॥
साप खाये ने मुखड्ड थोथु,
एह उखाणो न्याय हो ॥ कुंथु जिन ॥
मुगति तणा अभिलाषी तपिया,
नान ने ध्यान अभ्यासे ॥
वयरिड्डु कइ एहवु चिंते,
नाखु अवले पासे हो ॥ कुंथु जिन ॥ ३ ॥
आगम आगमधरने हाथे,
नावे किण विध आकु ॥
किहां कणे जो हठ करी हटकु,
(तो) व्याल तणी परें वाकु हो कुंथु जिन ॥ ४ ॥
जो ठग कहु तो ठगतो न देखु,
शाहुकार पण नाहि ॥
सर्व माहें ने सहुथी अल्गु,
ए अचरिज मन माही हो ॥ कुंथु जिन ॥ ५ ॥
जे जे कहु ते कान न धारे,
आप मते रहे कालु ॥
सुर नर पंडित जन समजावे,
समज न माह रोमालु हो ॥ कुंथु जिन ॥ ६ ॥

में जाण्युं ए लिंग नपुंसक,
सकल मरदने ठेले ॥
बीजी वाते समरथ छे नर,
एह ने कोइ न झेले. हो ॥ कुंथु जिन ॥ ७ ॥
मन साध्युं तेणे सघलुं साध्युं,
एह वात नही खोटी ॥
अमके साध्युं ते नवि मानुं,
एह वात छे मोटी हो ॥ कुंथु जिन ॥ ८ ॥
मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं,
ते आगम मतें आणुं ॥
आनंदघन प्रभु माहरुं आणो,
तो साचुं करी जाणुं हो ॥ कुंथु जिन ॥ इति ॥

प्रिय पाठक ? योगीराजका मन वश न हुवा हो ऐसी हालतमें आनंदघनजी महाराज श्री कुंथुनाथ स्वामी (श्री सत्तरमें तीर्थंकर) से बीनती करते हैं कि हे विभो ? में अनेक ध्यान मौनादि कष्ट क्रिया करकें मनको आपके चरणमें लगाना चाहता हुंः परंतु पापी मन अन्य स्थलमे लग कर आपके चरनमे नहीं लगता और ज्यों ज्यों मै इस मनको कब्जे करता हूं त्यौं त्यौं यह दूर भगता जाता है, हे नाथ ? रात्री दिवस (दिन) उजाडमें वस्तीमें, पातालमें और आकाशादि स्थलमे मन चक्कर खाता फिरता है; मगर किसी स्थल पर इसकी गति

(वेग) स्थिर नही होती, क्यों कि इसकी चचलता अत्यंत है और यह पापी जगह जगह दोडता है, मगर इसको सर्पकी तरह सबूरी नहीं आती, जैसे व्यवहारमें कहते हैं कि सर्पने काट खाया, मगर असली वात सोचे तो खाया क्या ? बेचारे के मुहमें एकभी कवल नहीं आता इस लिये कहा है कि साप खाय ने मुखडु थोथु, सर्प खाता है मगर उसका मुह तो खाली रहजाता है इसी मुवाफिक अत्यन्त वेग चपल मन भटकता है मगर तृष्णा पूरी नहीं होती

हे कुंथुनाथ स्वामी ? आपके शासनमें अनेक मोक्षके अभिलाषी ज्ञान ध्यान सहित तपश्चर्या करते हैं और मनको वश करनेके लिये प्रयत्नभी करते हैं मगर स्वात्माका स्वरूप प्रगटाने वाले महामुनिको यह पापी मन ऐसी दुश्मनाइसे प्रपच जालमें डाल देता है कि विना प्रयाससे भवभ्रमण करते फिरो प्यारे वाचक ? आपको मालुम होगा कि मनरूपी दुश्मनने श्री प्रसन्नचद्र राजर्षि पर कैसी जाल रचीथी ? वह दृष्टान्त पाठकोंके समझनार्थ सक्षेपसे नीचे दरज करता हूं

श्री क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगरमें विशाल भुजबलवाले महाराज शत्रुदमनमें कुशल और न्यायके नमूने जिनकी शोभा अत्यन्त विस्तीर्णको प्राप्तथी ऐसे श्रीप्रसन्नचद्र राजा राज करतथे एकदा वीरभगवानको समवसर्य सुनकर प्रसन्नचद्र राजा वदन

करने पधारेथे. श्री भगवंत भी योग्य अवसर देखकर धर्मदेशना देने लगे और राजाको वैराग्य प्राप्त होनेसे अपने लघुवयके पुत्रको राज्य सोंपकर आप दिक्षा ग्रहण करते हुवे और अनेक परिश्रम करनेसे मुनिश्री राजर्षी कहलाये.

एकदा वह राजर्षी धर्मतत्त्वका चिंतवन करते हुवे शुक्ल ध्यानारूढ शुभ भावना मय होकर राजग्रही नगरीके समीप कायोत्सर्ग ध्यानमें खडेथे, इस अवसरमें श्री वीरभगवान समो सर्ये श्रवन कर जनसमूह झुंडके झुंड दर्शनार्थको जारहे थे. उन मनुष्योंमे दो पुरुष क्षितिप्रतिष्ठित नगरको भी जा रहे थे. उनमेंसे एक मनुष्य अपने पुराणे राजाको देखकर बोला कि हे भाइ ! इन राजर्षीको धन्य है कि जो राज्यलक्ष्मी वित्त-वैभवादिको त्यागके चारित्र ग्रहणकर विषम मार्गमें चलनेको प्रवृत्त हुवे. इस तरह सुनकर दूसरा मनुष्य बोला कि–अरे इन्हें धन्यवाद काहेका ? यह तो धिःकारने तुल्य है क्यों कि इन्होंने कुछभी सोचे समझे विना अपने लघुवयके पुत्रको राज्य सिपुर्द कर योगी होगये और अब इनके दुश्मन वेचारे बालकको सताते हैं और प्रजा सर्व तबाह होगइ है. तो इन्हें क्या धन्यवाद देना !

प्रिय पाठक ! दोनों पुरुष बात करते करते भूमि उलंघन करगये और इधर संसारसे निवृत्त होनेपर भी दूतकी बात सुन

पुत्रके मोहमें फसकर प्रसन्नचंद्र राजर्षी ध्यानभ्रष्ट हुवे और शरीरमें क्रोध व्याप्त हुआ मनही मनमें लडाइ करनी शुरूकी और दुश्मनोको मारने लगे इतनेमें वीरप्रभुके दर्शनार्थ जाते हुवे श्रेणीक राजा मुनिको देखकर वंदना करने लगे-मगर मुनिने धर्मलाभ नहीं दिया जिससे श्रेणीक राजाने सोचा कि मुनि शुद्ध ध्यानमें लयलीन हैं ऐसा विचारकर वीरभगवानके समीप पहुंचकर श्रेणीक महाराज प्रश्न करते हुवे कि हे भगवान् ? मेने देखे उस हालतमें प्रसन्नचंद्र राजर्षी आयुष्य पूर्ण करे तो कौनसी गतिमें जाय ? प्रत्युत्तरमें प्रभु कहते हुवे कि-हे श्रेणीक ! सातमी नर्कमें उत्पन्न होवे ऐसा सुन श्रेणीक राजा विस्मय होकर विचारमें प्रवेश हुवे.

पाठको ? श्रेणीक राजा विचारमें है चलो अपन प्रसन्नचंद्र राजर्षीकी तरफ चलें हे भाइ ! मुनि तो प्रचंड युद्धमें लगे और मनही मनमें सर्व शत्रुओंका वध करने लगे और एक प्रधान बाकी रहा, मगर शस्त्र टूटजानेसे शिरपरके मुकुटसे मारने की तैयारी कर, मुकुट लेनेको शिरपर हाथडाला तो केश लुंचित शिर हाथ आया और भ्रष्ट हो गये. वह महात्मा सावधान हुवे अपनी आत्माको धिक्कारने लगे, ज्ञान द्रष्टी जाग्रत हुइ, विपर्यास भाव नाश हुवा और संवेग प्राप्त कर ससार भ्रष्ट होने वाले मुनि कहने लगे कि-किसका राज्य, किसका परिवार, यह सब अस्थिर है और मैंने प्रथमव्रतका भंग किया

मात्मा ! यह आपसे विमुख रहता है. वाचकवृंद ! इस लिये मनको ठग कहा जाय तो क्या हर्ज है ? मगर प्रत्यक्षमें ठग मालुम नहीं होता और साहुकार भी मालूम नहीं होता; क्योंकि गुप्त रीतिसे पांचों इंद्रीयमें मिल रहा है और इंद्रीयें अपना अपना विषय भोगती हैं तो यह बीचमेंही प्रपंचजाल रचदेता है और सबके शामिल व सबसे अलग दोनो बातोंमें मुस्तेज यही एक आश्चर्य तुल्य है.

आनदघनजी महाराज कहते हैं कि हे विभो ! में जब इसे हितशिक्षा कहता हुं तो हृदय तटपर स्थिरही नहीं होने-देता और स्वछंदाचर्णमें मग्न होकर आर्त्त रौद्र ध्यानमें प्रवृत्त रहता है वास्ते हे भगवान ! में इस मनको कैसे समझाउं ? !

वाचकवृंद ? महात्माका फरमान सत्य है क्योंकि देवता जो सर्व शक्तिमान हैं—वहभी सर्व कार्यमें समर्थ है. मनुष्य ऐसे होते हैं कि जिनसे सिंह अष्टापद जैसे जानवरोंकोभी भय पैदा होता है. और पंडित जो वादविवाद करनेमें समर्थ है ऐसे मनुष्यसेभी वश होना दुष्वार है मगर अभ्याससे सब सहल होसक्ता. यह न्यायशास्त्रका वचन याद करके अभ्यास-को मत छोडो, कहा है कि.

अभ्यासेन क्रिया सर्वा ।
अभ्यासात्सकला कला ॥

अभ्यासाद ध्यान मौनादि ।
किमभ्यासस दुष्करम् ॥ १ ॥

अर्थ–अभ्याससें सर्व प्रकारकी क्रिया और सब तरहकी कला व ध्यान मौनादि व्रत होसक्ते हैं और दु सा य कार्यभी अभ्याससे मुशक्लि नही है

हे विभो ? मन यह नपुसकलिंग है मगर पुरुपलिंग वाले मनुष्यभी इसको सा य नही कर सक्ते हैं पुरुपवर्ग तप जपमें, कष्टक्रियामें, जल तैरन विद्यामें, आकाशमार्ग जानेमें विद्युत प्रगटानेमें, भूत पिशाच डाकिनीको वश करनेमें समर्थ है, मगर नपुसक लिंग मनको वश नही कर सक्ते. और जब सुगुर समझाते है तो यह मन ऐसा चतुर बन जाता है और नर्कादिके दुःख सुनते वरत ऐसे उच्चार करता है कि करे उसे धन्य है हमारे जैसे पापियोंकी गति न जाने कैसे होगी ऐसी मीठी मीठी वातेकर उपाश्रयमें तो दुनिया भरके समझदार बनजाते है और उपाश्रय बहार निकले कि अरे साधु महाराजका फरतव्य सदुपदेप देनेका है और अपना फरतव्य श्रवण करनेका है ऐसी वाक्य पटुता चलाने लगाता है और जब शास्त्रानुकूल प्रवर्त्तन करनेका समय आता है तो बिल्कुल विमुख हो बैठता है. इस लिये योगीराजभी फरमाते हैं कि हे प्रभु ! जिस कदर आपने अपना मन वश किया वैसेही मेरा क-

र दो तो में मन वश किया सच्चा समझुं. यद्यपि आगमसे में समझ गया हुं कि आपने मन वश किया मगर मेराभी मन वश कर दो तो में स्वतः अनुभव करुं.

हे इस लेखके वाचकवृंद ? कृपादृष्टी कर उक्त लेखको बारबार पढकर आनंदघनजी महाराजका अनुकरण कर मनको वशमें करनेका प्रयत्न करना और जिनभक्तिमें लयलीन रहकर स्वात्माका उद्धार करना यह एक सज्जनके सेवक और दुर्जनके मित्रकी वीनति है, और जो कुछ अयोग्य लिखनेमें आया हो उसके लिये क्षमा प्रार्थी हुं-इत्यलं विस्तरेण.

ता. क -इस लेखमें किसी बातका पुनरावर्तन करनेमें आया है यह खास पाठकोंके लाभार्थ समझना.

श्रीयुत् लक्ष्मीचंदजी घीया

प्राविन्शियल सेक्रेटरी श्री जैन श्वेताम्बर
कानफ्रेन्स (परतापगढ़-मालवा निवासी)

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

जैनशब्दका महत्व

प्रथम खण्ड

"जैन" शब्द कहतेही चित्त कैसा प्रफुल्लित होजाता है मानो सूर्यके उदयसे कमल खिल गयाहो, अहा! यह सुंदर और शुभ शब्द किसने उत्पन्न किया! और इसका ऐसा प्रभाव क्यों हुआ! वास्तवमें आधुनिक समयके समान प्राचीन कालमें मीठी बात और फीके पकवान नहींथे, प्राचीन कालमें जिस वस्तुका जैसा गुण होताथा वैसाही उसका नाम रक्खा जाताथा वर्तमान समयानुसार, जैसे नाम तो रक्खा दीनदयाल और क्षणभरमें निरापराधी पशुओंका प्राण लेडालते हैं, नाम रक्खा नयनसुख और आखके अंधे, अतएव आज इस शब्दका सच्चा महत्व बताते हैं

"जैन" धर्मके योग्य कौन २ व्यक्ति होसक्ति हैं और जो जगतमें सच्चा सर्वोत्तम मुक्तिदाता धर्म है, उसका नाम किसने "जैन" धर्म रखखा इस बातकी प्रथम आवश्यक्ताहै.

जैनधर्मका प्रथम प्रचार.

प्रथम जैनधर्मके अंदर इस ससारको द्रव्यार्थि नयकि अपेक्षा अनादि अनंत अर्थात् नित्य और पर्यायार्थिक नयकि

अपेक्षा अनित्य अर्थात् परिवर्त्तित मानते हैं. इसी तरह अनन्ता कालचक्र व्यतीत हुवे और होते रहेंगे, इसी प्रकार प्रत्येक कालचक्रमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दो विभाग हुआ करते हैं, जिन प्रत्येक विभागोंमें चौवीस २ तीर्थंकर याने सच्चे स्याद्वाद दया धर्मके प्रवर्त्तक हुआ करते हैं यानि देवरचित समवसरणमें विराजकर द्वादशांगीका कथन करते हैं, जिसके द्वारा अनेक जीव मुक्तिको प्राप्त हुवे और होते रहेंगे.

इस उत्सर्पिणी कालमें पितामह युगादि देव प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामीही इस (अद्भुत शब्द) धर्मकी नीव रखनेवाले हुवे हैं, उन्हींके प्रभावसे अनेकानेक जीव इस "जैनधर्म" के प्रतिपालन करनेसे मुक्तिके भाजन हुवे हैं. इसी प्रकार सब तीर्थंकर* इस महा प्रभावशाली धर्मका प्रचार करते हुवे अनेक जीवोंको इस दुःखगाह भवार्णवसे पार उतार गये हैं.

---

* ऋषभदेव १ अजीतनाथ २ संभवनाथ ३ अभिनंदन ४ सुमतिनाथ ५ पद्मप्रभु ६ सुपार्श्वनाथ ७ चंद्रप्रभु ८ पुष्पदन्त ९ शीतलनाथ १० श्रेयांसनाथ ११ वासुपूज्य १२ विमलनाथ १३ अनंतनाथ १४ धर्मनाथ १५ शान्तिनाथ १६ कुन्थुनाथ १७ अरनाथ १८ मल्लिनाथ १९ मुनिसुव्रत २० नमिनाथ २१ नेमनाथ २२ पार्श्वनाथ २३ महावीर (वर्द्धमान) २४.

अंतिम तीर्थंकर वीरप्रभुने इस धर्मका पुर्ण उद्योत किया और उनके निर्वाण-पद प्राप्त होनेके बाद परमोपकारी आचार्योंने अपने ज्ञान-बलसे आधुनीक समयकी स्थिति मालूम कर भोले व भव्य जीवोंके हितार्थ या यों कहिये कि हमको महान गुणी बनानेके लिये ग्रंथ शास्त्र लिखे कि जिनके "जैनधर्म" की पताका भारत वर्षमें उडरही है और चिरकाल तक उडती रहेगी अब यह बतलाना आवश्यक है कि "जैनधर्म" को प्रत्येक तीर्थंकराने और उनके बाद पूज्य आचार्योंने किसतरह प्रवर्ता, और इस पवित्र धर्मका क्या उद्देश है और इस शुभ धर्मको अंगीकार करनेवालोंको क्या होता है यह ऋगसे बतलाया जाता है

प्रथमसे अंतिम तीर्थंकर तक उनके बाद आचार्योंने इस धर्म एकसा प्रचार किया यानि प्रथम तीर्थंकरने जैसे तत्त्व कथन कियेथे वैसेहि सब तीर्थंकराने प्रवर्त्ताये, गणधरोने सूत्र रचे और आचार्योंने पुस्तकारूढ किये, उसमें किसी तरहका परिवर्तन नहि हुआ, इसहीसे इस महत्व धर्मके प्रचारक पिता-

* यदि कोई शंका करे कि जब जैन धर्ममें परिवर्तन नहि हुआ तो वर्त्तमानमें जो फिरके जैनोयोंके नजर आते है ये क्यों ? उत्तर-तीर्थंकरोंके कथनानुसार अर्थात् द्वादशांगीके अनुसार जो अभीतक सच्चे धर्मको प्रवर्त्तते है वहा जैनी है, बाकी जैनाभास समझना चाहिये

म्रह आदिनाथ भगवान कहे जासक्ते हैं, प्राचीन समयमें शास्त्र पुस्तकारूढ करनेकी आवश्यकता नहींथी; क्यों कि उनकी विचारशक्ति (याददाश्त) बहुत बड़ीथी.

पूर्वाचार्योंने विचार किया कि भविष्य जीवोंकी वैसी विचारशक्ति नहीं होगी अतएव प्रथम ताड़पत्र व कागजोंपर शास्त्रोंका लिखा जाना आरंभ हुवा और उस समयके शास्त्र अभीतक बड़े २ भंडारोंमें उपस्थित हैं.

इन शास्त्रोंका पवित्र उद्देश भव्यजीव मुक्ति-मार्गको सरलतापूर्वक प्राप्त कर सके यही है, अब यह बताया जाता है कि कर्म रूपी शत्रुओंको किन २ कर्त्तव्योंसे जीतकर मुक्ति मार्ग प्राप्त हो सक्ता है.

जैनशास्त्रोंके पवित्र सिद्धान्तकी समालोचना एक क्या अनेक जिव्हासेंभी सर्वज्ञ कथित होनेसें नहिं होसक्ती, और उनपर अपनी सम्मति प्रकाशकरनी एवम् टीका टिप्पणी करनी मानो सूर्यको दीपक बताना है, समकालिन तो क्या बड़े २ आचार्यभी पुर्ण रीतिसें इन पवित्र शास्त्रोंकि महिमा वर्णन नहिं कर सक्ते, तो फिर हमारी स्वल्प बुद्धि तो इस महिमाको बतानेके लिये मानो उदधिके सामने बिन्दु है, पवित्र जैनशास्त्रोंमे तीन मुख्य तत्व हैं जिन्होंके आलम्बनसे अटल मुक्तिका सुख प्राप्त हो सक्ता है, देव, गुरु, धर्म इन तीन

तत्वोंकि कुछ महिमा इस अवसर पर कही जाती हैं.

देव-प्रथम तो यह बताना परमावश्यक है कि जैनी कैसे देव मानते हैं, जैनी उन्हीं देवको मानते हैं जिन्होंने मुक्तिका अखड सुख राग द्वेपादिसे रहित होकर प्राप्त कर, तीर्थंकर पदको सुशोभित किया है उनके उत्तम गुणकी विशेष महिमा पीछेके (व्याख्याको) खडमें प्रकाशित की जायगी.

गुरु-सद्गुरु वही होते है जो जैनशास्त्रों के पवित्र सिद्धातानुसार शुद्धसयम पचमहाव्रत पालकर मुक्ति प्राप्त करनेका साधन करते हैं यह अवसर समझकर पहेले "जैनीयोंके महाम त्र" कि सक्षेप समालोचना की जाती है-महा मत्र जिसको नवकार मत्रभी कहते हैं उसको सस्कृत भाषामें इस तरहपर कहते है "नम अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्य" यह पच परमेष्ठी मोक्ष प्राप्त करनेके लिये मुख्याधार भूत है, इसका भावार्थ यह है कि 'अर्हन्' जो तीर्थंकर होने वाले है 'सिद्ध' जो मोक्ष प्राप्त कर चुके है 'आचार्य' 'उपाध्याय' 'साधु' यह वर्त्तमानमें भव्य जीवों को भवोदधिस पार उतारनेके लिये स्टीमरके केप्टन समान है. इस आर्य देशम विचर रहे हैं, जैनी लोग इन्हींको सद्गुरु कहते है और उनम शास्त्रानुसार जब गुण देखे जाते है तो सब उचित गुणानुसार पदवि देते हैं अर्थात् जिनमें छत्तीस

गुण होते हैं वे आचार्य, व पच्चीस गुणवाले उपाध्याय व सत्ताईस गुणवाले साधु पदविसें सुशोभित होते हैं. इन समस्त गुणोंको इस स्थानपर बतानेसे लेख बड़ा होजानेका और दूसरी आवश्यक बात न लिखे जानेका भय है; अतएव साधु के सत्ताईस गुण संक्षेपः बताये जाते हैं (१) एक आत्म स्वरूप जानने वाले (२) द्विविध धर्मोपकारक (३) रत्न त्रीकके बताने वाले (४) चार कषायनिवारक (५) पंच महाव्रत धारक (६) छःकाय पालने वाले (७) सप्तभय निवारक (८) अष्ट कर्मोंको जीतने वाले (९) नव विध ब्रह्म गुप्त पालने वाले (१०) दशविध जति धर्मके धारक (११) ग्यारह श्रावककी पडिमा व्रत कराने वाले (१२) बारहव्रत श्रावककों उचराने वाले (१३) तेरह काठियाजीपक (१४) चौदह पुर्व विद्याके उपदेशक (१५) पन्द्रह भेदके ज्ञाता (१६) सोलह परिसह सहन करने वाले (१७) सतरह प्रकारके संयम पालने वाले (१८) अठारह दोष निवारक (१९) उंनीस काउस्सग्गके दोष निवारक (२०) बीस स्थानक आराधक (२१) इक्कीस श्रावकके गुण जानने वाले (२२) बाईस परिसह जीपक (२३) तेईस विषय निवारक (२४) चौविस जिन आणाधारी (२५) पच्चीस भावना भावक (२६) छव्विस दशकल्प व्यवहारके धारक (२७) सत्ताईस मुनिगुण संयुक्त ऐसें

करके ३६–२५–२७ गुण होते है वही सद्गुरु होते हैं. इनाकि पुनः समालोचनाकी आवश्यक्ता नहीं. वाचकवृंद ! ऊपर बतलाये हुवे २७ गुणसे मालूम कर चुके होंग कि "जैन" शास्त्रोके कैसा पवित्र उद्देश व नियम है ? यह तो सबको विदित है कि बिना परिश्रम किये कोई वस्तुभी नहिं प्राप्त होती, केवल ईश्वर पर आधार रखने वाले वे स्वयम् परीक्षा कर सक्ते है कि जब ईश्वर उनकी रक्षा करने वाला है तो उनको अपने हाथ पैरभी नहि हिलाने चाहिए–नहि, नहिं, पाठकगण ! यह किसी अनभिज्ञका बताया हुआ मार्ग है और उसको वेही लोग मानते है जो निरे आलसी हैं और अज्ञानका पर्दा जिनकि बुद्धिके सामने लटका हुवा है

आप इस छोटेसे दृष्टान्तसे समझ जायगे कि ईश्वर पर आधार रखना मात्र एक भूल नहि तो क्या है–यानि अपन गृह कार्यके लियेभी एक नौकर रखते है उसको तनख्वा देते हुवेभी अनेक बार कहते हैं तब वह काम करता है, तो फिर ईश्वर पर अपना ऐसा क्या जोर है ? या ईश्वर अपना ऐसा ऋणी क्योंकर है ? कि अपन तो बैठे २ गप शप चला रहे हैं और ईश्वर आपका मेनेजर (व्यवस्थापक) बनकर आपकी सेवा करे, बन्धुवर्ग ! यह एक मात्र धोखेकी टट्टी है–बिना परिश्रम कोईभी वस्तु प्राप्त नहि हो सक्ती (कईलोग ईश्वर

को कर्त्ता मानते हैं; मगर यह ठीक नहिं इसका विशेष वर्णन्* देखना हो तो जैनतत्वादर्श या अज्ञानतिमिर-भास्करमें देख लीजिये, तो फिर मुक्तिका अखंड सुख प्राप्त करना केवल वातोंसें नहीं हो सकता. जो मोक्षाभिलाषी हैं उनको. उपरोक्त वातोंके सिवाय महान् कष्ट व उपसर्ग सहन करनेही पड़ते हैं और जब वे इन कष्ट कर्मोंसे विजय प्राप्त करलेते हैं तबही वे मोक्षगामी होते हैं

धर्म-धर्म दो प्रकारका होता है यानि निश्चय (आत्मिक) धर्म व व्यावहारिक धर्म. व्यावहारिक धर्म २ प्रकारका होता है १ लौकिक २ लोकोत्तर. लौकिक धर्म उसको कहते हैं जिसको कि नीति पूर्वक चारो वर्ण अपने २ कर्त्तव्योंमें प्रवर्त्तते हैं यानिं क्षत्रियोंका धर्म नीति मार्ग व सत्य धर्मकी रक्षा कर अनीतिका दमन करना, वैश्यका धर्म सद् व्यवहार करना (व्यापार) करनेका इत्यादि. लोकोत्तर धर्म उसको कहते हैं कि देवगुरु आदिकी भक्ति व दान शील तप भावना यह चार प्रकारसे धर्म साधन करना अर्थात् परोपकार क्षमा इन्द्रियोंका

---

* यदि तर्क किया जावे कि शुभाशुभका फल कर्मसें होता है तो इश्वरकी अपेक्षा क्यों करना चाहिए ? उत्तर-इश्वरके स्मरण व भक्तिसे पुण्यबंध व कर्मोंकी निर्जरा होनेसे परम सुख प्राप्त होता है मूर्त्तिपूजाकाभी यह कारण है.

दमन, कषायका जीतना इत्यादि इनके वगैर, मोक्ष प्राप्त नहिं हो सकता, अब इसका कुछ विवर्ण आपको भेट किया जाता है—धर्म उसहीको कहते है जिसमें दयाहो. यों तो सर्व धर्मावलम्बी अपने २ धर्मको दयामय बताते है जैसे इगलेंडमें प्राणी रक्षक मडली है (यहभी अपनेको दयामय बताती है) उसके दयाके दृश्यको देखिये, यह मडली प्रत्येक प्राणीयोंकी रक्षा का प्रयत्न करती है और जब देखती है कि इस प्राणीका बहुत उपाय करने परभी बचनेकी आशा नहीं है तो उसको गोली मारदी जाती है ताके उसके जीवको कष्ट नहो—भारतवर्षीय देवी देवता तथा क्रिया अनुष्ठान यज्ञादिके बहानेसे पशु वधमें धर्म मानते है—कोइ हिसक जीवके मारनेमें धर्म मानते है इत्यादि कई प्रकारके लोक अन्यान्य स्वार्थ साधनमेंही धर्म मानते है, परन्तु सच्चा धर्म तो वही कहा जाता हैं जिसमें यथा नाम तथा गुण है. जैनी उसीही पवित्र व सच्चे धर्मके अनुयायी है—और वह 'अहिंसा परमो धर्म' इस सब्दसें जगतमें विख्यात हो रहा है—कइएक अन्यान्य विधर्मी इसका (अहिंसा परमो धर्म का) मन गढन्त अर्थ लगाकर भोले जीवोंको भ्रममें डाल देते है परन्तु इसका सच्चा अर्थ तो यही है कि 'हिंसा नहिं करना यही परम धर्म है' यानि दया वगैरः धर्मही नहि (या यों कहो कि दयामेंही धर्म है !) जैनधर्म तो ठीक, अन्य धर्मीयोंनेभी कहा है कि 'अहिंसा लक्षणोधर्मः

अधर्मो प्राणिनां वधः । तस्मात् धर्मार्थिना वत्स कर्त्तव्या प्राणीनां दया ॥ ” इस जगह थोडेसे जैनशास्त्रोंके तथा जैनविद्वान पंडितोंके वाक्योंके दृष्टान्तके स्थानमें अन्य मतावलम्बी विद्वानोंकी (अहिंसा परमो धर्मः पर) सम्मति वतलानाही उचित होगी.

श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरंसका तीसरा अधिवेशन जब वड़ोदेमें हुआ उस वक्त ३० नवम्बर सन् १९०४ ई० को जगद्विख्यात भारतभूषण लोकमान्य पंडित बालगंगाधर तिलकने जो मरहटी भाषामें व्याख्यान दियाथा उसका सारांश वतलाते हैं:—

“ जैन धर्मकी प्राचीनता ”

जैन धर्म प्राचीन होनेका दावा करता है—जैन धर्म विशेषकर ब्राह्मण धर्मके साथ अत्यंत निकट संबंध रखता है, दोनो धर्म प्राचीन और परस्पर संबंध रखने वाले हैं. जैन हिन्दूही हैं. कितनेक लोगोंने भेद वतलाया है पर वह यथार्थ नहिहै. जैन धर्म और ब्राह्मणधर्म हिन्दु धर्मही है, ग्रंथों तथा सामाजिक व्याख्यानोंसें जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है—यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है, और इस विषयमें ऐतिहासिक अनेक प्रमाण हैं और निदान इस्वी सनसे ५२६ वर्ष पहलेका तो जैनधर्म सिद्ध है ही, जैन धर्मके महावीर-

स्वामीका जो सवत् चलता है उसको २४०० वर्ष हो चुके है गौतम बुद्ध महावीरस्वामीके शिष्यथे* यह ग्रथोंसे स्पष्ट निश्चित होता है जिससे माऌम होता है कि बौद्ध-धर्मकी स्थापना होनेके पहले जैन धर्म चमक रहाथा, यह बात विश्वासनीय है, गौतम और बौद्धके इतिहासमे २० वर्षका अन्तर है चोवीस तीर्थङ्करोंमे महावीरस्वामी अतिम तीर्थंकरहै. इससेभी जैन धर्मकी प्राचीनता निश्चित होती है—बौद्ध धर्मके तत्व जैन धर्मके तत्वोंका अनुकरण है

अहिंसा परमो धर्म इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्मपर स्मरणीय (मुहर) छाप मारी है—यज्ञार्थ पशुहिंसा आजकल नहिं होती है यही एक भारी छाप अन्य धर्मियों पर जैन धर्मने मारी है, पूर्व कालमे यज्ञके लिये असख्योकी हिंसा होतीथी इसका प्रमाण अनेक ग्रथोंमे है, परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण धर्मसे विदाइ लेजानेका महापुण्य जैन धर्मको ही है

" झगडेकी जड "

ब्राह्मण धर्म और जैन धर्म दोनोंमे झगडेकी जड हिंसाही

---

* यह जैन शास्त्रका लेख नहिं है क्यों कि गौतमस्वामी और गौतमबौद्ध जुदे जुदे हुवे है.

वह प्रायः नष्ट होगइ और इस रीतिसें ब्राह्मण धर्मको अथवा हिन्दुधर्मको जैनधर्मने अहिंसा धर्म वताया है, यदि जैन धर्म न होता तो आज 'अहिंसा परमो धर्मः की' पताका संसारमें खड़ी नहिं रह सक्ती.

इसके अतिरिक्तभी अनेक दृष्टान्त उपस्थित है कइ अग्रेजों नेभी समय २ पर इस परम पवित्र धर्मपर अपने २ आशयको प्रकट कर अपनी वुद्धिका परिचय दिया है उन सवका वर्णन करना स्थान संकोचसें अनुचित है.

महाशय ! उपरोक्त वाक्योंसें आपका जैन धर्मका महत्व विदित होगया होगा, जिन सज्जनोको विशेष हाल सरलता पुर्वक समझनेकी इच्छा होवे जैनतत्वादर्श तत्वनिर्णयप्रासादादि ग्रंथोंसे माछुम करसक्के हैं ॥ शम् ॥

॥ प्रथम खंड समाप्त ॥

जैन शब्दकी व्याख्या.

द्वितीय खण्ड.

स्याद्वादो वर्त्तते यस्मिन् पक्षपातो न विद्यते ।
नास्त्यन्य पीडनम् किंचित् जैन धर्म स उच्यते ॥

अब आपको सक्षिप्त जैन शब्दकी व्युत्पत्ति और उसकी व्याख्या बतलाइजाती है

'आनदगिरिकृत' 'शकरविजय' में जैन शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है "जीति पद वाच्यस्य नेति पदेन पुनर्भव तस्याज्जन्म शून्य' जैनः" अर्थात् मुक्तात्माका पुनर्जन्म नहीं होता, जैन शास्त्रोंमें ऐसी व्युत्पत्ति की गई है कि "राग द्वेषादि दोषान् वा कर्म शत्रुञ्जयतीति जिनः तस्यानुयायिनो जैन'" अर्थात् जिन्होंने काम क्रोधादि अठारह दोषोंको अथवा ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनीय, अन्तराय आदि कर्म शत्रुओंको जाते वे 'जिन' और उनके उपासक 'जेन' कहलाते हैं, यानि जो राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ काम अज्ञान रति अरति शोक हास्य जुगुप्सा अर्थात् घिणा मिथ्यात्व (अष्टादश दूषण) ईत्यादि भावशत्रुओंको जीतते हैं उनको "जिन" कहते हैं, यह 'जिन' शब्दका अर्थ है (ऐसे जिन इस उत्सर्पिणी कालमे २४ हुवे है जिनकों तीर्थ प्रवर्तानेसें तीर्थंकर कहते है, ऐसे पुर्वोक्त 'जिन' की जो शिक्षा अर्थात् उत्सर्गापवाद सप्तभगी चार निक्षेप पट द्रव्य नवतत्व नित्यानित्य आदि अनेक नयात्मक स्याद्वाद रूप मार्ग द्वारा हितकी प्राप्ति अहितका परिहार—अगिकार और त्याग करना तिसका नाम 'जिन शासन' है और "जिन शासन" कि आज्ञानुसार

चलने वालोंको " जैन " कहते हैं. जो लोग जिनाज्ञा विरुद्ध चलते हैं वे कदापि मोक्षगामि नहिं हो सक्ते हैं और जो मनुष्य जैनी होकर जैन शास्त्रोंके प्रमाण माफिक नहिं चलते वे सच्चे जैनी नहिं कहे जासक्ते हैं.

" जिन शासनका सार क्या है ? "

जिन शासनका सार आचारंगादि द्वादशाङ्गी है, इसका सार यह है कि देशविरति[1] (श्रावक धर्म) व सर्वविरति[2] (मुनि धर्म) चारित्र अंगिकार करना अर्थात् प्राणीवध १ मृषा-वाद २ अदत्तादान ३ मैथुन ४ परिग्रह ५ रात्रिभोजन ६ इनका त्याग करना, अथवा चरण सत्तरीके ७० भेद और

---

१ यह स्याद्वाद सर्वज्ञ जैनधर्म पालन करनेका सर्वज्ञातिके मनुष्यही नहिं किन्तु पशु पक्षी आदिभी अधिकारी हैं यह बात शास्त्रोंमें प्रकट है. वैश्यादि ज्ञातिके लियेही इस धर्मको साहसकर कह बैठना अनभिज्ञता है. तात्पर्य यह कि चारोंही वर्ण सर्व ज्ञातिमेंसे कोईभी इस पवित्र धर्मको अंगिकार कर सक्ते हैं.

२ स्थूल प्राणातिपातव्रत १ मृषावादव्रत २ अदत्तादानव्रत ३ मैथुनव्रत ४ परिग्रहव्रत ५ दिग्व्रत ६ भोगोपभोग ७ अन-र्थदण्ड ८ सामायिकव्रत ९ दिशावकाश १० पोषदोपवास ११ अतिथि संविभाग १२ यह श्रावकके द्वादशव्रत हैं.

करण सत्तरीके ७० भेद ये एकसौ चालिस प्रकारके मूल गुण और उत्तर गुणको अंगिकार करें उसको सर्वविरति चारीत्र हैं उस चारित्रका सार निर्वाण है अर्थात् सर्व कर्म जन्य उपाधिसे रहित होना उसको निर्वाण कहते है, उस निर्वाणका अव्याबाध अर्थात् शारीरिक और मानसिक पीडासें रहित सदा परमानन्द स्वरूपमें मग्न रहना यह पूर्वोक्त जिन शासनका सार है.

" जैनशास्त्र "

यों तो जैन सिद्धान्तके अनेक ग्रथ है, परन्तु मुख्य ४५ आगमोंमें ११ अग, १२ उपाग, १० प्रकीर्णक (पयन्ना) ६ छेद ४ मूलसूत्र और २ अवान्तरसूत्र है (प्राचीन ग्रथोंके नामभी बारह अग चौदह पुर्व हैं परन्तु वे इतने वडेथे कि उनका ताडपत्र एवम् कागजोंपर लिखाजाना कठिनथा और वे श्रुतकेवली मुनियोंकेही कठाग्र रहतेथे) ये वर्त्तमानमेभी पूर्वकालमें अनेक अधर्मियोंके आक्रमणसें बचकर स्थित है। प्रिय पाठक गण! यहा केवल जैनदर्शनका सार मात्र आपको भेट किया जाता है इससे आशा है कि आपकी रुचि जैन शास्त्रोंके

अवलोकन करने पर बढेगी; क्यों कि इस भवोदधिसें सुगम पुर्वक पार उतरनेमें नौका सदृश्य पवित्र जैनशास्त्रही हैं ॥शुभम्॥

श्रीसंघका शुभेच्छु.

मंगलवार १० अक्टुवर १९११ इ० प्रतापगढ—मालवा	}	घीया लक्ष्मीचंद. प्रोविन्सीयल सेक्रेटरी श्रीजैन स्वे. कान्फरंस मालवा प्रान्त.

श्रीयुत् सेठ सा॰ रतनलालजी सूराना.

रतलाम (मालवा) निवासी

चित्रशाळा प्रेस, पुणे सिटी

॥ श्रीजिनायनम. ॥

शिक्षा सुधार

मङ्गलाचरणम्

श्रीमद्वीर जिनस्य पद्मह्रदय निर्गम्यते गौतमम् ।
गङ्गावर्तन मेत्यया प्रविभिदे मिथ्यात्व वैताढ्यकम् ॥
उत्पत्तीस्थिति सहति त्रिपथगा ज्ञानाम्बुधा हृद्धीगा ।
सामे कर्म मलहरत्व विकलम् श्रीद्वादशागीनदी ॥ १ ॥

प्राणी मात्र इस ससारमें चउराशीलक्ष जीवायोनिके अदर अनादि कालसे कर्म वश पर्यटन कर रहे हैं तदनुसार अपनभी पर्यटन करते २ अनत पुण्यराशीके उदयसें इस महान् दुष्प्राप्य चिन्तामणी सदृश मनुष्य जन्मको प्राप्त हुवे हैं तो इस जन्मको सार्थक करना यह हमारा परम कर्तव्य है इसको सार्थक करनेके निमित्त १ धर्म २ अर्थ और ३ काम इन तीनों पुरुषार्थोंको साधनेका ज्ञानी महात्माओंने फरमाया है अतएव हम इन तीना पुरुषार्थोंके सिद्धकरनेके उपाय योजना अती आवश्यकीय है.

इसका प्रथम उपाय ज्ञान सपादन करनेका शास्त्रकारोंनें फरमाया है, कारण ज्ञान विना मनुष्य मात्रको सर्व कार्य असार है ज्ञान यह एक मनुष्यके वास्ते परमोपयोगी अमूल्य

और अक्षय वस्तु है, इसका महात्म्य ज्ञानी पुरुषोंने पारावार अगम्य कथन किया है. ज्ञानके बलसे कठिनसे कठिन वस्तु भी सहजमें मिल सक्ती है—और इसी लिये इंग्रेजी कहनावत " (Knowledge is power) ज्ञान यह एक शक्ती है " प्रसिद्ध है.

ज्ञान यह मनुष्यके रत्न त्रयमेंका एक आत्मिक गुण है जो ज्ञानावर्णिय कर्मोंके गाढ आवर्णोंसे पूर्णतः आच्छादित होया हुआ होनेसे मनुष्यको अपने निजगुणका भाव नहीं करासक्ता क्रमशः इन आवर्णोंको दूर करके विशुद्ध ज्ञान गुण (केवल ज्ञान) प्रगट करनेकी शक्तीभी केवल मनुष्य मात्रके अंदरही है; परन्तु इस महान् कार्यको सिद्ध करनेके अनेक उपाय जैसे साधुव्रत, श्रावकव्रत, तपश्चर्या, सत्संगती, ज्ञानाभ्यासादि श्री कृपालु जिनेश्वर परमात्माने अपने आगममें कथन किये हैं उन्होंको शुद्धरीतिसे योजकर उन्हें अंगीकार करनेकी हमें पूर्ण आवश्यक्ता है ॥

ज्ञानाभ्या करना यहभी उपरोक्त उपायोंमेंका एक मुख्य है तो हमें प्रथम इसी उपायके ऊपर आरूढ होकर इसीके विषयमें यथामती लिखना आवश्यकीय हुवा है.

सांप्रत समयमें जो ज्ञान हमारे बालकोंको प्राप्त होता है वह यदि धार्मिक ज्ञान हो अथवा व्यवहारिकहो वो उन्ह

दन्ति त्रत पुरुषार्थ साधनेमें कम उपयोगी होताहे, कारण उनोंको विद्या ग्रयन करते समय कईक प्रकारकी त्रूटीयें, जिनका कि विवेचन आगे आपके दृष्टीगोचर होगा रहजानेसें सम्यक्ज्ञान की प्राप्ती नहीं हो सक्ती और हमारे निबंधका विषयभी इन त्रूटियोंके विषयमें वर्णन कर उनके उपाय शोधकर लिखनेका है।

विद्याभ्यास करना यह जैसा पुरुषकों हितकारी है वैसाही स्त्रीओंभी है यहां प्रथम हमें किञ्चित स्त्रीशिक्षाके विषयमें लिखना उपयोगी मालुम होता है, कारण पुरुष जातिकी उत्पत्ती स्त्री द्वाराही है अतएव स्त्री भूमी रूप है वास्ते प्रथम भूमीशुद्धी की आवश्यकता है यदि भूमि शुद्ध है तो उसमें बोये हुवे बीजका वृक्षभी फलदायी उत्पन्न होनेकी संभावना है, वास्ते स्त्री शिक्षाकी प्रथमावश्यकता है.

स्त्री शिक्षाका प्रचार किसी प्रकारसें नवीन नहीं है परन्तु इस अवसर्पिणी कालमें प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवानने अपनी पुत्रीयें ब्राह्मी और सुंदरीको अठारह प्रकारकी लीपि और चोसठ प्रकारकी कलाओंका अभ्यास करवाया तबसे प्रचलित है

अपने जैन–समाजमें असंख्य विदुषी सतीयें होगई हैं जिनोंकी उच्च प्रकारकी शिक्षाके विषयमें उनोंके चरित्रोंपरसे न सक्ते है.

उज्जयनीके राजा प्रजापालकी श्रीमयणासुंदरीकी कथा जो प्रति आश्विन चैत्रमें हम सुनते हैं उसमें राजाने अपनी दोनों पुत्रीयोंका किस प्रकारका उच्च अभ्यास कराकर उनोंकी कैसी २ कठिन समस्याओंसे परीक्षा ली है तो क्या अभीकी स्त्रीयें शिक्षाके योग्य नहीं है ?

एक कवीने कहा है:—

स्त्रीणामशिक्षित पटुत्वममानुषीषु ।
संदृश्यते किमुतया प्रति बोधवत्या ॥
प्रागन्तरिक्ष गमनात् स्वय पत्यजातम् ।
अन्यै र्द्विजै परभृतः खलुपोषयन्ति ॥ १ ॥

अर्थः—मनुष्य जातिमें स्त्रीयें अपठित अवस्थामेंभी बड़ी चतुर होती हैं तो शिक्षित हुवे पश्चात् तो उन्होंका कहनाही क्या ?

दृष्टांत—तिर्यंच जातिकी कोकिला (स्त्री) अपने अंडोंको अन्यपक्षीयोंके मालोंमें रखकर आकाशमें उड़ती है और उन मालोंके मालिक पक्षियोंके आकाशसे उतरने पेश्तर आप आकर पीछे अपने अंडोंको ले उड़ती है इसी तरह निरंतर उनोंके शिशुओंका पोषण करती है—तिर्यंच जातीकी स्त्रीमेंभी एसी चातुर्यता है तो मनुष्य जातीकी स्त्रीयोंके विषयमें कहनाही

हुया है ? खामी मात्र उन्हें सुशिक्षित करनेकी है.

सांप्रत कालमेंभी विलायतके अंदर स्त्रीयें वडी विद्वान और निपुण हैं और बडी वडी पदवीयें भोगती है. कईक डाक्तर हैं, कईक बेरिष्टर हैं, कई वर्तमानपत्रोंकी संपादका हैं कईक वडी २ संस्थाओंकी कार्यग्राहक हैं, कई वडी २ ओफिसोंमें काम करती हैं, कईक धरू कारखाने दुकाने चलाती हैं यहांतक कि पार्लामेन्टमें मेम्बर बनकर राज्य संबंधी अधिकार प्राप्त करनेकी उम्मेदें करती हैं, बाकी असंख्य गृहस्थ स्त्रीयें शिक्षित होनेसे अपनी गृहव्यवस्था करनेमें पुर्ण कुशल हैं– कहिये ? क्या हमारे भारतवर्षमें वा हमारे जैन–समाजमें ऐसी स्त्रीयें कभी उत्पन्न होवेंगी ? हमारी जैनस्त्री–समाजके तरफ देखकर हमें बडाभारी शोक होता है कि सेकडे दो तीन स्त्रीयेंभी शिक्षित नहीं हैं !

क्या कियाजाय ! स्त्रीयोंकी क्या परंतु पुरुषोंकी दशाभी अधिक शोचनीय है तो स्त्रीयोंकी होवे उसमें क्या अधिकाई है !

हे प्रिय माताओं ! भगिनीयो ! विना आपकी शिक्षाके हमारी भविष्यकी प्रजाकी उन्नती जो हम इच्छते हैं अथवा उसके होनेके लिये प्रयत्न करते हैं वह होना अति कठिन है कारण कि,–

मनुष्य बालक जबसें माताके उदरसें जन्म धारण करता है तबसें उसके अंदर पुर्वभव अभ्यासानुसार नकल करनेकी शक्ती " Power of Imitation " भी पैदा होजातीहै उसके द्वारा वालक ज्यों २ वढता है त्यौं २ हमारे चाल चलन वर्ताव भाषाका अनुकरण करने लगता है और बालकोंको विशेपकर ४–५ वर्पतक अपनी माता तथा अन्य गृहकी स्रीयोंके संसर्गमें रहना पड़ता है तो इस अवस्थामें वो अपनी माताके वर्ताव चाल चलन वोलीका अनुकरण करता है और इसी लिये वालकोंका प्राथमिक शिक्षाका आरंभ अपनी माताओं द्वाराही होता है. इस अवस्थाका सर्व भार उनोंकी माताओंके उपरही है, और अखिल जिन्दगीका मूल पाया यही अवस्था है; कारण जैसे मृत्तिकाके कुंभ ऊपर रेखादि चिन्ह अपक्व अवस्थामें करदिये जाते हैं वे पकजानेपर कदापिकाल दूर नहीं हो सक्ते, इसी तरह वालकोंका मगज इस आरंभी अवस्थामें वहुत कोमल रहता है वास्ते इस प्रथम वयमें य अपक्व अवस्थामें जैसे भले वुरे संस्कार वालकोंके मस्तिष्क में जम जाते हैं वे युवावस्था होनेपर कठिनतासें नष्ट होते हैं परन्तु शोक सह लिखना पड़ता है कि अपने समाजमें स्त्री शिक्षाके पूर्ण अभावसे यह हमारी जिन्दगीका पाया (Foundation of life) दृढ और संगीन नहीं होने पाता, इसको

सन्नट करनेके वास्ते हमारे समाजकी स्त्रीयोंको सुशिक्षित कर नेकी आवश्यक्ता है और इसके प्रचारके लिये हमें अधिक २ प्रबध करना चाहिये ।

अपठित माताए अपने कोमल बालकोंको अज्ञान वश अयोग्य, अघटित और प्रतिकूल शिक्षाए देती हैं कि जिससे उनाके कोमल हृदयोंमें अज्ञान, आलस्य, अहकार, असत्य, कुसप, इर्ष्या, तुच्छपन, अविनय, कठोरतादि अनेक दुर्गुणोका वेश होता चला जाता है कि जिसका भयङ्कर दुष्ट परिणाम आज हमारे समाजमें दृष्टीगोचर हो रहा है *

स्त्रीयें घरके अदर अपने पतीकों, सासू ससुरे आदि सबधीयोंसे निरतर अनेक प्रकारके कुवचन बोलती ह, चौकमें आकर छाती माथा कूटती हैं, कई प्रकारकी कुचेष्टाएँ करती

---

* इस लिये स्त्रीयोंको अवश्य युक्तिपूर्वक शिक्षा देनी चाहिये मामतम जो शिक्षा हमारी बालिकाओंको कन्याशालामें दी जाती है वो उनोंको भविष्यमें लाभदायक कम होती है, कारण गुरुपाठी ज्ञान उन्हें किसी प्रकारसे उपयोगी नहीं होता है, इस लिये आजकल जो रिवाज अहमदाबादकी कन्याशालामें हीराचदजी मकलभाइने निकाला है उसम बढाता बढाता करके उसके अनुसार सर्व स्थलोंमें अभ्यास क्रम नियत किया जाना मे ठीक समझता हू

हैं. ये सब उनोंके संतान देखते है वैसाही वर्ताव भविष्यमें वेभी करना सीखते हैं—और यह हम प्रत्यक्ष देखतेभी है कि कई बालक अपने माता पिताओंको बात बातमें धिःकारते हैं उनोंकी आज्ञाके विमुख चलते हुवे उनोंको हरएक प्रकारसे हानी पहूंचाते हैं; यहां तक कि कभी कभी उन्हें पीट देते हैं और जो स्त्रीयें संतोषी शांत क्षमावंत लज्जालू विनयवंत सुशिक्षित आदि गुणवाली होती हैं उनोंके संतानभी उक्त गुणोंमे पूर्ण होते है जैसे एक कवीने कहा है:—

कार्येषु मंत्री करणेसु दासी ।
भोज्येषु माता शयनेषु रंभा ॥
मनोऽनुकूला क्षमयाधरित्री ।
एतद्गुणा वधू कुल मुद्धरंति ॥ १ ॥

यदि माताएं उपरोक्त गुणवाली शिक्षित होवे तो वे उन्होंके बालकोंको अवश्य मधुर, प्रिय, नीतियुक्त वचन बोलना सिखलाती हैं. धर्म संबंधी छोटी कथाएं निरंतर सुनाती रहती हैं, जिनसे उनोंके आचार विचार सुधरते हैं.

नीति संबंधी छोटे २ वाक्य सिखलाती हैं—अंकबोलनादि सिखानेसे गणित संबंधिभी पाया दृढ करदेती हैं, देवगुरु धर्म विषयकी बातें करनेसे उनोंकी श्रद्धा परिपक्व होती जाती

है इस लिये अन्तमें मै पुन पाठकोंसे प्रार्थना करताहू कि स्त्री शिक्षाका प्रचार बढानेका प्रयत्न तन मन धनसें करें कि जिससे भविष्यकी प्रजा उन्नती दशाको प्राप्त होवे

पुरुषकी शिक्षा

बालक जब ४—५ वर्षकी वयका होता है तब उसे अपन माता पिता शालामें विद्याध्ययनके वास्ते भेजते है तबसे वह मातादि गृहकी स्त्रीयोंके ससर्गसे छुटकर अपने समान वयके विद्यार्थी और शिक्षकसे परिचित होता है इस समय जो प्रथम शिशुवयसेही अपनी विदुषी माता द्वारा उच्च सस्कार पायाहुवा बालक अपने शालाके अभ्यासमें द्वितीयाके चद्र सदृश वृद्धीगत होताहुवा उद्यमी, बुद्धिवान, नीतिज्ञ, और धर्मिष्ट बनता जाता है परतु यह कब ? जब उसे प्रथमकी माताकी दृढ शिक्षाके अनुकूल शिक्षामिले तब

प्र० आजकल जो शिक्षा सरकारी शालाओंमें मिलती है वो प्रतिकूल है या अनुकूल ?

उ० कितनेक विषयोंमें प्रतिकूल है और उससे हमारे बालकोंको धर्म सबधी और व्यवहार सबधी दोनो प्रकारसें हानि पहुचती है—

प्र० किन २ विषयोंमें किस २ नकारसे हानि पहूंचती है सो वतलाईये ?

उ० आज कलकी चलती हुइ हिन्दी, गुजराती, और इंग्रजी पाठमालाओं (Readers) के अंदर कितनेक पाठ तो लाभदायक हैं; परंतु कितनेक पाठ जैसे किः—

(१) कुत्ते, वील्ली, गेंडै, घोडे, सूअर, सिंह, पक्षी आदि हिंसक पशुओंकी निरर्थक कहानियें.

(२) मांस मदिरा शिकारादिकी वार्ताएं—हिंसक और जुल्मीराजाओंके इतिहास.

(३) गायके आत्मा नहीं है—संसार इश्वर कृत हैं—सूर्य स्थिर है, पृथ्वी नारंगीके सदृश गोल और आकाशमें घुमती है, चंद्रमा सूर्यकी रोशनीसे चमकता है पृथ्वीसे वाहर क्रोड़ गुना वड़ा है—पूर्व जन्म है नहीं इत्यादि.

(४) जैनधर्म वौद्धधर्मकी शाखा है—और हजार वारहसो वर्षसे उत्पन्न होया हुआ है इत्यादि इत्यादि—

प्र० क्या ऐसे पाठोंके पढनेसे धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है ?

उ० नहीं भ्रष्ट होना दूसरी वात है किन्तु वालकोंकी कोमल वयमें जो ये संस्कार दृढ जमजाता है उ-

ससे वे कठोर हृदयी वनकर धार्मिक बातोंसे अपरिचित होनेसे–श्रद्धाहीन, अनाचारी, अभक्ष खानेवाले, दयाकी कम लगनी रखने वाले बनजाते ह जेसा कि हम कईक जैन युवकोंमें देखते हैं कि केवल नाम मात्र जैनी हैं, कारण कि वे अपनी बुद्धिके सामने अपने बुजुर्गोंकी बुद्धि तुच्छ समझते ह लौकिक कितनेक रीतरिवाजोंसे घृणा करते है दर्शन, पूजन, गुरुवन्दन, शास्त्रश्रवण, सामाइक, प्रतिक्रमण कंदमूल, अभक्ष, रात्रिभोजनादिका त्याग व्रत पचक्खाण करना आदि अनेक बातें हैं

इन बातोंमें तो समझतेही नहीं कोइ कहता है तो हसी मजाक उडाकर उल्टा उनका निषेध युक्ति पूर्वक करदेते हैं– केवल कमाना और खानापीना मोज मजा उडाना यही उनो का धर्म रहता है *

---

*चाहे वे भारतकी उन्नतीके विषयमें लेख लिखें प्रयत्न करें परन्तु जबतक खुद सुधरे नही है तो दूसरोंका सुधारा कभी नहीं करसकेंगे केवल फेशनही फेसन और यवनोंकी संगतीमें निरर्थक जन्म खो देंगे और इसी प्रकारकी उन्नती करेंगे जेसा कि एक कविने कहा है'–

आगे खुल्यो अरु पीछे कट्यो जिमि कोटकी शोभा कमीज बड़ाई, सुंदर टोपी घड़ी छड़ी गही चरननमें पतलून चडाई। ठाढेही मूतत हैं भुमिपें सुचुरुट्ट धुवां फुंकफुंक उडाई, भारतके जन उन्नती कारण प्रातही बूटकी कर्त सफाई १

क्या वे ऐसी दशामें अपना धर्म रूपी पुरुषार्थ साध सकेंगे ! चाहे वे खूब इंग्लिश पढकर बीए० एम ए० बेरिष्टर, डाक्तर-प्रोफेसर-मेनेजर कुछबी बनकर हजार दो हजार रुपै माहावारी कमाकर ऐश करें; परंतु वे धर्मके संस्कार विना सर्व निरर्थक हैं-धर्मके ज्ञान विना परोपकार वृत्ति क्षमा शांतता, सहनशीलतादिक गुण प्राप्त नहीं होते हैं-और इनके विना मनुष्य जन्मकी सार्थकताभी होनी अति कठिन है. इस लिये धर्मदाताकी सेवा निरंतर बनती रहै ऐसी शिक्षा भी हमें ग्रहण करनेका प्रयत्न करना चाहिये. व्यवहारिक शिक्षा तो केवल एक भवकी सुखदायी है और धार्मिकशिक्षा भवो भवमें सुखदायी है-धर्मसे ही सर्व सुख, संपत्ति, बुद्धी बल, आरोग्यता, लक्ष्मी, कुटुंब मिलता है. इससे विमुख रहना कृतघ्नी पुरुषोंका काम है कहा है:-

धर्मेणाधिगतैश्वर्यो धर्म मेव निहंतियः

कथं शुभायतीर्भावी सस्वामीद्रोह पातकी ॥

धर्मसे सर्व ठकुराई प्राप्त हुई है तो इसको छोडने वाले स्वामीद्रोहीका कदापि काल भला नही हो सकता, अतएव धर्म सेवना अवश्य है

प्र० साम्प्रतमें तो श्रीमती जैन कान्फरसके प्रतापसें जगह २ जैन पाठशालाए स्थापित हो गई है तो हमारे बालकों को वहा पर धार्मिकशिक्षा मिलती रहेगी, इससें उन्होंके धार्मिक सस्कारभी दृढ बन रहेंगे क्या फिरभी वे धर्मसे विमुख रहेंगे ? और यदि कहोगे कि रहेंगे तो फिर क्या उपाय है कि जिनसें वे पूर्ण धर्मीष्ट बनसकें ?

उ० आपका कथन योग्य है, जगह २ पाठशालाए स्थापित हुई हैं उनोंके द्वारा अवश्य हमारे बालकोंको धार्मिक शिक्षा मिलेगी, परतु आज कल जो बहुतसी शालाओंमे शिक्षा की पद्धती दृष्टीगोचर हो रही है उससे यथेच्छ सीमाको पहुचना कठिन है, कारण विद्यार्थीयोंको जैन-धर्मके तत्वो सबधी कुछभी ज्ञान नही मिलता

हमारी पाठशालाओंकी धार्मिक शिक्षाका कुछ सबध व्यवहारिक शिक्षासे मिलता होना चाहिये वो नही है

जैन शालाओंमें केवल शुक वाला राम राम कठाग्रपाठ

सिखलाते हैं, चाहे वे दस वीस हजार श्लोकभी मुखपाठ कर लेवें, निरर्थक है.

सर्व शालाओंकी व्यवस्था एक धोरणसें होना चाहिये वैसी नहीं है. व्यवहारिक ज्ञानभी हमें यथायोग्य नहीं मिलता. अपनी कोम प्रायः सर्व व्यापारी वर्गमे हैं. हमें व्यवहारिक शिक्षाके अतिरिक्त, व्यापार संबंधी शिक्षा मिलनी चाहिये कि अमुक २ व्यापार अपने करने योग्य है अमुक २ व्यापारमें कम व्यवसाय और लाभ अधिक है, अमुक २ वस्तु अमुक देशोंमें पैदा होती हैं और अमुक देशोमे खपती है उनोंके व्यापार किस ढंगसें किस २ मोसममें किये जाते हैं इत्यादि.

आजकल अन्यकोम जैसे कि खोजे, मेमन, वोहरे, पारसी, आदि व्यापारके कामोंमे बहुत आगेवान हुए हैं और हमारी कोम जो खास व्यापारी कोमके नामसे प्रसिद्ध है अविद्या और आलस्यके कारण पूर्ण पछात पड़रही है—

देशाटन करनेमें हमारी कोम सबसे पछात है इस लिये हमें सबसे प्रथम व्यापारी शिक्षाके तर्फ विशेष ध्यान देना चाहिये.

प्र० इसके लिये क्या प्रबंध करना उचित है ?

उ० इसके लिये एक बड़ा भारी फंड करके एक जैन

युनिवर्सीटी (विश्वविद्यालय) स्थापन करना चाहिये, उसके प्रवधके वास्ते विद्वान गृहस्थोंकी कमीटी नियत की जा कर व्यावहारिक और धार्मिक दोनों विषयोंकी पाठमालाए वडी युक्ति और विचार पुर्वक तैयार करवानी चाहिये–उन पाठ मालाओंका क्रम सर्व जैन शालाओंमें दाखिल करवा कर उनोंकी योग्य इन्स्पेक्टरों द्वारा तपास करवाइ जाय तो कुछ लाभ होनेकी आशा है

प्र० व्यवहारिक शिक्षाकी पाठमाला किस प्रकारकी होनी चाहिये ?

उ० व्यवहारिक पाठमालाओमें व्याकरण, और गणित के विषयोंको छोडकर और सर्व उपयोगी विषयोंके पाठ आने चाहिये जैसे नीति सबधी पाठ, पदार्थविज्ञान, भूगोल इतिहास, आरोग्यता, उद्यम, व्यापारी इतिहास, राज्यशासन तत्र इत्यादि अन्य २ उपयोगी पुस्तको द्वारा सकलन करना चाहिये, परन्तु सर्व जैन धर्मकी शैलीके अनुसार और मिलान करके लिखेहुवे होने चाहिये.

व्यापारिक शिक्षाकी पुस्तकें जुदी होनी चाहियें और वे युवान समर्थ विद्यार्थीयोंको ४ थी ५ वी कक्षामें सिखानी चाहिये.

इन पुस्तकोंमें सर्व प्रकारके उचित व्यापारोंका वर्णन

अच्छी तरहसे होना चाहिये. ये पुस्तकें अनुभवी बड़े व्यापारियों की संमतीसें बड़ी २ व्यापार संबंधी डिरेक्टरीयोंसें शोधकर उपयोगी और प्रचालित व्यापारोका वर्णन पूर्ण रीतसे होना चाहिये.

ऐसी पुस्तकोंकी शिक्षासें अवश्य उम्मेद है कि विद्यार्थीयोंका व्यापारके कामोंमें साहस और उत्साह वढेगा और कुशलतासे व्यापार चला सकेंगे.

प्र० धार्मिक विषयकी पाठमाला कैसी होनी चाहिये ?

उ० धार्मिक विषयकी पाठमालाओंमें प्रथम और द्वितीय भागमें तो केवल नीति संबंधि छोटे २ पाठ अथवा आचार विचार संबंधी सामान्य शिक्षा चैत्यवंदन, सामायकविधि, हेतु अर्थ युक्त जीव पदार्थकी सामान्य समझ, जैनधर्म संबंधी सामान्य समझ इत्यादि छोटी वयके बालकोंको सरल पड़े ऐसे उपयोगी पाठ.

तृतीय चतुर्थ और पांचवी पाठमालाओमें निम्न लिखित विषय तो अवश्य आने चाहिये और वे इस रीतिसें होने चाहिये कि जैसे तीसरे भागमें सामान्य स्वरुपही या उसी विषयका चतुर्थ भागमे विशेष विवेचन और पंचममें उसमेंसें निकलते हुए वे तर्क वितर्कों के समाधान और उसका अनुभव सिद्ध होना चाहिये.

विषयोंका वर्णन'—

तत्वज्ञान—देव गुरु धर्मकास्वरूप, जीव अजीव पदार्थोका वर्णन, षद्द्रव्यकी समझ, जीवोंके विभाग, स्थान, आयु, शरीर, इंद्रिय, प्राणादिकोका विवेचन, सूक्ष्म जीवोंकी उत्पत्ति, आधुनीक पद्धतीसें उनोंका विवेचन और सिद्ध करना कर्मोका वर्णन, उनके विभाग, स्थिति, जीवके साथ उनोंका सबध किस रीतिसें आरिहतादि पच परमेष्टीका स्वरूप, उनोंके गुणोका वर्णन, गुणस्थानक वर्णन, नय, निक्षेप प्रमाणों का विवेचन इत्यादि २

भूगोल—काल चक्रका वर्णन, कालके विभाग, उनोंकी सख्या, स्वर्ग मृत्यु और पाताल याने देवलोक मनुष्यलोक और नर्कका वर्णन, उनोंके विभाग, नपती, वहाके रहने वाले जीवोका विवेचन, असख्यद्वीप समुद्रोका विवेचन, इग्लीश भूगोल और जैन भूगोलका मिलान, पर्वत द्रह नदी कूट वनोका वर्णन इत्यादि सृष्टीकी उत्पत्तीकी भूल भरी समझका समाधान, सृष्टीका कर्ता कोई नहीं अनादि प्रवाह सिद्ध, मुख्य २ तीर्थंकरोंके चरित्र, उनोंके समयसे पडे हुवे धर्म सबधी भेद, उनोके वैभवका वर्णन, द्वादशांगीका वर्णन उनोंकी पवित्र देशना.

इतिहास—महान् आचार्योंके चरित्र, उनोंके प्रबोधित राजाओंके चरित्र, अन्य जैनी राजाओंके चरित्र, उनोंकी महान् कृतियें, मुख्य २ श्रावकोंके चरित्र, सतीयोंके चरित्र इत्यादि २

आचार—सामायक चैत्यवंदन प्रतिक्रमण नवस्मर्ण मूल अर्थ विधिहेतु युक्त दर्शन पूजन विधि भक्ष्याभक्ष्यविचार श्रावकाचारका वर्णन, वारह व्रतोंकी समझ, चतुर्दश नियमविचार व्रतपच्चखाणोंका विवेचन, उपयोगी स्तवन, चैत्यवंदन, सज्झायें, स्तुतियें, रास, छंद इत्यादि २

उपरोक्त विषयोंकी पाठमाळाएं पुर्ण उपयोग पूर्वक विद्वान मंडल तैयार करें और वे धार्मिक पाठशालाओंमें पढाये जावें. वे पाठमाला ऐसी सरळ और साफ होनी चाहिये कि विद्यार्थियोंके मस्तिष्कमें कम परिश्रमसें ज्ञान ठस जावे और सामान्य परिचय वाला शिक्षकभी पढासकें.

प्र० ऐसी पाठमालाओंके पढनेसें फिर लोक धर्मसे विमुख नही रहेंगे ?

उ० बेशक नहीं रहेंगे किन्तु पुर्ण धर्मिष्ट बनकर स्वपरका कल्याण कर सकेंगे और जो अन्य भाषाएं संसार निर्वाहके लिये सीखेंगे उनोंमेंभी इस धार्मिक अ-

भ्यासर्से विशेष प्रकाश होता रहेगा बडी२ डिग्रीयेंभी प्राप्त करेंगे और धार्मिक ज्ञानमेंभी कुशल रहेंगे ऐसे विद्वानोसें हमारे समाजकी उन्नती अवश्य बनी रहेगी ऐसे विद्वान चाहेंगे तो अन्य देशोमेंभी हमारे धर्मका उपदेश दे सकेंगे इस लिये मैं सर्व श्रीमानों विद्वानों से प्रार्थना करताहु कि पाठमालए शिघ्र तैयार करवावें

अन्तमें मै श्री कृपाल वीर परमात्माकी जय बोलता हुवा मेरे मित्र मि कस्तुरचदजी गादिया अधिपती " हिन्दी जैन कि " जिन्होने यह पत्र निकाल कर हिन्दी भाषा बोलने पढने वाली मालवा, मेवाड, पुर्व, बगाल, राजपूतान, पजाबकी प्रजाको जाग्रत किया है और आप खुद समाजकी उन्नतीके लिये कटिबद्ध हो रहे हैं उनोंका उपकार मानकर मेरे लेखको समाप्त करताहु

अयोग्य और अनुचित लिखानकी सर्व पाठकोसे क्षमा इति शुभम्

आपका शुभेच्छक
मिश्रीमल खेमचंद

ईश्वरभक्ति

सारा संसार भली भांति जानता है कि यह भारतवर्ष कुछ ऐसा वैसा देश नहीं है । पूर्वमें, इसने अपनी विद्या, बुद्धि और पराक्रमके बलसें जो कुछ कर दिखलाया उसका ठीक २ भेद तक आज कलके सभ्य कहलानें वाले किसीभी देशने नहीं पाया है । केवल सांसारिक बातों हीमें नहीं वरन पारलौकिक विषयों में भी अद्वितीय पुरुषार्थ बतलानेका यह जैसा दावा रखता हैं वैसा कोइभी अन्य देश साहस नहीं करसकता है । आहा ! वहभी एक समय था जब यही भारत, भूमंडलके समस्त देशोंका शिरोमणि माना जाता था । परन्तु कालकी गति विचित्र है, जिसके प्रभावसें पहिले जो इसें पुज्य गुरु जानकर सन्मान देते थे, वही आज इसे असभ्य कहकर आदेश करते है ! सोचनेका स्थान है कि इसकी यह दशा कैसी पल्ट गई । इस दुर्दशाका सम्पूर्ण श्रेय हम केवल आलस्यही को दिये देते है जो अविद्याके समान कई बातोंको अपने पीछे २ लेकर आता हैं । ऐसा कोइभी देखनेमें नहीं आया जो आलस्यके फंदेमें पड़कर किसी अंशमेंभी दुःखी न हुआ हो, तब फिर बिचारे भारतकी इस समय ऐसी स्थितिहो तो इसमें आश्चर्य क्या है ?

अभी तक आलस्य, अविद्यादिके बढ़ने जानेसे इस तह

भाग्य देशका जो कुछ विगाड़ हुआ है, वह वास्तवमे कुछ कम नहीं समझना चाहिये। यदि इतनेहीसे वस होता तोभी कुछ धीरज धर सक्ते थे; परन्तु एक नई वात ऐसी हुइ है जिससे इस देशके प्राण नाश होनेकी शंका उत्पन्न होती है वह वात कौनसी ? यही कि अव अपनी हजारों वर्षोंकी स्वभाव सिद्ध धर्मवृत्ति धीरे २ लोप होती जारही है, अपने सत्शास्त्रोंसे दिनों दिन कितनेही लोगोंकी श्रद्धा उठती जाती है: पुर्ण विचार किये विना जिस प्रकार कितनेक देशवंधु अपने धर्म सम्वंधी कामोंमें विपरीत वरतने लगे हैं, उसी प्रकार वहुतेरी वातोंको वे झुठीभी समझने लगे हैं, तिसपरभी इन सारी वातोंके ऊपर कलशके तुल्य एक भारी वात यह हुइ है कि आजकलके नव शिक्षितोंके अधिकांश भागमें ऐसे विचार प्रसारित होते हुए दिखाइ देते हैं कि "इश्वर कोई वस्तुही नहीं है, जो कुछ दृष्टि पड़ता है सो सर्व स्वभाव (नेचर) ही से होता है."

उनलोगोंको पांच चार दिन जो खाने पीनेके लिये ठीक पदार्थ, पहिननेके लिये अच्छे वस्त्र, मिलने झुलनेके लिये मित्र, वांचनेके लिये पुस्तके वा समाचारपत्र, इत्यादि कई वातोंमेंसे एकाद वातभी न मिले तो वे बड़े दुःखी हो जातेहैं परन्तु विना इश्वरस्मरण किये कई दिन तो क्या पर अनेक वर्ष भी वीत जायें तो भी उनके चितमें कुछ खेद नही होता

और न वे यह समझते है कि ऐसी दशामें हमारे जीवनको कितनी हानि पहुच रही है उल्टे वे इस प्रकारके कुतर्क उठाया करते हैं कि सुबहमें उठते ही अपने काम धधे किंवा विद्याभ्यास छोडकर ईश्वर २ करते रहना व्यर्थ झझट है। उनकी समझसे ईश्वरस्मरण एक प्रकारका भ्रांतिकारक व्यवहार है। वे कहा करते है कि जो निकम्मे हों वे भले ही ऐसे २ व्यर्थ बातें तथा कार्य किया करें, पर कामकाज वालोंके तो इनमें अपना समय न खोना चाहिये। उनकी इन सारी बातों परसे यही जान पडता है कि ईश्वरका मानना और उसकी भक्ति करना, वे अज्ञानी और मूर्ख लोगोंका काम समझते है। उन लोगों के, मनकी ऐसी विपरीत स्थिति देख कर ही इस विषय पर सक्षेपमे कुछ लिखनेका विचार हुआ है।

जिस प्रकार जल वायुके मिले बिना अपना एक क्षण मात्रभी जीना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वरके स्मरण किये बिना अपनेको सच्चे सुखका अश मात्रभी अनुभव होना अशक्य है। जैसे बिना खाने पीनेके अपनी देह निर्बल होती जाती है, वैसेही ईश्वर विमुख होनेसे अपनी अधोगति होती चली जाती है। यह स्थूल शरीर जेसे खाद्य पदार्थोंके आश्रित हो रहा है, वैसेही इसके अन्दर जो सूक्ष्म चैतन्यशक्ति-जीवात्मा उसका आधार केवल अखड शक्ति स्वरूप ईश्वरकी

भक्ति ही है, जिस प्रकार देखनेके लिये नेत्रोंकी और चलने के लिये पांवोंकी आवश्यकता है उसी प्रकार यथार्थ सुख और ज्ञानकी किसी अंशमेंभी प्राप्ति करनेके लिये परमेश्वर की भक्ति करना अवश्य है। इन्हीं कारणोंसे सर्वोत्कृष्ट सुखके अभिलाषी जनको, तथा उत्तमोत्तम ज्ञानकी आकांक्षा करने वाले पुरुषको अपनी इच्छाकी सफलताके लिये ईश्वरकी भक्ति करना ही एक मात्र उत्तम उपाय है।

कितनेक लोग कहते हैं कि ईश्वर हो तो उसके स्मरण करनेकी लंबी चोड़ी बातेंभी कामकी हैं; परन्तु ईश्वरके होनेमें विश्वास क्यों कर कियाजाय! जब कि वृक्षका मूल ही नहीं तो फिर उसको डालियोंकी बातोंसे क्या प्रयोजन! बिना आंखोंसे देखे, कैसे जाना जाय कि ईश्वर है? यदि कोई ईश्वरको प्रत्यक्ष बतादे तो हम माने और भक्ति करें. उन लोगो-की ये शंकायें एक प्रकारसे ठीक है। हम अपनी शक्तिके अनुसार प्रथम इनका ठीक समाधान करके यह बतलावेंगे कि केवल ईश्वरका होना ही मानना योग्य नहीं, बस उसकी भक्ति करनाभी मनुष्योंका परम कर्तव्य है।

ईश्वर अपनी नजरसे दिखाई नहीं देता है इस लिये वह है नहीं। यह शंका उसी प्रकार होगी जैसे कोई कहे कि अपने शरीरमें जीवात्मा (चैतन्य शक्ति) अपनी नजरसे

प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता है, इसलिये वह है ही नहीं। अपने दिखाई देने वाले जड शरीरमें चैतन्यके नहीं होनेकी बात अपनेको जिस प्रकार झूठी भासती हैं, उसी प्रकार ईश्वरके नहीं होनेकी बात भी असत्य क्यों न जानी जावे

यह स्मरण रखने योग्य बात है कि प्रत्यक्षके सिवाय अनुमानसेभी कितना ही बातें जानी जाती है, हेतुको देखकर हम पदार्थका ज्ञान कर सक्ते है जैसे किसीका पिता दादा या परदादा मरगया हो तोभी हम अनुमान कर सक्ते है कि दादा परदादा पिताके विना मनुष्यकी उत्पत्ति नहीं हो सक्ति है इस लिये इस पुरुषके पितादिये इसी प्रकार ईश्वरके विषयमें भी हम अनुमान द्वारा सिद्ध करके आपको ईश्वरका ज्ञान कराय देते है जिससे फिर आप स्वय अनुभव कर सकगें कि ईश्वरभी अवश्य है

अपन सब जानते है कि पानी के एक बुदम हजारों सूक्ष्म जतु होते है, परन्तु वे अपनी खुली आखोंसे दिखाई नहीं देते है इस परसे अपन ऐसा कदापि नहीं कह सक्ते है कि वे है ही नहीं, क्या येही जतु सूक्ष्मदर्शक यत्रसे तुरत दिखाई देते है। इसमें असख्य परमाणुओंका प्रवाह निरन्तर बहा करता है, परन्तु वे अपन को दीखते नहीं है इससे ऐसा कोई नहीं कह सकता कि वे नहीं है। यह बात कैसे उचित ठहर

सकती है कि जो कुछ अपनेको प्रत्यक्ष न दिखाई दे, वह कोई वस्तु ही नहीं है !

जब कि सूक्ष्म पदार्थ देखनेके लिये साधनोंकी आवश्यकता होती है, तो ईश्वर जैसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतत्वको देखनेके लिये कोई विशेष साधन क्यों कर अवश्य नहीं ? साधन होनाही चाहिये । जिसके पास सूक्ष्मदर्शक यंत्र हो वह जिस प्रकार पानीके जीवोंको देख सकता है, वैसेही शुद्ध हृदयसे मिले हुए ज्ञानचक्षु जिसके हो, वही ईश्वरके देखने में समर्थ हो सकता है । यदि अपने पास सूक्ष्मदर्शक न हो तो अपन पानीके जंतुओंको नहीं देख सकते हैं, ऐसेही यदि अपने पास शुद्ध हृदयसे मिले हुए ज्ञानचक्षु न हों तो अपन ईश्वरकोभी नहीं देख सकते हैं । सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखने वाले मनुष्य जब अपनेको कहदें कि पानीमें जतु हैं, तो अपन बिना अपनी आंखोंसे देखे उनकी बात मान लेते हैं, दुर्बीनसे प्रत्यक्ष देखे बिना और गणित किये बिना, सूर्य अपनी पृथ्वी से ९१ करोड़ मील दूरी पर है, चन्द्रके अन्दर मैदान, पर्वतादि हैं, मंगलके बीच बड़ी २ नहरें हैं, खगोल मंडलमें अमुक ग्रह ऐसा और अमुक वैसा है, इत्यादि सारी बातें अपन बिना जांच परतालके सच्ची मानते हैं तो फिर इस देशके हजारों अपार बुद्धिमान् ऋषि महर्षि और मुनि तथा अन्य देशोंके बड़े २ साधु महात्माओंने अपने ज्ञानचक्षु द्वारा अनुभव करके

ईश्वरके होनेकी जो साक्षी दी है, उसको हमें क्यों कर अगीकार न करना चाहिये ? सूक्ष्मदर्शकसे देखने वालोंका कथन तो अपन मान ले और ज्ञानचक्षुसे देखने वालोंका कथन नहीं मानें तो इसे यदि अपना दुराग्रह नहीं तो क्या कहा जाय ?

दुर्बीन या सूक्ष्मदर्शक यन्त्र पास न हो तो खटपट करके उसे कहींसे लाना पडता है, अथवा परदेशसें मगाना पडता हैं, इसी प्रकार जो अपने ज्ञानचक्षु न हों तो उन्हें भी यथोचित प्रयत्न द्वारा प्राप्त करलेना अत्यावश्यक है । दुर्बीन या सूक्ष्मदर्शक मौजुद होने परभी उससे देखनेका जिसे बिलकुल अभ्यास ही नहीं है, उसे चन्द्रादि सम्बन्धी हाल कुछ भी दिखाई नहीं देता है । इसी प्रकार ईश्वरको देखनेके जो साधन शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं उनका ठीक २ अभ्यास किये बिना ईश्वर सम्बन्धी बातोका अनुभव कदापि नहीं हो सकता है पुर्व कालसे सत्पुरुष उन साधनोंका बोध कराते आये हे । उनके कहनेके अनुसार कुछभी न करके ऐसे २ प्रश्न करना कि ईश्वर कहा है ? यदि ईश्वर हो तो हमें बताओ ? इत्यादि सब बातें जान बूझकर एक प्रकारके अज्ञानपनेकी नहीं तो क्या कहना चाहिये ? सचमुच ये बातें ऐसी ही समझी जा सकती है जैसे एक गवार मनुष्य किसी कालेजमें आकर प्रोफेसर से कहे कि" मुझे विद्या पढ़ा कर अभी एक अच्छी पदवी

दे दो, और पदवीके प्रतापसे जो द्रव्य प्राप्त होता हो उसकी एक गंठडीभी बंधा दो ? " इस गँवारकी इन बातोंपर जो वह प्रोफेसर हंसे, तब वह गंवार उस प्रोफेसरको ढोंगी पाखंड़ी कहकर उसका तिरस्कार करे तो क्या उस गंवार मनुष्यकी ये सारी बातें विक्षिप्तपनकी नहीं मानी जायगी ? जिन साधनों द्वारा परमेश्वरका प्रत्यक्ष अनुभव होता है उनके अनुसार कृति किये विना और उस कृतिमें जितना समय लगना चाहिये उसका सहस्रांश भागभी लगाये विना "अभी इसी घड़ी यहांके यहीं ईश्वरको यदि बताओ तो हम मानेंगे " विना विचारसे ऐसे वाक्य बार २ बोलते समय और तो क्या पर पढ़े लिखे लोगभी शरमाते हैं ! ! !

किसी राजासे मिलना हो तो उसके मिलनेमें कितने साधन चाहिये ? मान लिया जाय कि किसी बड़े राजासे एक ऐसा हलका आदमी मिलना चाहता है, जिसके सारे शरीरमें रक्तपित्ती फैली हो और चाहिये वैसे वस्त्रादिभी पहिननेको न हो तो क्या उसकी उस राजासे मुलाकात होसकी है ? जब कि राजाके पास जानेके लिये ठीक २ योग्यता और साधन प्राप्त हुए विना राजासे मिलना कठिन होजाता है; तब फिर करोडों राजाओंकाभी राजा जो परमेश्वर है उसको देखनेकी इच्छा रखने वाले ऐसे मनुष्य किस प्रकार

लायक माने जा सक्ते है जिनका मन कई जन्मोंके पापकर्म रूपी रक्तपित्तीसे अत्यन्त दूषित हो रहा है और जिनका शरीर दुराचरणोंसे मानो ग्रसित हो रहा है। ऐसे महारोगियोंसे राजाकी मुलाकात न होनेसे ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता है कि राजाही नहीं है उसी प्रकार नित्य विषयोंके भोगमें फसे हुए लोगोंको ईश्वर दिखाई नहीं देनेसे उनका यह कथनभी है कि ईश्वर हैही नहीं, कभी सत्य नहीं माना जा सकता है।

अपनेसे जिनकी बुद्धि करोडो गुणी बडी थी, जिनका ज्ञान रूपी दुर्बीन सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थ यहातक कि मनकी गुप्त बातोंकोभी जान जाताथा ऐसे अपने पूर्व पुरुष महर्षियोंके निर्माण किये हुए ग्रंथादिसे स्पष्ट जाना जाता है, और सब देशोंके धर्म प्रवर्तकभी कहते है कि ईश्वर है। अपनेसे अधिक बुद्धिमानोंकी बातको जब कि व्यवहारिक विषयोंमें अपन श्रद्धा पूर्वक मानते है तो ईश्वरके होनेकी बातको भी मानना उचित है।

तर्कसे विचार किया जाय तो इस विषयमें असख्य प्रमाण मिले बिना नहीं रहते है। ईश्वर शब्दका अर्थही ईश नियममें रखना, वर-श्रेष्ठ-होना है। इन दोनों पदोसे सारे जगत्‌को नियममें रखने वाली किसी श्रेष्ठ सत्ताका होना

सिद्ध होता है। यदि ध्यान पुर्वक देखाजाय तो इस ब्रह्मांडमें असंख्य प्राणि पदार्थोंके विषयमे रहनेसेभी किसी एक सत्ताका होना इष्ट जान पड़ता है। यदि किसी वर्गको नियममें रखने वाला शिक्षक न हो तो, उस वर्गमें कैसी अव्यवस्था मचजाती है; तो फिर ब्रह्मांडको नियममें रखने वाली शिक्षा का देनेवाला जो कोई नहो तो, इस ब्रह्मांडकी सम्पुर्ण वातें भी होना स्वाभाविकही है। परन्तु सम्पुर्ण वातें नियम पुर्वक होनेसे किसी नेताका होना स्पष्ट सिद्ध होता है।

कितनेक लोग कहा करते हैं कि संसारकी व्यवस्था "नेचर" हीसे हुआ करती है, ईश्वर कर्ता नहीं है। उनका यह कथन अंगिकार करनेके साथही हम उनसे यह पुछते हैं कि "नेचर" क्या है? ऐसी दशामें वे लोग "नेचर" शब्दके स्वरूपका स्पष्टीकरण यही करेंगे कि जिन नियमोंके वलसे जगत चलरहा है उन्हें "नेचर" कहते हैं। अपन कहते हैं कि जिन नियमोंके वल से जगत् चल रहाहै उन्हेंही ईश्वर कहना चाहिये। अपन संस्कृत शब्दका उपयोग करते हैं और वे अंगरेजी शब्दको काममें लाते है। जगत "नेचर" से चलता है—यह वात जैसी वैसी—जगतका नेता (मार्गप्रदर्शक) ईश्वर है—यह वात नहीं रुचती है. यह ईश्वर जैसे मार्मिक शब्दपर कैसा हास्य जनक कटाक्ष ! इस वातको तो सभी स्वीकारते हैं कि जगतकी

व्यवस्था किसीसे तोभी होती है, फिर वे उसे ईश्वर, नेचर, स्वभाव, कुदरत, खुदा, गोड, चाहे सो नाम दें।

कितनेक लोग निरीश्वरवादी और कितनेक ईश्वरवादी हैं। दोनोंके अलग २ कथनको सुनकर फिर तुलना की जाय, कि किसका कथन विशेष सयुक्तिक है। एक पक्षकी समझमें ईश्वरको मानने वाले और उसकी भक्ति करने वाले जीवन भर ईश्वर सम्बधमें जो कुछ करते है, वह सब व्यर्थ है, अर्थात् उनके जीवनका एक भाग निरर्थक जानेके सिवाय उन्हे अन्य कोई हानि नहीं है यदि यही पक्ष सही ठहरे, तो ईश्वरसे सम्बन्ध रखने वाले इसी बातसे अपना समाधान करेंगे कि जितना समय हमारा इस विषयमें व्यतीत हुआ उससे यदि कोई लाभ न हुआ, तो उनके हाथसे कोई बुरा कृत्य भी नहीं हुआ है। परन्तु जो दूसरा पक्ष सत्य निकल जाय, तो निरीश्वर वादी जन्मभर अपने परम कर्तव्यसे विमुख रहनेके कारण महान् अपराधी ठहरते हैं। ऐसी दशामें ये लोग अपने अपराधके दंड से किस प्रकार छूट सकते हैं? इन दोनों पक्षकी मयक २ बातोंसेभी ईश्वरको मानने वालेकी बात ही विशेष सयुक्तिक मालूम होती है।

एक उदाहरण ऐसा है कि कोई एक मनुष्य कहींसे अपने गावमें जाताथा। चलते २ उसको उस गावमे कुछ दूरी

पर एक भयानक सिंह पड़ा हुआ दिखाई दिया । उसने गोंवमें पहुंचते ही उस सिंहका हाल वहांके निवासियोंको कह सुनाया । वास्तवमे उन लोगोने अपनी आंखोसे सिंह को देखा नहींथा; परन्तु उनमेंसे कितनेकने तो मनुष्यके अनुभव पर विश्वास करके यह शोचा कि कदाचित् जो सिंह शहरके अन्दर आ जाय, तो पहिले हीसे हथियार तैयार रख के सचेत रहना अच्छा है; और कितनेकोने उस वातको सुनी ना सुनी करके कुच्छ ध्यान न दिया । जो सिंह गांवमें नहीं जाता तो किसीको कुछ भी वात नथी, परन्तु कुछ सम यके वाद दैव योगसे वह एका एक गांवमें घुस गया । उस समय जो पहिलेसे सचेत हो रहेथे उन्होंने जो उसका सामना करके अपना वचाव कर लिया, पर जो उस मनुष्यकी वात पर कुछभी विश्वास न करके अचेत रह गये थे, उनमेंसे कई एकोंको सिंह मारने लगा, और वे सवके सव लोग घवड़ा उठे । ऐसी ही दशा ईश्वरके होनेमें विश्वास नही करने वालों की भी क्यों न समझनी चाहिये ।

जगत्में समस्त प्राणि मात्रकी स्थितिको और देखने से यही जान पड़ता है कि ये सव परतंत्र हैं ! रोगी होना कोई भी नहीं चाहता है; पर भिन्न २ प्रकारके रोग आ घेरते हैं; पैसेवाले वननेकी तो कई इच्छा करते हैं; परन्तु कोई २ तो

पासमें जो हो उसेभी खोकर निर्धनी होजाते हैं, वहुतेरे सौ अथवा दोसौ वर्ष पर्यंत जीनेकी इच्छा करते हैं, पर अचिन्त्य समय उन्हें मौत धर दवाती है, मनुष्य हजारों पदार्थ मिलाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उनमेंसे वहुत ही थोडे प्राप्त होते हैं, इत्यादि सारी वातोंके निर्णयसे यही सिद्ध होता है कि अशुद्धता और अपनी अज्ञानता ही परतन्त्रताका कारण है कि अपन स्वतन्त्र नहीं है अपन थोडे जानकार है इसलिये परतन्त्र, और वह, सव जानने वाले सर्वज्ञ होनेसे स्वतन्त्र होना चाहिये । अपन परतन्त्र होनेसे दु खी है, और वह स्वतन्त्र होनेके कारण अत्यन्त सुखी होना चाहिये । अपन परतन्त्र होनेसे अज्ञानी है, और वह स्वतन्त्र होनेसे सम्पूर्ण ज्ञानके भंडार होना चाहिये ! अपन परतन्त्र होनेसे जन्म मरन करते हैं और वह स्वतन्त्र होनेसे अजर अमर होना चाहिये । अपन परतन्त्र होनेसे परिछिन्न मर्यादा वाले है-अर्थात् एक जगह है तो दूसरी जगहकी नही जान सक्ते और वह स्वतन्त्र होनेसे सर्वत्र व्यापक होना चाहिये । अपन परतन्त्र होनेसे एक कालमें है तो दूसरे कालमें नहीं, और वह स्वतन्त्र होनेसे भूत, वर्तमान और भविष्यत् सव कालमें होना चाहिये । जिस प्रकार अंधकार है तो प्रकाश पडता है, मैलापन है तो स्वच्छता होती है, वैसेही अपन परतन्त्र है तो फिर कोई स्वतन्त्र होनाही चाहिये । अपन दुःखी और अशक्त है तो कोई सुखी और सर्व शक्ति

मान होनाही चाहिये । वह स्वतंत्र वस्तु कोई अन्य नहीं है परन्तु वही है जिसे शास्त्र " ईश्वर " कहता है । वह अविनाशी पुरुष, वह सर्व व्यापी तत्व कोई अन्य नहीं है परन्तु वही परमेश्वर है जिसे हजारों योगी और साधु महात्माओने अनुभवसे जानकर निर्णय किया है ।

यदि कोई कहे कि अपन परतंत्र और दुःखी हैं परन्तु राजा तो ऐसे नहीं हैं, तब फिर स्वतंत्र और सुखी व्यक्ति राजाको समझनेकी अपेक्षा ईश्वरको क्यों समझना चाहिये ? थोड़े विचार करनेसे स्पष्ट जान पड़ेगा कि साधारण मनुष्यकी अपेक्षा राजा किसी विशेष बातमें कुछ स्वतंत्र और सुखी है, परन्तु जो वह ऐसी इच्छा करे कि मैं सदा जवान ही बना रहुं, तो भी बुड्ढा हो जाता है । वह अपनी स्त्री, पुत्र आदि किसीकाभी मरण नहीं चाहता है तो भी ऐसी घटनाऐं होती ही हैं । ये सब बातें विचार पुर्वक देखी जाय तो यही मालुम होगा कि राजा तकभी परतंत्र और दुःखी हैं; क्यों कि पुर्णज्ञानी नही हैं अशुद्ध है इस लिये स्वतंत्र और सुखका निधि केवल परमात्माको ही कहना योग्य है जो सर्वोपरि है ।

अपने स्वतःकी स्थिति जगत्का स्वरूप अपने पूर्वमें हो गये उन हजारों बुद्धिमान पुरुषोंके वचन देखनेसे और योगियों तथा भक्त जनोका अनुभव देखनेसे ईश्वरके होनेका

पग २ और क्षण २ में जब कि सामान्य बुद्धिवालेको स्पष्ट होता है, तो फिर शुद्ध अन्त करण वाले महा पुरुषोंको वह प्रत्यक्ष हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ।

हम ऊपर कह आये है कि जीव मात्र परतंत्र, दु'खी और अल्प ज्ञानी है । थोडी देरही यदि किसीके तानेमें रहना पडे तो अपनी तबियत अकुलाय जाती है इस कारण कि अपनेको परतन्त्रता प्रिय नहीं है । सारा दिन पाठशाला किंवा कचहरीमे रहना परतन्त्रता होनेसे, जब अपन वहांसे छुटते है तब अपना मन कुछ प्रफुल्लित होजाता है । पक्षी पींजरेमें रखा हो और जब कभी पींजरेका द्वार खुला रहजाय तो वह उड जाता है । पशुभी जब खूटेसे छुटता है तो चौकडी भरता हुआ आनन्दसे मन चाहे उस तरफ दौडने लगता है इन सारी बातोंका कारण यही है कि स्वतन्त्रता सबहीको बहुत प्यारी लगती है । जिस प्रकार परतन्त्रता अनेक दु'खोंका कारण है, उसी प्रकार स्वतन्त्रता सम्पुर्ण सुखोंका हेतु होनेसे प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र होनेकी इच्छा करते हैं ।

जैसे अपनेको स्वतन्त्रता प्रिय है वैसेही सुखभी बडा सुहाता है । जन्म लेते है तबसे मरनेतक अपना सुख प्राप्तिका प्रयत्न रातोदिन चलता रहता है, कारण इसका यही है कि अपन दु खी है इस लिये सुखी होनेका उद्योग करते है,

रंकहो वा राजा, छोटाहो वा बड़ा सभीसुख मिलानेका प्रयत्न करते हुए दीख पड़ते हैं. क्यो कि सब कोइ किसी अंशमें दुःखी अवश्य हैं। इसी प्रकार छोटी उमरसेही लोग भांति २ का ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। वे एक विद्याका अभ्यास करकें दूसरी विद्याका अभ्यास करते हैं। उसेभी जब पढ चुकते हैं तो तीसरीका औरभी पढना बाकी रहजाता है। जिन्होंने कई प्रकारकी विद्याएं सीखी हैं उन्हेंभी इतनी विद्या औरभी पढनी शेप रहजाती है जिसका कि कुछ अन्त नहीं आ सकता है। अपन जिसको महान् विद्वान मानते हैं उन्हें जब पुंछते हैं तो वेभी यही कहते हैं कि अभी हमने विद्याका कुछभी पार नही पाया है. इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि मनुष्योंको पुर्ण ज्ञान नहीं होता है। जबतक सम्पुर्ण ज्ञानकी प्राप्ति न हो जाय तबतक ज्ञानसे तृप्ति नहीं होती अर्थात् नया २ जाननेकी इच्छा बनी रहती है।

संसारमें जितने मात्र जीव है वे अशुद्ध मलीन है. मलीनता सबको अप्रिय है, सभी शुद्धता चाहते हैं, ऐसा कोईभी मनुष्य नहीं. जो कि अशुद्ध रहकर संसारिक जन्म मरणका दुःख भोगना पसन्द करे. इन सब बातोंका सारांश यही है कि मनुष्य मात्र सम्पुर्ण रीतिसे स्वतंत्र, सम्पुर्ण रीतिसे सुखी, सम्पुर्ण रीतिसे ज्ञानी और शुद्ध होनेकी इच्छा करते हैं और जबतक

ये सारी बातें प्राप्त न होवें, उनको शान्ति होना सभवनीय नहीं है।

ऊपर किये हुए वर्णनमें दो प्रकारकी अवस्था वाली वस्तुए हैं। एक वह जिसमें परतत्रता, दु.ख और अज्ञान है–जैसे जीवात्मा और दूसरी वह जिसमें स्वतत्रता, सुख और ज्ञान रहता है–जैसे ईश्वर, इसका मूल कारण यही है कि ससारी जीवात्मा अशुद्धात्माए हैं और ईश्वर शुद्ध आत्मा है। जाडेमें जब अपनेको ठड लगती है तो अपन अग्निका सेवन करते है। जो निर्धन होते हे वो किसी श्रीमान्के पास जाकर उसकी सेवा करते है, उसकी कई प्रकारसे ऐसी भक्ति करते है जिससे वह प्रसन्न हो। जिसके पास द्रव्य हो उसके पास गये बिना, और वहा जाकरकेभी उसकी ठीक मर्जी सम्पादन किये बिना पैसा नहीं मिलता है अर्थात् जिसको जिस वस्तुकी इच्छा होती है वह उस वस्तुको प्राप्त करनेके लिये जहा वह वस्तु हो वहा जाता है। इच्छित पदार्थको मिलानेका श्रद्धायुक्त प्रयत्न करनाही उस पदार्थकी भक्ति कहाती है। विद्यार्थी विद्या प्राप्तकरनेमें सच्चे मनसे जो श्रम उठाते है उसे ही विद्याकी भक्ति कहते हैं।

अगर स्वतत्रताकी इच्छा करते हैं तो जिन उपायोंसे स्वातत्र्य मिल सकती हो, उनका विचार करना अवश्य है।

जैसे धनकी इच्छा वाले धनकी भक्ति करते हैं, वैसेही स्वतंत्रताकी इच्छा वालोंकोभी स्वतंत्रताकी भक्ति करना चाहिये। ठंड उड़ानेके लिये यदि कोई दीपकका सेवन करे तो दीपक उसकी शक्तिके अनुसार किंचित् मात्रही ठंड उडा सकता है। सम्पुर्ण ठंड उड़ानेको तो अच्छी प्रज्वलित अग्निही आवश्यक है। इसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये अपन जगतकी अन्य वस्तुओंकी सेवा अर्थात् भक्ति करें, तो वे उनकी शक्तिके अनुसारही फल दे सकती हैं। वे स्वयम्ही परतंत्र हैं अर्थात् जब कि वेही पुर्ण स्वतंत्र नहीं हैं, तो फिर अपनेको स्वतंत्रता कैसे दे सकती हैं। जो पुर्ण रूपसे स्वतंत्र हो उसीकी सेवा अर्थात् भक्ति करनेसें सम्पुर्ण स्वतंत्रता मिलना शक्य है। हम इस बातको पहिलेही सिद्ध करचुके हैं कि पुर्ण स्वतंत्र तो केवल एक परमेश्वरही है। इस लिये अपनेको उस पुर्ण स्वतंत्र परमात्माकी भक्ति करनाही इष्ट है।

अपन दुःखसे छुटनेकी इच्छा करते हैं तो फिर जिस स्थानमें सुख हो वहां जानेसे अपने दुःखकी निवृत्तिका उपाय हो सकता है। परन्तु कोई यह कहे कि अच्छा २ भोजन करनेसे, उत्तमोत्तम वस्त्रादि पहिननेसे, बड़ी २ इमारतों में निवास करनेसे, गाड़ी घोड़े दौड़ानेसे और ऐसे ही कई प्रकारके भोग विलास करनेसे जब सुख मिलता है तो फिर इन्हें

क्यों नहीं करना, और दु ख टालनेके लिये परमेश्वरकी भक्तिही क्यो करना चाहिये ? हा ! यह सत्य है कि इन बातोंसे अपनेको एक प्रकारका कुछ सुखसा मालुम होता है, परन्तु वह बहुतही थोडी देरतक रहने वाला अर्थात् क्षणिक है। अपनेको भोजन तबीतक अच्छा लगता है जबतक कि अपनी भूख तृप्त न हो। वही भोजन जो अधिक हो जाय तो विष सरीखा लगता है। यदि भोजनमें सुख हो तो जैसे २ वह ज्यादा अभ्यास कियाजाय वैसे २ अधिक २ सुख होते जाना चाहिय। बीमारीकी दशामें किसीकी मृत्यु हो जाय उस समय या ऐसेही औरभी किसी प्रसंगपर खान पान घर वार अपने किराने कोइ नहीं भाते है यदि ये सुखके देने वाले हों तो सभी समय इनसे इस प्रकार सुख मिलना चाहिये, जैसे अपन अग्निको चाहे दु खमें सुखमें, सोते वा जागते, किसी समयमें भी अपने हाथसे स्पर्श करें तो अपन दाजे विना नहीं रहते है, क्यों कि अग्निमें उष्णता सब घडी रहती है। यदि विषयों अन्दर सुख हो तो जब कभी उनका सेवन किया जाय उसी समय उनसे सुखकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु जब ऐसा नहीं हो तो यही कहना पडता है कि विषय सुखदायक नही होते हैं। इसी लिये जिनको इच्छा दु ख टालनेकी अर्थात् सुख प्राप्त करने की हो उन्हें उचित है कि उस अखड सुखके देने वालेसे ही ठीक सम्बन्ध रक्खें

जिसे किसी क्षण मेंभी दुःख नहीं व्यापता है; और जिसको, चाहे बीमारीकी दशामें, चाहे आरोग्यतामें, चाहे विपत्तिमें चाहे शोकमें जब कभी सेवा अर्थात् भक्ति की जाय, अवश्य ही सुख प्राप्त होता है। यह पहिले ही निश्चय हो चुका है कि वह अखंड सुख स्वरुप केवल परमेश्वर है! इससे यही सारांश निकलता है कि सच्चे सुखके अर्थ परमेश्वरकी भक्ति करनाही आवश्यक है।

यदि अपन पूर्णज्ञानकी इच्छा करते हैं तो सम्पूर्ण ज्ञानवानकी भक्ति करना योग्य है। एक या दो विषयोंके ज्ञान वाले शिक्षक कि जो अपन सेवा करें तो अपनेको एक या दो विषयोंका ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है, और बहुतसे छोटे बड़े विषयोंके जानने वालेकी सेवा करें तो वे बहुतसे विषय सीख सकते हैं, परन्तु सब विषयोंका यथार्थ ज्ञान तो केवल एक परमेश्वरही में हैं; इसलिये यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति के अर्थ इसीकी भक्ति करनेके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। इसी प्रकार यदि कोई निर्दोष होना चाहता है तो उसे चाहिये कि सर्व गुण युक्त ईस्वरके गुणानुवाद करके तिसके सदृश होनेकी इच्छा करता हुआ अपने दोषो को दूर करे तो वह एक दिन निर्दोष होकर सांसारिक जन्म मरणसें रहित अविनाशी हो सक्ता है इतना विवेचन करनेसे यही सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण स्वतंत्रता, सच्चा सुख पूर्ण

ज्ञान और निर्दोषता प्राप्त करनेके लिये केवल ईश्वरसे सम्बंध करना-ईश्वरका सेवन करना-ईश्वरकी भक्ति करना ही उचित है।

कितनेक आलसी मनुष्य यहभी कहा करते है कि ऐसी स्वतन्त्रता, ऐसे सुख और ऐसे ज्ञान, ऐसी निर्दोषतासे हमें क्या करना है? जो हम ईश्वरकी भक्तिकी इतनी वडी भारी खटपटमें पडे, जो थोडा बहुत सहजहीमें मिलजाय वही हमें तो बस है, लाख मिलाकर लखेश्वरी न बने तो न सही भाग्यसे जो कुछ समयपर मिले वही अच्छा है विचार करना चाहिये कि खुले मैदान किंवा जंगलकी उत्तम हवासे शरीर की आरोग्यता बनी रहती है, शरीर प्रफुल्लित रहता है, मगजमें तरावट बनी रहती है, कामकाजमें तबियत लगती है, इत्यादि नाना प्रकारके जो लाभ होते है उन्हें न मान कर यह कहना कि स्वच्छ और मैली हवामें क्या है? कहीं भी स्वास लेनेसे मतलब रख कर गंदगीसे भेरी हुई हवामें यदि कोई पडा रहे तो क्या ऐसा मनुष्य कोई समझदार माना जायगा?

कोई? जो भक्तिके वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ होते हैं बहुधा ऐसा भी कहा करते है कि भक्तिसे सुखादि मिलनेका विश्वास क्योंकर करना चाहिये जब कि कई भक्ति करनेवाले बड दुःखी हुए दीख पडते है। ऐसी शंका करने वालोंको

जानना चाहिये कि कभी सूर्यके पुर्वमें उदय होनेकी अपेक्षा पश्चिममें उदय होनेकी वात भलेही संभव होजाय, पानीके नीचे जमीनपर वहनेकी अपेक्षा कदाचित् कभी ऊंची जगहोंमें वहना संभव हो जाय, परन्तु भक्ति करनेवाले मनुष्य स्वतंत्र सुखी सर्वज्ञ और निर्दोष हो सके, यह बात किसी कालमेंभी संभव नहीं हो सकती है। जिस प्रकार कोई अग्निको अपनी अंगुलीसे स्पर्श करके दाजे विना नहीं रहता है, जिस प्रकार कोई पानीमें डुबकी मारकर भीगे विना नहीं रहता है, उसी प्रकार ईश्वरकी भक्ति करने वालाभी सुखरूप हुए विना नहीं रह सकता है, क्योंकि जो वस्तु जिसके साथ यथार्थ और निरन्तर सम्बन्ध रखती है वह उसके गुण ग्रहण किये विना नही रहती है। अग्निके सन्निकट आया हुआ लोहा अग्निसा लाल सुर्ख होजाता है। लोहचुंबकसे लग रहनेवालेके साधारण टुकड़े टुकड़ेमेंभी कई दिनोंतक दूसरे लोहेके छोटेसे टुकड़ेको आकर्षण करनेकी शक्ति आजाती है। विद्वानोंका संग प्रीतिसे सेवन करनेवाले विद्वान् और मुर्खोंके सहवाससे कई मूर्ख बन जाते हैं. सब जगह संगहीका महात्म्य दृष्टि आता है, तो ईश्वरके संगमें प्रीति पुर्वक रहने वालेमेंभी ईश्वरके गुण आ जाना स्वाभाविकही है।

साधारण रूपसे जो देखाजाय तो मालूम होता है कि भक्ति तीन प्रकारकी है—नामकी भक्ति, कच्ची भक्ति और सच्ची

भक्ति। जो ऊपरसे तो भक्तका डौल रखते हैं पर मनमें कुछभी न हो वे नामधारी भक्त कहाते हैं। ये लोग अपना ऊपरी डौलभी उदरपोषणके अर्थ किंवा ऐसेही दूसरे किसी कारणसे रखते हैं। इस प्रकारके भक्तोंको यदि दुःख व्यापे तो क्या ऐसा कहा जा सकता है कि भक्ति करने वाले दुःखी होते हैं। जब भक्ति पुरी ? जमीही नहीं और ऐसी अवस्थामें यदि कोई विपत्ति आगई, तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि भक्ति करने वालोंको विपत्ति आ घेरती है। जब कोई विद्याभ्यास करता है उस समय वह एक पाईभी नहीं कमाता वरन उल्टा प्रतिवर्ष दोसौ, चारसौ रुपये खर्च किये चला जाता है, ऐसा देखकर कोई कहे कि विद्याभ्यास करने वाले निर्धनी होजाते हैं, तो क्या यह कथन बुद्धिमानोंको मान्य होगा? किसान खेती करता है उस समय खेतमेंसे एक दानाभी खा नेको नहीं मिलता है, तो इसपरसे क्या ऐसा तात्पर्य निकालना चाहिये कि खेतीमें खानेको अन्नका दानाभी नहीं मिलता है? कई मनुष्य परमेश्वरके सच्चे चिन्तवनकी ओर तो ध्यान नहीं देते, और जब कोई संकट आजाता है तो भक्तिको दोष देते हैं, ये कैसी हास्यजनक बात है! किसी विद्वानने कहा है कि –

प्रभुताको सबही चहैं, प्रभुको चहैं न कोय,
जो कोई प्रभुको चहैं, तो सहजहि प्रभुताहोय ॥

अर्थात् परमेश्वरकी भक्ति कोइ नहीं करते हैं, परन्तु भक्तिसे मिलने वाला जो परमेश्वरका ऐश्वर्य है उसकी भक्ति सब कोई करते हैं। जो ऐश्वर्यकी इच्छा न करके परमेश्वरही की सच्चे मनसे भक्ति करें तो उन्हें ऐश्वर्य आदि जो कुछ चाहिये आपही मिलजाता है। सांसारिक पदार्थोंकी औरसे लालसा छोड़कर शुद्ध अन्तःकरणसे परमेश्वरकी भक्ति करनेके उपरान्त, जो उसका फल प्राप्त न हो तो फिर सारे जगतमें ऐसा ढंढेरा फेर देना ठीक होगा कि ईश्वरका मानना और उसकी भक्ति करना वृथा है। परन्तु कुछभी करके देखे विना योंही कुतर्क करते बैठना केवल अनुचितही नही पर लांछनास्पद है। वास्तवमें परमेश्वरकी भक्ति करना ऐसा सर्वोत्कृष्ट उपाय है कि जो आजतक किसीकोभी निष्फल हुआ सुनाई नहीं दिया है। जो मनुष्य ऐसे उपायके साधनोंमें तन मनसे तत्पर बने रहते है, वेही इस जगतमें धन्य हैं !

कई ऐसेभी कोते विचारके मनुष्य हैं जो यही कहा करते है कि मनुष्यकी बाल्यावस्था विद्याभ्यासके, युवावस्था सांसारिक कामोंके और केवल वृद्धावस्था परमेश्वरकी भक्ति करनेके लिये है। जरा सोचनेसे यह बात ध्यानमें आजावेगी कि उनका यह कथन कितना कुछ सत्य है। यदि मनुष्यको सुख सभी अवस्थाओंमें आवश्यक है तो ईश्वरकी भक्तिभी सब अवस्थाओंमें आवश्यक होसकती है। क्या बाल्यावस्था और

जवानी दु:ख भोगनेके लिये और केवल वृद्धावस्थाही सुख भोगनेके लिये है ? सच पूछा जाय तो जिसने अपनी छोटी उमर तथा जवानीमें एक घडी भरभी परमेश्वरका ठीक स्मरण नहीं किया, ऐसे वृद्ध मनुष्यको अपन देखते हैं कि उसके मनकी वृत्ति एक क्षणभी ईश्वरकी और नहीं झुकती है। इसलिये इस विषयका शुद्ध सस्कार बाल्यावस्था ही में हो जानेसे बडे होनेपर उत्तम फल होता है।

चाहे कोई बालक हो वृद्ध, चाहे कोई पुरुष हो या स्त्री, चाहे कोई पठित हो या अपढ, चाहे कोई श्रीमान् हो या कगाल, चाहे कोई ऊंची जातिका हो या नीची, चाहे कोई देशी हो या विदेशी, सब कोई परमेश्वरकी भक्तिके सच्चे रहस्यको जाननेके अधिकारी हैं, इतना ही नहीं परन्तु परम कर्तव्य है कि वे उस सर्व शक्तिमानकी भक्ति करते हुए अपने जीवनको सफल करें।

हम इस बातको पहिलेही सिद्ध करचुके हैं कि ईश्वर की भक्ति करनेसे मनुष्य सुखी होते हैं। यह बात भी किसी से छुपी नहीं है कि भारतवर्षमें क्या हिंदु, क्या मुसल्मान, क्या जैन, क्या पारसी, क्या ईसाई और क्या अन्य प्राय सभी ईश्वरको माननेवाले हैं। ये लोग "ईश्वर है ऐसा केवल मानते ही नहीं, वरन उसका स्मरण, चिन्तवन, प्रार्थना, उपासना और भक्तिभी करते हैं। ऐसी दशामें

एक महत्वका प्रश्न उपस्थित होता है कि इस समय पृथ्वीपर कई ऐसे देश हैं, जहांके अधिकांश लोगोंकी ईश्वरकी भक्ति करनी तो दूर रही; पर उसके होनेहीमें चाहिये वैसा विश्वास नहीं है, और भारतवासी हजारों वर्षोंसे उसके साथ सम्बंध रखते हुए चले आये हैं, तो फिर इस देशकी वर्तमान स्थिति उन देशोंकी स्थितिसे अच्छी होनेकी अपेक्षा खराब क्यों दिखाई देती है ? विचार करनेसें इस प्रश्नका ठीक उत्तर समझमें आ सकता है । अपन किसीभी कामका आरंभ करते हैं तो जैसे २ उस कामके सम्बंधमें अपना प्रयत्न होता जाता है वैसे २ अपन उस प्रयत्नके सारासारकी ओर दृष्टि रखते हैं. यदि अपने काम करनेका ढंग चाहिये वैसा न हुआ तो किया हुआ सब परिश्रम निरर्थक जाता है । कार्यके पूरे होनेका सारा आधार प्रयत्नकी सार्थकता ही पर रहता है; इस लिये कोईभी कार्य क्यों नहो, पहिले उसे सब प्रकारसे भली भांति समझ लेना और फिर आरंभ करना उचित है । अब सोचना चाहिये कि अपन कोट्यावधि भक्ति करनेवाले भारतवासियोंमेंसे ऐसे कितनेक निकलेंगे जो ईश्वरके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप को यथोचित समझकर उसकी भक्ति करनेकी ओर लगे हो ? इन कोट्यावधियोंमेंसे ऐसे कितनेक होंगे जो ईश्वरके सम्बंधमें कई दिनों अथवा वर्षोंसे नित्य जो कुछ तो भी खटपट

करते हैं उसके सारासारका योग्य विचार रखकर जहां कहीं उनकी कृतिमें कोई दोष आ गया हो तो उसे सुधारकर उस कार्यकी यथार्थ उन्नति करते चले आये हों ? सैकडों और हजारोंका तो क्या कहना पर लाखोंमेंभी ऐसे थोडे बहुतही मिलने कठिन है । जिस समय इस भारतवर्षके प्रत्येक भक्ति करनेवालेका ईश्वरके साथ सच्चा सम्बंध था उस समय इसका सब देशोंमें शिरोमणि गिना जाना सर्वथा सम्भवनीय जान पडता है. और आज अपनेमेंसे सत्यताका इस प्रकार अभाव होनेसेही यदि इस देशकी यह दशा हो तो आश्चर्यही क्या है !

अपनेमेंसे कइ लोग तो ईश्वर प्राप्तिके साधनहीको ईश्वर मानते चले है, कितनेक भलतेही पदार्थको ईश्वर कहते है । कोई २ तो ईश्वरके सम्बधमें जैसा ठीक जानते है वैसाभी कर नहीं देखते है । ऐसेभी बहुतेरे लोग है जो केवल लोक-निन्दाके डरसे, अथवा व्यवहार रूपसे बतलानेके लिये ईश्वर सम्बन्धी बातोंको जैसे बने तैसे मानते हैं । इस विषयकी कई बातें बहुतही प्राचीन कालसे प्रचलित हैं, और बडेही कालान्तरके कारण किसीभी प्रणालीके स्वरूपमें किसी अंगमें तोभी, फेरबदल होजाना स्वाभाविकही है । धर्मविरोधियोंहीने नहीं पर अपनेमेंसेभी कई स्वार्थी लोगोंने, उनके थोडसे दिनके लिये अथवा किसी पक्ष विशेषको समर्थ

न करनेके अर्थ, अथवा अन्य और अत्यन्त विचार पुर्वक ठहराइ हुइ ईश्वर सम्बन्धी व्यवस्थामें कांटे विखेरकर, वहुत कुछ हानि पहुंचाई है।

भक्ति शब्दका अर्थही श्रद्धा अर्थात् प्रीति है। मनुष्य मात्रकी श्रद्धा सुखरूप वस्तुमें रहती है, और इस वातका पहिलेही निर्णय हो चुका है कि पुर्ण सुख रूप केवल एक ईश्वर है. इस लिये मनुष्य मात्रकी श्रद्धा इश्वर पर होना इष्ट है। यथोचित् नियम और श्रद्धा पूर्वक अभ्यास करनेवाले मनुष्य कम मिलते हैं और जो इस प्रकार करते हैं वेही अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं।

सर्व साधारण मनुष्योंको चाहिये कि सबसे पहिले किसी अनुभविक और परोपकारी सज्जनसे ईश्वर सम्बन्धी वातोंका इस प्रकार श्रवण करें जिससे उनके अन्तःकरणमें सच्ची रूचि उत्पन्न हो। फिर उसकी भक्ति करनेकी कितनी कुछ आवश्यकता है और जिन मार्गोंसे उसकी भक्ति होती है उन्हेंभी ठीक २ जानलें। तिस पीछे अपनी रुचिके अनुकूल जो मार्ग अपने लिये उत्तम ठहरताहो उसे उत्साह वुद्धिसे धारण करें, और नियम वांधकर उसके अनुसार अभ्यास किया करे। इस प्रकार अभ्यास करते रहनेसे उसका व्यसन हो जाता है। अति दृढ व्यसनके परिणामही को स्वभाव

कहते हैं। दृढ निश्चयसे अभ्यास चलता रहता है। अभ्यास करते २ कुछ दिन बाद उस कार्यके सम्बन्धमें विशेष बोध होता है, और इस प्रकारके बोध होनेसे पूरा विश्वास जमता है। विश्वासहीसे मन आसक्त होजाता है और दृढ विश्वास सहित अभ्यास करनेसे मनकी एकाग्रता होती है। मनकी एकाग्रता होनेके उपरान्त निज अभ्यासकी दशा प्राप्त होती है और निज अभ्याससे फिर इच्छित कार्य सफल होता है अर्थात् ईश्वरका प्रत्यक्ष अनुभव, पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति, ब्रह्मानन्द जन्म मरणसे मुक्त, इत्यादि जो कुछ कहते हैं सो अवश्य होता है।

उक्त बातका ही हम अब दूसरे प्रकारसे विवेचन करते हैं। मनुष्यके सुख दुःख, लाभ हानि, जय पराजय, सब कुछ उसके विचार ही पर आधार रखते हैं। जिसके जैसे विचार होते हैं बहुधा वैसेही उसके काम हुआ करते हैं, और जिस प्रकारके संस्कार होते हैं उसी प्रकारके उसको विचार उत्पन्न होते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धिसे उन सत्यासत्य विचारोंको जान सकता है इतना ही नहीं परन्तु उनके मूल कारण जो संस्कार हैं उन्हें भी सुधारनेमें समर्थ हो सकता है। शुद्ध विचारोंके सेवन करनेसे सारासार विवेक बुद्धि सदा बनी रहती है। आचरणके उत्तम होनेकी बात भी विचारहीके आश्रित है। जिसके विचार शुद्ध हैं उसके

आचरण भी ठीक होते हैं, और जिसके विचार ही बुरे हैं तो उसके आचरणका क्या कहना! पारमार्थिक विषय तो क्या, पर सांसारिक व्यवहार–कुशलता की भी तो जड़ सदाचरणही है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि सबसे पूर्व अपने विचारोंकी ओर योग्य ध्यान देवे! बुरे २ विचारोंके कारण बुद्धि जड़ होती जाती है और अन्तमें उसकी किसी भी बातमें ठीक भला बुरा जानने की ताकत जाती रहती है। ऐसेही दिन रात अच्छे विचारोंके सेवन करते रहने से बुद्धि तीव्र होती जाती है, और अभ्यासके बढ़नेसे केवल धारणाशक्ति ही नहीं किन्तु कल्पनाशक्ति भी बड़ी उत्कृष्ट हो जाया करती है। बुद्धिके ऐसे प्रवाहको फिर एकाग्रतासे धीरे २ बढानेका प्रयत्न करनेसे थोड़े ही कालमें मनुष्य एक ऐसी दशाको प्राप्त हो जाता है, कि जिस विषय को वह श्रद्धा और निश्चय पूर्वक ग्रहण करे, इसके प्रवाहके बलसे वह उस विषय सम्बंधी कई नई २ बातोंको स्वयं ही जानने लग जाता है।

धर्मसे बढकर मनुष्यका सच्चा साथी कोई नहीं है। जिसने संसारमें आकार धर्मको समझकर उसके साथ सम्बंध कर लिया, उसने सब कुछ किया। जो सद्धर्मका पक्ष लेता है उसकी ही उन्नति होती है। ये बाते जैसे प्रत्येक व्यक्ति पर घटती हैं, वैसेही प्रत्येक जाति किंवा देश परभी

जानना चाहिये । यह बात पहिलेही कही जा चुकी है कि भारतवर्षकी दशाके परिवर्तन होनेका मूल कारण धर्म ही है यहा तो यह पृथ्वीके सबतेरे देशोंका धर्मप्रवर्तक बनाथा और बना होते २ धर्मसे ही मानो परतत्रताको प्राप्त होगया । यद्यपि उतनी ऊची श्रेणीसे ऐसी नीची दशा तक कई भारी २ आपत्तिया और सकष्ट यहातक भोगे कि अन्तमे तो धर्मरूपी जिस वृक्षके नीचे इसकी ठुन्डर छाहमे इसने विश्रान्ति की थी वह भाय' सारा सूख गयाथा, तथापि उस वृक्षका बीज दैवयोगसे वैसी दशामेंभी इसके हाथसे जाने नहीं पाया, जोफिर इसकी दशाके कुछ पलटा खाने पर फीर अकुरित तथा पल्लवित हुआ है यहही इन देशका सौभाग्य है कि इसको वर्तमान राजाश्रयमे फिरसे धर्म विषयमे स्वतत्रता मिलगई जिससे वह अकुर बढता २ एक छोटेसे वृक्षके रूपमें हो गया है, और भारतवासियोंको भी आशा बधगई कि भविष्यतमें यह जल्दी हो पहिलेकासा निजातिदायक वृक्ष बन जावेगा, अर्थात् प्राचीन कालमें इस देशके मनुष्य जैसे धामिष्ट और पराक्रमी और सुखी थे वैसेही अब हो जावेगे

निर्दोष चौथा विशेषण ईश्वरको देना चाहिये क्योंकि दोष याने अशुद्धताही जन्म मरणका कारण, सुख स्वतत्रता और सर्वज्ञताका घातक है शुभ भूयात्

कन्हैयालाल.

श्रीयुत् बाबू शेर सिंहजी कोठरी

भूत पूर्व उपदेशक श्री जैन श्वेताम्बर कानफरन्स

देव गुरु, और धर्मका स्वरूप

ले० शेरसिंह कोठारी सैलाना (मालवा) निवासी.

प्रात कालका समय है, स्वस्थचित हुवे २ कोई लोग अपनी धर्मक्रियामें मग्न होरहे है तथा कई व्यवहारादिकमें निपुण पुरुषोंने अपना कार्य शुरु करदिया है. शरद् कालका वख्त होनेसे कितनेही आलसी दरिद्री लोग अवतक अपने बिस्तरेमें सो रहे हैं ऐसा होना अनुचित्त जानकर सूर्य यद्यपि अपने हाथोंके जरिये उनको उठानेकी कोशीस ज्यादे ज्यादे कर रहा है, तदपि वे आलस्य वश उठना नहीं चहाते गरज जब कि एक प्रहर भर दिन बराबर चडि आया उस वख्तमें एक महात्मा, जिनका कि नाम सुखसागर सूरि था, अपनी सर्व क्रियासे निवृत्त होकर शान्ततासे कोइ नवीन ग्रथ की रचना कर रहेथे वे सूरीश्वर ऐसे तेजस्वी ओर शान्त स्वभावीथे कि जिनोने उनके दर्शन किये उनमेंसे शायदही ऐसा कोई दौर्भागी निकला होगा जो स्वय शान्तताको प्राप्त न हुवा हो.

अहा! जब कि उनोंने उस ग्रथको लिखनेको कलम उठाइ उसी वख्तमें अपनी अनेक विदुषी शिष्याओंसे परवारित पुण्यशाली पुण्यश्रीजी महाराज वहा सूरीश्वरजीके दर्शनार्थ

आन पहुंचे सूरी महाराजको आनंदमें मग्न देखकर श्रीपुण्य श्रीजी बोले:-

हे गुरुवर्य! आज आपने कौनसे ग्रंथकी रचना शुरुकी है और उसमें आप मुख्य क्या २ विषय लावेंगे ?

सूरि—हे महानुभावा! सम्यक्त्व दर्शक नाना ग्रंथ लिख रहा हुं और विशेष करके इसमें देव गुरु और धर्मका वर्णन करुंगा.

पुण्य—हे महाराज! यदि आप इस ग्रंथ लिखनेके प्रथम इस विषयको हमारे सामने चर्चेंगे तो अत्यन्त लाभका कारण होगा, यद्यपि इन तत्त्वोंका वर्णन मेरे पढनेमें और सुननेमें बहुतसी वख्त आया है; तदपि आपके मुखसे इस वख्त औरभी सुनना चहातीहुं.

ऐसे वचन श्री पुण्यश्रीजीके सुनकर उक्त सूरिमहाराजके अन्य शिष्य जो कि किसी पंडितके पास पढ रहेथे एकदमसे उठखड़े हुवे और अत्यन्त हर्ष व विनयके साथ सूरिश्वरसे बोले:-

हे दीनदयाल! जो प्रश्न श्रीपुण्यश्रीजीने किया वह अत्यन्त अनुमोदनीय है, कृपाकरके उन तीन तत्वोंके विषयमें हमें भी समझाइयेगा. इन सर्व साहबोमें इस प्रकार बातें होतीहुई सुनकर एक विधर्मी जो कि बहारसे सुन रहाथा एकदम

भीतर आया और हहहहहहहहहह इस प्रकार बहुत जोरसे हसना शुरुकिया

उसका हास्य सुनकर सर्व लोग चकित होगये और थोडी देरके बाद उसे पूछने लगे—

क्यो भाई ! तुझे इतनी हसी क्यों आई ?

नि—अजी साहब ! वाह वा हहहहहहह मेरा तो पेट अभी तक फूले जा रहा है, भला देखो तो जैनी लोग केवल देव गुरु धर्म देव गुरु धर्म पुकारा करते है, न मालूम इन्हे क्या सूझ पडा है कि और बात सूझती ही नही न मआलूम उसके अन्दर ऐसा क्या पदार्थ रखा हुवा है ! ! जब मने आप सबो को इसी विषयमें मग्न देखे तब मुझे बडी भारी हसी आई अच्छा लो अब जाते हैं

इतनेहीम एक श्रावक बोला, भाई ! ठहरो, जरा बैठकर सुन लो कि देव गुरु और धर्म किसे कहते है और जब तुमारी ये समझमें आ जायेंगे तब तुम ऐसे प्रश्नभी नही करा करोगे

उस श्रावकके ऐसे शब्द सुनकर वह निधर्मी बैठ गया

जब कि उसका चित्त शान्त हुवा तब सूरीश्वर बोले—

हे भाई ! तुम कौन जात हो, कहासे आये हो और तुमारा क्या नाम है ?

वि.-हे दीनानाथ ! में ब्राह्मण हुं, इसी शहरमेंसे आया हुं और मेरा नाम यज्ञदत्त है.

सूरि-अच्छा यज्ञदत्तजी ! जरा स्वस्थ चित्त करके सुनो तथा जहां २ तुम्हें शंकाएं पैदा हों जुरूर पूंछना. (अपनी मंडलीकी तर्फ देखकर) हे साधुओ तथा साध्वियों ! अब तुमभी एक चित्त होकर सुनना तथा जो २ संशय पैदा हो बराबर पूंछते जाना.

सर्व-बहुत अच्छा साहब, अब कृपाकर फरमावें.

सूरि-हे श्रोतागणो ! देव गुरु और धर्म इनका स्वरूप यद्यपि बहुत बड़ा है तदपि मैं अपनी तुच्छ बुध्यानुसार कहता हुं सो श्रवण करना.

हमारे जैन शास्त्रोंमें देव दो प्रकारके माने हैं, एक साकार दूसरे निराकार. दोनो ही देव अठारह दूषण करकें रहित, अनंत ज्ञान दर्शन तथा चारित्रमयी होते हैं.

यज्ञदत्त-हे कृपानाथ ! उन अठारह दूषणोंके नाम कृपाकरके फरमावें ?

सूरि-१ अज्ञान, २ मिथ्यात्व, ३ अविराति ४ राग, ५ द्वेष, ६ काम ७ हास्य, ८ रति, ९ अराति, १० भय, ११ शोक, १२ दुगंच्छा, १३ निद्रा १४ दानांतराय, १५ लाभांतराय, १६ भोगांतराय, १७ उपभोगांतराय, १८ वीर्यांतराय.

पु–हे गुरुवर्य ! साकार और निराकार देवका स्वरूप कृपा करके फरमावें ?

सूरि–हे महानुभावा ! साकार ईश्वर अरिहंत भगवानको कहते हैं, वे प्रभु अष्ट महाप्रातिहार्य, चौतीस अतिशय और पैंतीस गुण युक्तवाणी करके सहित होते हैं. उन प्रभुमें मुख्य बारह गुण पाये जाते हैं

वि–सूरीश्वरजी ! यदि आप कृपा फरमाकर बारह गुण तथा चौतीस अतिशयोंका वरणन करेंगे तो बड़ा उपकार समजुंगा

सूरि–हे भाई ! इसमें उपकारकी क्या बात है हमने तो इसही लिये संयम लिया है, सुनो,

प्रथम बारह गुण बताताहुं. अष्ट महाप्रातिहार्य तथा ४ अतिशय ऐसे मिलकर निम्न लिखित तौरपर १२ गुण होते हैं

१ अशोकवृक्ष, २ पुष्पवृष्टि, ३ दिव्यध्वनि, ४ चामरयुग ५ स्वर्णसिंहासन, ६ भामंडल, ७ दुंदुभि ८ छत्रत्रय, ९ ज्ञानातिशय, इसके प्रभावसे वे लोकालोकको अपनी हथेलीकी तरह देखते हैं

१० वचनातिशय, इसके प्रभावसे उनकी वाणी बारह पर्षदाए अपनी २ भाषामें समझ लेते हैं

११ पूजातिशय, इसके प्रभावसे तीन भुवनमें रहे हुवे देव तथा मनुष्य आपकी अर्चा करते हैं.

१२ अपायवगमातिशय–इसके प्रभावसे जहां २ आप विचरते हैं, वहां २ एक २ जोजनतक, अतिवृष्टि, दौर्भिक्षादि नही होते.

चौतीस अतिशय.

१ दिक्षा ग्रहण किये बाद प्रभुके रोम, केश, नखादि वृद्धिको प्राप्त नही होते.

२ प्रभुका शरीर निरोग रहता है.

३ खून गौदुग्ध सदृश होता है.

४ स्वासोस्वास कमलके पुष्प सदृश सुगंधित होता है.

५ प्रभुका अहार निहार कोई देख नही सक्ता.

६ प्रभुके आगे धर्मचक्र चलता है.

७ प्रभुके ऊपर छत्र त्रय रहते हैं.

८ प्रभुके ऊपर चामर युग उडते हैं.

९ प्रभुके विराजनेको स्वर्ण सिंहासन होता है.

१० प्रभुके आगे इन्द्रध्वजा चलती रहती है.

११ प्रभुके साथ अशोक वृक्ष रहता है.

१२ प्रभुके आगे भामण्डल रहता है.

१३ प्रभु जहां २ विचरते है वहां एक २ जोजन तक भूमि समान होजाती है.

१४ प्रभु जहा विचरते हैं वहा एक २ जोजनतक कांटे सीधेके औंधे होजाते हैं

१५ प्रभु जहा २ विचरते हैं वहा २ एक जोजन तक ऋतु अनुकूल हो जाती है

१६ प्रभु जहा २ विचरते हैं वहा एक २ जोजन तक शीतल मंद सुगंधि वायुसे भूमि सुगंधित हो जाती है.

१७ प्रभु जहा २ विचरते हैं वहा एक २ जोजन तक जलसे भूमि शुद्ध हो जाती है

१८ घुटने प्रमाण देवलोग पुष्पवृष्टि करते है
१९ अशुभ वर्ण गंध रस और स्पर्श नष्ट हो जाते हैं
२० शुभ वर्ण गंध रस और स्पर्श प्राप्त हो जाते हैं
२१ एक योजन पर्यन्त वाणी सुनाई देती है
२२ नित्य अर्ध मागधीमें देशना निकलती है
२३ अपनी २ भाषामें वाराहों पर्षदा समझ जाती है
२४ सबका जाति वैरतक छूट जाता है
२५ परवादि शीर नमाते हैं
२६ वादी जीत नहीं सक्ता.
२७ इती रोग (टीडादिकका गिरना नहीं होना)
२८ मरी रोग (प्लेग हैजादि) नहीं होना
२९ स्वचक्रका भय नहीं होता

३० परचक्रका भय नही होता.

३१ अति वृष्टि नही होती.

३२ अनावृष्टि नही होती.

३३ दौर्भिक्ष नही पड़ता.

३४ इनमेंसे अगर पहिले होंभी तो प्रभुके पधारनेसे नष्ट हो जाते हैं.

ये बातें सर्व प्रभुके अतिशयसे अपने आप होती है.

येही सर्वज्ञ भगवान साकार ईश्वर कहे जाते हैं तथा हे महानुभावों ! उन्हींके वचन अपने आप समझे जाते हैं.

यज्ञ–हे भगवान् ! यह काय परसे कह सक्ते हैं कि जैनने जिनको देव मान रखे हैं उन्हीके वचन आप्त हैं और-के नही ?

सूरि–हे भाई ! वे परमात्मा सर्वज्ञथे, उनकों किसीसे सिखनेकी जरूरत नही रहतीथी, उन्हे तो स्वयमेव सर्व मआ-लुम पड़ जाताथा वास्ते उन्हीके वचन आप्त हो सक्ते हैं औरके नहीं.

यज्ञ–गुरुवर्य ! यह काय परसे कह सक्ते हैं कि आपके ईस्वर ही सर्वज्ञथे और वाकी नही ?

सूरि–हे भाई ! हम पहिले ही कह चुके हैं कि जो १८ दूषण करके रहित होते हैं सोही ईस्वर हैं फिर चाहे वो कोई हो ईससे हमे मतलब नही.

यत्न–मगर सूरिराज ! जैनी–लोग तो बड़े ही अभिमान और पक्षपातके साथ कहते हैं कि हमारे तीर्थंकरोंके सिवाय अन्य ईश्वर हैही नही

सूरि –हे भाई ! इसमें पक्षपातकी क्या बात है, उनके चरित्रोसें तथा आकृतियोसे (प्रतिमाओंसे) ज्ञात हो जाता है देखो, श्री हरीभद्रसूरि महाराजने लोकतत्वनिर्णयमें कहा हैं –

श्लोक

बंधुर्नन सभगवान् रिपवोपिनान्ये ।
साक्षान्नदृष्टचर एकतरोपिचैषाम् ॥
श्रुत्वानच सुचरित च पृथग् विशेषं ।
वीरगुणातिशयलोलतयाश्रिता स्म ॥३॥

अर्थ– न अरिहत भगवान मेरे बंधु है और न अन्य देव मेरे रिपु हैं, सबब कि दोनोमेंसे एकको भी आखोसे देखे नही, मगर वचन तथा सुचरित्र सुनकर गुणोके अन्दर लोलुप्य होकर हमने वीर भगवानका ही शरण लिया है

औरभी–

श्लोक

पक्षपातो नमेवीरे, नद्वेष कपिलादिषु ॥
युक्तिमद्वचनयस्य तस्यकार्य परिग्रह ॥४॥

अर्थ–न तो मुझे वीर परमात्मासे पक्षपात है और न कपिलादिकोंसे द्वेष हैं किंतु जिसके वचन युक्ति करके सिद्ध हो जावें सोही ग्राह्य हैं.

श्री हेमचन्द्रसूरिने वीरस्तुतिमें फरमाया है किः–

श्लोक

नश्रद्धयैवत्वयिपक्षपातो, नद्वेषमात्रादरुचिःपरेषु ।
यथावदाप्तत्वपरीक्षयातु,त्वामेववीरप्रभुमाश्रिताःस्मः॥

अर्थ–केवल श्रद्धा मात्र करके तुझपर पक्षपात तथा द्वेष मात्र करके अन्य देवोंपर अरुचि नही है किंतु यथार्थ और आप्त वचनोंकी परीक्षा करके हे वीरप्रभु ! हमने आपही का आश्रय लिया है.

तो निश्चय हो गया के हमें किसीसे पक्षपात नही है.

हे श्रोतागणों ! वे परमात्मा न अपने भक्तोपर खुस होते हैं और न निंदकों पर नाराज होते हैं वरके केवल मात्र सम परिणाम रहकर सर्व जीवोंपर सदृश उपकार करते हैं.

यज्ञ–सूरिश्वरजी ! जब कि आपके प्रभु कुछभी नही कर सक्के तो उनको भजनाभी तो निरर्थक है.

सूरि–हे यज्ञदत्तजी ! करना कराना यह राग द्वेषके ताल्लुक है सो हम तो पहेले ही कह चुके कि सर्वज्ञ परमात्मा

कों राग द्वेष हैही नही, और जो राग द्वेषी होगा वो सर्वज्ञ भी हो नही सक्ता, जब सर्वज्ञ नही तो सर्वशक्तिमानभी नही, गरज कि जो इश्वर है वह कभी किसी काममें हानी या नफा नही करेगा अब रही यह बात कि उनको भजनेसे क्या फायदा ? सो इसके उत्तरमे तो तुम खुदही ख्याल करलो कि यदि किसी गुणवान पुरुष (जो कि कालको प्राप्त हो गया हो उस) का नाम लेवें तो उसके गुण जरूर याद आवेंगे जब गुण याद आवेंगे तो उनका अनुसरणभी करनेका जरूर मोका आवेगा बस तो जगत प्रभुका नामस्मरण करनेसे भला उनके गुणोका अनुसरण क्यों नही हो सकेगा ? अवश्य होगाही तो फिर निश्चय हुवा कि उनके नाममें ही अनंत शक्तियां है तदतिरिक्त हमारा ध्यान निश्चल करनेके वास्ते प्रभु प्रतिमाभी मोजूद है

यज्ञ–हे साहब ! क्या कहते हो, क्या प्रतिमासेंभी भावोंकी वृद्धि होसक्ती है ?

सूरि–भाई यज्ञदत्त ! तुम तो अभीतक मूर्खके मूर्ख ही रहे. तुमको इतनाभी मआलुम नही कि बगैर प्रतिमाके इस ससार भरका कार्य नही चल सक्ता, देखो प्रत्यक्ष नजीरें बच्चा यदि सीखनें लगे तो बगेर आकृतिके अक्षर सीख ही नही सक्ता. इतना ही नही बल्के हुशियार होनेपर भी कन्या

रादि अक्षरोंका आलंबन लेना ही होगा. हां अलबत्ता केवल ज्ञानी हो जावे तो उसे प्रतिमाकी ज़ुरूरत भी नहीं रहती.

हे भाई ! जैसे काम विकारवाली तस्वीरको देखकर कामी लोग विकारको प्राप्त हो जाते हैं तैसे ही धर्मप्रेमी पुरुष प्रभुप्रतिमाके दर्शन करके निरागीपनकी हालतको प्राप्त हो जाते हैं.

यज्ञ–हे कृपानाथ ! इस शंकाशील हृदयमें कई शंकाएं उत्पन्न हो रही हैं. अब इस वख्त मुझे प्रश्न पैदा होता है कि कोईभी विधवा स्त्री अपने पतिकी फोटो अपने सामने रख कर नित्य प्रति कहा करे कि हे पति ! मुझसे विषयसुख भोग तो क्या वो भोग सक्ता है.

सूरि–प्रिय यज्ञदत्तजी ! तुमारा यह प्रश्न अज्ञानतासे भरा हुवा है. भला तुमही ख्याल करो कि हम तो पहिले ही कह चुके कि हमारा ईश्वर कुछभी नहीं करता. खैर तुम यह तो मानते हो न कि नाम तो ईश्वरका लेना चाहिये ?

यज्ञ–जीहां,

सूरि–अच्छा तो सोचो कि वही विधवा स्त्री यदि केवल अपने पतिका नाम रटन करे तो क्या वह उसकी ईच्छा पूर्ण कर सक्ता है ? कदापी नहीं ! तो बस सिद्ध हुवा कि जो नामके अन्दर गुण मानने वाले हैं उनको तो अवश्य स्थापना

माननी ही पडेगा और जो स्थापनाको नही मानते उन्हे नामभी छोडना होगा क्यों समझे न.

यज्ञ–वाह दीनानाथ ! खूब आनद वर्तादिया, आज मेरी शङ्का विल्कुल दूर हो गई. अहा ! क्या सर्वज्ञ परमात्मा कभी अयथार्थ कह सक्ता है ? कभी नही ! तोबस अब जान लिया कि अवश्यमेव अरिहत भगवान ही साकार ईश्वर हो सक्ते हैं, अस्तु

पु–हे गुरुवर्य ! अब कृपाकर निराकार ईश्वरका बयान फरमावें

सूरि–हे आर्या ! निराकार ईश्वर सिद्ध भगवानको कहते हैं जब कि अरिहत भगवान चौदमें गुणस्थानको पहुचने के बाद एक समय मात्रमें सिद्धशिलाके अग्र भागको पहुच जाते है तब वे सिद्धात्मा कहलाते है वहा जानेके पश्चात् उनके आन्तिम शरीर मान आत्म प्रदेशका तीसरा भाग सकोच जाता है वे अनत ज्ञान, दर्शन, चारित्र करके साहित होते हैं तथा ससारमें उनका पुनरागमन नही होता

सर्वमङ्गली–हे कृपालु गुरराज ! आपने जो ईश्वरका बयान फरमाया सो अत्यन्त प्रशसनीय तथा आदरणीय है, अवश्यमेव ऐसे ही देवको सुदेव कहना चाहिये. अब कृपाकर सुगुरुका बयान फरमावें.

सूरि–(हर्षित होकर) हे भव्य प्राणियों ! मुझे आनंद इस वख्त इस बातका होता है कि तुम लोग बड़े ही सुलभ बोधी हो, देखो, थोड़ेसे ही उपदेशसे किस योग्यताको प्राप्त हो गये ? (जरा मुशकरा कर) क्यों यज्ञदत्तजी ! अबभी कुछ शंका है. ?

यज्ञ–कृपानाथ ! सूर्यके सामने अंधेरेका क्या काम, आप जैसे योग्य पुरुष मिले फिर शंकाकी जुरूरत ही क्या है. अब तो कृपाकर सुगुरुका स्वरूप जल्दी ही सुना देवें.

सूरि–अच्छा तो अब एक चित्त होकर सुनो मै कहताहुं.

सुगुरु वे हैं जिनोने गृहस्थावासको त्यागन करके पंच महाव्रत अंगीकार किये हैं, सर्वदा माधुकरी, तथा ४२ दोष रहित आहारके लेनेवाले हैं. सदा अप्रतिबंध विहार करते हैं. कोईभी तराहके प्रपंचमें वे दखल नहीं देते. ज्ञाना-भ्यास करके परोपकारके हेतु भव्यजनोको प्रतिबोध देते हैं, इस सुगुरु शब्दमें आचार्य्य, उपाध्याय और साधु तीनका समा-वेश होता है. इनके क्रमसे ३६–२५–और २७ गुण होते हैं. सो ग्रंथांतरसे जान लेना, आचार्य महाराज गच्छके थंभ भूत तथा पंचाचारके पूर्ण मालिक होते हैं. उपाध्याय महा राज अंगोपांगके पाठक होते हैं. तथा पवित्र साधु साध्वि अपना संयम निष्कलंक पालन करनेमें तत्पर रहते हैं, उनको उनके पांचो महाव्रतोंका बड़ा भारी ख्याल रहता है.

यज्ञ–हे सूरिराज ! वे पच महाव्रत कौनसे हैं सो कृपा कर फरमावें

सूरि–हे यज्ञदत्त ! पाचो महाव्रतोंका बयान मे व्यवहार निश्चय करके कहता हु सो सुन –

प्रथम अहिंसा व्रत–व्यवहार किसी त्रस या स्थावर जीवकी हिंसा करे नही, करावे नही तथा करतेकों अनुमोदे नही मन वचन और काया करके निश्चय, राग द्वेष करके अपनी आत्माको नही हणें

दूसरा सत्यव्रत व्यवहार–झुठ बोले नही, बोलावे नही तथा बोलतेको अनुमोदे नही मन वचन और काया करके निश्चय पौद्गलीक वस्तु जो पर गिनी जाती है उसको अपनी न कहे

तीसरा अस्तेय व्रत व्यवहार–चोरी करे नही, करावे नही, करतेको अनुमोदे नहीं मन वचन और काया करके निश्चय अष्टकर्मकी वर्गणाको ग्रहण करनेका उपाय न करे

चौथा ब्रह्मचर्यव्रत व्यवहार–स्वपर स्त्री भोगे नहो भोगावे नही, तथा भोगतेको अनुमोदे नहीं. मन वचन और काया करके निश्चय पुद्गलमें रमणता न करे

पाचवा अपरिग्रहव्रत व्यवहार–समूर्छा परिग्रह रक्खे नही, रखावे नही, रखतेकों अनुमोदे नहीं. मन वचन और काया करके बल्के एसा समझे कि

श्लोक

द्रव्यानामर्जने दुःखं अर्जितानां च रक्षिते ।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थो दुःख भाजनम् ॥५॥

अर्थ—प्रथम तो द्रव्यको पैदा करनेमें केवल दुःख ही दुःख है, बादमें रक्षा करनमें बड़ा भय बना रहता है सोभी दुःख, आते दुःख, खर्चते दुःख; वास्ते ऐसे दुःखके भाजन रूप द्रव्यको धिक्कार होवो.

निश्चय—निम्न लिखित व चार प्रकारका परिग्रह नही रक्खे अथवा हमेशा न्नयू करता रहे.

१ मिथ्यात्व, २ क्रोध, ३ मान, ४ माया, ५ लोभ, ६ हास्य, ७ रति, ८ अरति, ९ शोक, १० भय, ११ जुगुप्सा, १२ पुरुषवेद, १३ स्त्री वेद, १४ और नपुंसकवेद.

हे भाई ! इन पंच महा व्रतोंके अतिरिक्त छट्ठा व्रत रात्री भोजनका होता है. वह यह है कि कभी रात्रीमें खान पान करे नही, करावे नही तथा करतेको अनुमोदे नही. मन वचन और काया करके.

हे भव्य प्राणियो ! वे मुनिराज तीर्थंकर देवके कथनानुसार सत्य प्ररूपणाके करने वाले होते हैं. वे मुनिवर्य अष्ट प्रवचन माताके पालक होते है. हे भाई ! मैं उन आठों माताका

बयान करता, मगर वख्त थोडा है और बयान बहुत है सबब कभी ज्ञानी गुरुका साथ मिले तो श्री उत्तराध्ययनसूत्रके २४ वे अध्ययनमेंसे सुनलेना

हे महानुभावों ! तुम उन्हीको साधु साध्वि मानना कि जो केवल स्व परोपकार करनेमें तत्पर हो, प्रपची, वेश धारियोंकों कभी साधु मत मानना क्यों साहब समझे न ?

शिष्यवर्ग–हे कृपानिधि । आपने जो देव और गुरुका स्वरूप फरमाया सो बरुबी समझमें आ गया अब कृपाकर धर्मका स्वरूप समझाईयेगा–

सूरि–हे महानुभावों ! जिसमे अहिंसा परमो धर्म मुख्यता करके रहा हुवा हो उसीका नाम सच्चा धर्म है कई मतावलम्बी अहिंसा परमोधर्मके उद्‌गार तो जोर २ से निकालते है मगर वास्तविक म देखा जावे तो जैसे जैनने उस सूत्रकी मुख्यता मान रक्खो है वैसी ही अन्य धर्म वालोंने उसकी गौणन्यारी है

हे श्रोतागणों ! तुम खुद जानते हो कि अपने अन्दर दयाका वर्णन कितनी सूक्ष्म तौरसे किया गया है ? म इस वख्त तुमको केवल मात्र संक्षेपसे दयाका वर्णन करता हु.

अपने शास्त्रोंमें दयाके ४ भेद किये है. १ स्वदया २ परदया ३ द्रव्यदया ४ और भावदया.

स्वदया उसे कहते हैं कि कषायादि परिणामोंसे जो अपनी आत्मा कर्मोंसे भार भूत है सो न करे, जब अपने स्वयंकों ये ज्ञात हो जावेगा कि मैंने अपने आत्माको आत्म पनसे मलीन होते हुवे वश कर स्वदयाकी है तो अवश्य पर दयाकी तर्फ खयाल होवेगा और जिस सहनशीलतासे अपनोमें स्वयं अपनी आत्माको फंदमें नही फंसने दिया तैसे दूसरे जीवोंकोभी करनेको उपदेश देंगे. बस तो जब अन्य पुरुषोकों उपदेश देकर उसके आत्माका बचाव करावेंगे तो वह पर दया कही जावेगी.

द्रव्य दया उसको कहते हैं कि चाहे अंतरंग परिणाम न भी हो मगर किसी जीवको आफतमें फसते मारे जाते वगैरः हालतमें देखकर उसकी रक्षा करना.

भावदया उसे कहते हैं कि चाहे वो किसी जीवको दुःखी छुडानेको समर्थ हो वा नही, मगर उस प्राणीको देखकर मनमें कोमल परिणामोंसे उसके छुडानेके भावना कर यथाशक्ति प्रयास करे. हे प्रियवरो ! इसका विवेचन तो बड़ा भारी है मगर समय अधिक न होनेसे कह नही सक्ता.

यह जैन धर्म खास सर्वज्ञ कथित स्याद्वाद मयि नय निक्षेपो तथा प्रमाणो करके सिद्ध हुवा है. वास्ते यथावत् देखा जावे तो इसमे संशय जैसा मौका ही नही आता, हां

अलवत्ता कदाग्रही पुरुषको तो यह मार्ग मिलना मुश्किल होगा मशल मशहूर है कि " पीलियेके रोगवाला जब वस्तु ओंको पीली ही देखता है तो विचारा प्रथक २ बयान करके निश्चय करनेको समर्थ हो ही कैसे सक्ता है " गरज कि कदाग्रहीकों मिथ्यात्वरूप पीलियेका रोग ऐसा जबरदस्त लगा हुवा है अर्हत भाषित उज्वल धर्मरूप धवल वस्तुभी उसको मिथ्यात्वरूप दिखती है मगर हा उसमें ज्यादेतर उसके दुष्कर्मोंकी प्रबल्ता है.

शिष्यवर्ग—हे कृपानाथ ! कृपाया किंचित मात्र स्वरूप स्याद्वाद व नय निक्षेपोंकाभी फरमावें, कारण कि यह विषय गहन होनेसे वार २ सुननेकी आवश्यक्ता होती है

सूरि—हे धर्मप्रेमीयों ! तुम एक चित्तसे श्रवण करना मैं कहता हु मगर हा, उस विषयको कथन करनेके पेस्तर यह कह देना ठीक समझता हु कि यह विषय अत्यन्त गहन है और पूर्ण तोरसे चर्चनेको टाईमभी बहुत चाहिये सबब उपर पूछे हुवे विषयोंके केवल मात्र शब्दार्थ कुछ २ विशेषार्थ कह सकुंगा ज्यादे नही

शिष्यवर्ग—जेसी आपकी इच्छा

सूरि—स्याद्वादका अर्थ इस प्रकार होता है व्याख्या " स्यात् कथंचित् सर्व दर्शन सम्मत सद्भुत वस्त्व शानामिय

सापेक्ष तया वदनं स्याद्वादः ” अर्थ. सर्व दर्शन मान्य ऐसे जो वस्तुओंके सुष्टु अंश उनको परस्परमें अपेक्षा सहित कहना सो स्याद्वाद है.

अपरच “ सदसन्नित्यानित्य सामान्य विशेषाभिलाप्या नभिलाप्यों भवात्मानेकान्त इत्यर्थः अर्थ-सत् असत् नित्य, अनित्य, सामान्य, विशेष, अभिलाप्य, अनभिलाप्य, तथा हर दोनोंका जो वताना सो स्याद्वाद वा अनेकान्तवाद है.

यज्ञ-हे सूरिवर्य ! ईस शंकाशीलदासको एक शंका पैदा हुई है वह यह है कि, आपने पहिले सर्व दर्शनोंके मान्य सद्भुत वस्त्वंश वताये सो ये कैसे संभव हो सक्ता है सबब कि सर्व दर्शनीय आपसमें विरुद्ध भाषि हैं और जो ऐसा ही होता तो हम आपके मतको स्याद्वाद नही कह सकेंगे.

सूरि-हे भाई ! यद्यपि सर्व दर्शन वाले अपने २ मत भेद कर्के आपसमें विरोधी हैं, लेकिन जो उनके कथन किये हुवे हैं सोभी अवश्य वस्त्वंश हैं. और इसीसे आपसमें जब उनका मुकाबला करते हे तो सप्टु ही कहे जासक्ते हैं. जैसे बौद्धने अनित्यत्वको और सांख्यने नित्यत्वको माना है और हकीगतमे देखा जावे तो नित्यानित्य दोनो ही मानना ठीक है सबब नित्यत्व और अनित्यत्व ये दोनो अलग २ मानने वाले अलग २ मत वाले तथा एक दूसरे के विरुद्ध भाषि है

मगर वे नित्यानित्यत्व जो है सो असत्य नही है. इति. क्यों भाई! समझे न

यज्ञ–हे कृपानिधे! खूब समझ गया, अब कृपाकर आगे फरमावें

सूरि–हे श्रोतागणों! स्याद्वादके मानने वाले शुद्ध तत्वज्ञ पुरुष नित्यानित्य सामान्य विशेष अस्तिनास्ति आदि सर्वको मान्य करते हैं एकांत मिथ्यात्वता न कर नही बैठ रहते इस प्रकार कथन जहा हो उसे स्याद्वाद कहते है

शिष्यवर्ग–हे गुरुवर्य! अब इसी प्रकार कथचित नयोंका वणन फरमावें

सूरि–हे महानुभावों! श्री अर्हन्त कथित धर्ममे नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे सात नयमाने हैं

नैगमनय एक देश ग्राही होता है और उसके, भूत, भविष्य, और वर्तमान करके तीन भेद होते हैं

भूतनैगम अतीते वर्तमाना रोपणं यत्र सभूतनैगम अर्थ–भूतकालकी बात वर्तमानमे वर्तावकर कहना सो भूत नैगम है यथा–अद्य दीपालिकायां अमावस्यायां महावीरो मोक्षगत आज दीवालीके अमावस्याको महावीर स्वामी मोक्ष गये.

यद्यपि महावीरस्वामि अतीतकाल आश्रयी दीवालीपर मोक्ष हुवेथे तथापि " आज " ऐसा शब्द करके जो वर्तमानमें आरोपण करना सो भूतनैगम है.

भाविनैगम—भाविकाले वर्तमाना रोपणं यत्र सभाविनैगमः अर्थ भाविकालकी वात वर्तमानमें आरोपण करना सो भाविनैगम है. यथा अर्हन सिद्ध एव. अर्हन्तसिद्ध ही है. यद्यपि अर्हन्त भगवन्त सिद्ध नही हुवे है मगर होने वाले जुरूर हैं ऐसा समझकर नैगमने एक देश ग्राहक स्वभावसे सिद्ध मानकर भाविको वर्तमानमें वर्ताया सो भाविनैगम है.

वर्तमाननैगम—कर्त्तुमारब्धं ईषन्निष्पन्नं अनिष्पन्नंवा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते यत्रस वर्तमान नैगमः अर्थ. कोईभी कार्य करना शुरु किया वह कुछ हुवा कुछ न हुवा मगर उसको होनेके तुल्य कह देना जैसे ओदनं पच्यते चावल पकाये जाते हैं; चाहे उसकी सामग्री पूर्ण इखठी हुई हो वा नही हुई हो मगर होते है ऐसा जो कहदेनासो वर्तमान नैगम है.

संग्रह नयके दो भेद है. १ सामान्य संग्रह २ विशेष संग्रह.

१ सामान्य संग्रह जैसे द्रव्यमात्र आपसमें अविरोधिहै.

२ विशेप संग्रह जैसे जीव मात्र आपसमे अविरोधी है. जरजकी दूसराज राज्यो दवारी कीसे देखता है.

व्यवहारनयः—यह नय बहुत ही बाह्य वस्तुओंपर बहुत ही सुक्ष्म दृष्टी डालता है ईसके दो भेद है १ सामान्य सग्रह भेदक व्यवहार २ विशेष सग्रह भेदक व्यवहार

१ सामान्य सग्रह भेदक व्यवहार जैसे जीवादि द्रव्य है

२ विशेप सग्रह भेदक व्यवहार जीव दो प्रकारके होते है ससारी और मोक्षके ससारीके दो भेद—सजोगी और अजोगी—अजोगी १८ वे गुणस्थान वाले बाकी सर्व सजोगी सजोगीके दो भेद—केवली और छदमस्त—केवलीतो १३ वे गुण स्थान वाले बाकी सब छदमस्त छदमस्त के दो भेद-- उपशन्ति मोह—क्षीणमोह—क्षीण मोहतो बारवें गुणस्थान वाले बाकी सब उपशान्तमोह उपशान्त मोहके दो भेद सकषाई सकषाईके दो भेद-सूक्ष्मकषाई बादरकषाई के दो भेद—श्रेणी प्रतिपन्न और श्रेणी रहित—श्रेणीप्रतिपन्न आठ वे गुणस्थान वाले बाकी सब श्रेणी रहित—श्रेणी रहीतके दो भेद प्रमादी और अप्रमादी—अप्रमादी छ वे गुणस्थान वाले बाकी सब सप्रमादी—सप्रमादीके २ भेद साधु और श्रावक—साधु छठे गुणस्थान वाले बाकी सब श्रावकके दो भेद व्रत्ति और अव्रत्ति व्रत्ति तो पाच वे गुणस्थान वाले बाकी सब अव्रत्ति अव्रत्तिके दो भेद—सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वीके तीन भेद १ भव्य २ अभव्य ३ और जातिभव्या भव्य उसे कहते हैं जो जो भाविकालमें सिद्ध होनेवाली है, अभव्य उसे कहते हैं

जो कालान्तरमेंभी मोक्ष न जा सके. जाति भव्य वह हैं जो भव्य है मगर किसी कालमें मोक्षको न गया न जावेगा.

ईस तरे जो वातोकी भीन्न २ करके वतावे तो व्यवहार नय है.

ऋजुसूत्रनय-इसके दो भेदे हैं. १ सूक्ष्म ऋजुसूत्र जैसे पर्याग एक समया वस्थायी है.

२ स्थूलऋजुसूत्र जैसे मनुष्यादि पर्याय, वह उसके आयु प्रमाण रहती है.

शब्द सम भिरुढ और एवं भूत इनके एक २ भेद होते है.

शब्दनय एकार्थ वाची शब्द कहना, जैसे, दारा, भार्या, कलत्र इत्यादि समभिरुढ नयः-जैसे, गौवशु.

एवंभूतनयः-जैसे, "इदंतीतिइंद्रः"-इन्द्रकी विभूति करके सहित होवे सो इन्द्र है.

इन नयोके औरभी वहुतसे भेद होते हैं. सो प्रसंगोपात किसी और समयक हे जावेंगे

अच्छा अवयाडिले हणादि क्रियाका समय आया अब आज यह विषय यही वंध करके कल इसको आगे चलावेंगे.

श्रीपुण्यश्रीजी-हे गुरुवर्य आज यह दासी वहुत कृतार्थ हुई है श्री गुरुकी वानी सुनकर इतनी आनंदित हुई है कि

जो प्रकट करनेसे बहार है हे दयानिधे कृपाकर कलभी इसी प्रकार उपदेश फरमावेंगे तो महत् कृपा होगी.

एसी अर्ज करनेके पश्चात गुरुणीजी श्री पुण्यश्रीजी सर्व साधु मंडलीको वंदना करके अपने उपाश्रयपर पहुंचे तथा साधु लोगभी अपनी क्रीयामें तत्पर हुवे

गौचरी व प्रतिक्रमादिक करनेके बाद साधुजन श्रावकों को तथा साध्वियें श्राविकाओंको सीखाने पढानेका उद्यम करने लगी तथा अपनी स्वाध्याय करके शयन करनेके समय संथारा पोरसि पढी रात्रि बीत जानेपर प्रातःकालमें अपनी क्रीयासे निवृत्त होकर श्री पुण्यश्रीजी अपनी सर्व शिष्याओं को लेकर सूरीश्वरके पास पहुचे और वन्दना करनेके पश्चात मतिविनय बोले

हे दयासिन्धु अब कृपाकर आज किंचितमात्र निक्षेपों का वर्णन फरमावें—

इनके मुखसे एस शब्द सुनते ही सर्व शिष्यवर्ग अत्यन्त उत्कण्ठासे गुरुवर्य के पास आन बैठ और निक्षेपोंका वर्णन सुननेको चित्त स्थिर किया

पन्नालालजीभी उसी अवसर आन पहुचे और निक्षेपोंका वर्णन सुनानेके लीये गुरुवर्यसे बहुत आग्रह करने लगे

सर्व लोगोंकी अत्यन्त उत्कंठा देखकर गुरुवर्य बोले. हे महानुभावों एक चित्तसे सुनाना मैं निक्षेपोंका वर्णन संक्षेप तौरपर कहताहु.

निक्षेपे चार है. १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ और भाव. इनका वर्णन अनुयोगद्वारस्थानांगादि सुत्रोंमे बहुत ही उम्दा तौरपर किया गया है. देखो श्री स्थानांग सूत्रमें अरिहंत भगवानूपर निक्षेपे इस प्रकारसे उतारे हैं:—

गाथा

नाम जिणा जिण नाना, ठवण जिणा जिण जिणंद पडिमाओ;
दव्व जिणाजिण जीवा, भाव जिणाजिण समवसरण त्था.

अर्थ—नामजिन है सो जिनेश्वर भगवानका नाम जैसे ऋषभ स्थापना जिनश्री अरिहंत भगवंतकी प्रतिमा है, द्रव्य जिन वे हैं जो भविकालमे जो होनेवाले है. जैसे-श्रेणिक प्रभु खका जीव और भावजिन खुद प्रभु केवल ज्ञान सहित होकर समवशरणपर विराजते हैं तव कहेजाते हैं.

इसी प्रकार सिद्ध भगवानपर निक्षेपे इस प्रकार उत्तर सक्ते हैं.

१ नाम-सिद्ध

२ स्थापना-जितनी जगेमें आत्म प्रदेशका घन अवगा हन हो हैसो

३ द्रव्य-अरिहत भगवानका ज्ञेय, भव्य तथा तद्व्य तिरिक्त शरीर द्रव्य सिद्ध कहे जाते है

४ भाव-मोक्षावस्था

इस प्रकार हर चीजपर चारों निक्षेपे उतरसक्ते है

गरजकी अर्हन्त कथित धर्ममे बहुत सूक्ष्मता रक्खी गइ है और यही प्रमाण उनके सर्वज्ञताका है

इसके अतिरिक्त धर्म दो प्रकारकेभी फरमाये गये है।जिन का बहुत सक्षपसे वर्णन करताहु-

साधु-सर्व विरति होते है उनके पचमहाव्रत रुप उत्कृष्ट धर्म होता है व पचमहाव्रत पहिले गुरुके स्वरुपमे कथन किये गये है

श्रावकके बाराव्रत होते है सो समयके सकोचसे अभी कह नही सक्ता

हे श्रोतागणों इस प्रकार श्री अरिहत कथित धर्म सर्व प्रकारसे सिद्ध है क्यों यज्ञदत्तजी क्या समझे.

यज्ञ-हे कृपानिधे, हे करुणा सागर आपके अमृतमय वच नोंसे मुझे अत्यानन्द उत्पन्न हुवा है. और इतना असर हुवा

है कि आजसे मैं मिथ्या धर्मको छोडकर जैन धर्म अंगीकार करता हुं.

हे गुरुवर्य आपके सदृश मुनिराजोंके विचरनेसे यह भारत भूमि पवित्र होती है इतनाही नही बल्के श्री वीर सासनकी दिन प्रतिदिन उन्नती होती है.

पुण्यश्रीजी–हे कृपालु आज आपके वचनोसे आनंद हुवा सो तो हुवा ही है मगर एक जीवको आपने मिथ्यात्वसे नीकलकर शुद्ध समकितधारी बनाया इसका मुझे अत्यन्त हर्ष है और वह हर्ष कथन करनेको असमर्थ हे.

शिष्यवर्ग–दीनदयाल, दीनानाथ, आपने आज इन शिष्योपर महत् उपगार किया है, हे करुणासिन्धू तकलीफ माफ करे तथा औरभी कोई मौकेपर चर्चा करते रहेगें एसी उम्मेद हैं.

इतनी वार्तालाप हो जानेपर पुण्यके खजाने सदृश श्रीमती परम उपगारीणी गुरुणीजी श्री पुण्यश्रीजी सर्व साधु मंडलीको वंदना करके अपने स्थानपर पधारे तथा अन्य साधु वर्गभी अपनी २ क्रियामें तत्पर हुवे.

यज्ञदत्तजीभी चित्तमें उल्लास लाकर सादर गुरु गुरणीकों वंदना करके गृहपर चलेगये.

उपसंहार

प्रियपाठकगणों –

इस कल्पित कहानीके जरीये जो आपको तीन तत्वोंका संक्षेपसे सार बतायासो आपने गुरु समझ लीया होगा।

प्रिय मित्रपुत्रों–जो मनुष्य इस समान नर देहको प्राप्त करके धर्मको नही करता है व मूर्खोमें मुख्य है देखीये सूक्ति मुक्तावलीके कर्ताश्री सोमप्रभाचार्यजी क्या फरमाते हैं –

श्लोक

तेधत्तूरतरुं वपन्तिभवने, प्रोन्मूल्यकल्पद्रुमम् ॥
चिन्तारत्नमपास्यकाचशकलं, स्विकुर्वते तेजडा ॥
विक्रियद्विरदगिरिन्द्र, सदृशं क्रीणन्ति तेरासभं ॥
येलब्धंपरिहृत्यधर्ममधमा, धावंति भोगाशया

अर्थ–जो अधम प्राप्त हुवे धर्मको छोडकर भोगकी आशाके वास्ते दौडते फिरते है वे मानो अपने गृहमेंसे कल्प वृक्षको उपाडकर धतूरेका दरख्त बोते है, तथा गिरी समान हस्तीको बेंचकर खरको खरीदते है

सबब जब कि यह मनुष्य जन्म मुश्किलसे मीला है तो क्यों प्रयन्त करके धर्म नही करते

मेरे प्यारे भाईयों–यह अवसर वार वार मीलनेका नही है यदि यह वख्त चुक गयेतो फिर चौरासीमें फीरते २ न मआलुम ईस भवमें कब आना मीलेगा.

प्रमाद, आलस्यादिकों छोडकर दृढ चित्तसे देवगुरु और धर्मका आराधन करो, बस ईतनी बात ईस सज्जनके दास और दुर्जनके मित्रकी याद रखना–इति ॥

श्रीमद् हीर विजय सूरी

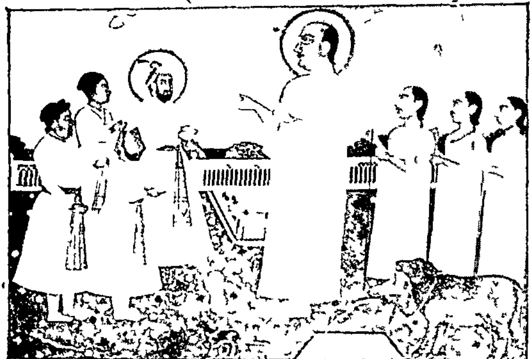

॥ अर्हम् ॥

श्रीमान् हीरविजय सूरी.

तथा

॥ अकबरशाहके दरबारमे जैन ॥

यह सत्यहै कि,—अकबरशाहकी तबियतने मजहबी बातोंपर खास ख्याल पहुंचायाथा तोभी ये ठीक कहनेकी बात है कि, इस अपूर्व व्यक्तिने किसीभीपर इस जबरदस्त तरहसे असर किया। न केवल अपनी रियायाको जो के मुसलमिन जिनके पथ वो धर्म रखनीथी, खुश रखना। बल्कि उनको इस तौरसे यकीन भी किया कि वो उन्हे हरएक मजहबका अनुयायी नजर आताथा। मसलन मुसल्मिन जानतेथे कि वो मुसल्मिन था पारसी समझतेथे कि वो पारसी था और हिन्दु उसे अपना सहधर्मी ख्याल करतेथे। इस मुताबिक उनके धर्मकी पॉलिसीपर हम सिद्धान्त तारिफकी निगाहसे देखना चाहिये।

अकबरशाहका मजहब मुन्तखिब करनेवालाथा. जबकि वह सत्यका सच्चा ढूंढनेवालाथा इसलिये जहां उसे वो पाया वहांसे उसने हांसिल किया। निम्न लिखितसे माऌम होगाकि उसने प्राणियोंका वध न करना, प्राणीमात्रसे स्नेह रखना, और कुछ मर्यादातक मांसाहारको त्यागना, पूर्व जन्ममें यकीन करना, और कर्मके विधानको मानना जैनीयोंसे लियाथा. और इसीलिये उसने उस धर्म (जैन) के पवित्र स्थान उस धर्मके अर्थात् जैन धर्मके अनुयायियोंको देकर और उक्त मजहबके आचार्योंको इज्जत देकर प्रतिष्ठा बढ़ाई।

अकबरके दरबारमें विद्वानोंकी तादादकी तरफ अगर नजरकी जावे (जोके "आईने अकबरीमें दर्ज है) तो माऌम होगा कि हीरविजयसूरि, विजयसेनसूरि और भानचंद्रजी यति वगेराओंके नाम है। अकबरके दरबारमें विद्वानोंके पांच वर्ग थे. हीरविजयसूरि अवल दर्जेमे और दूसरे दो व्यक्ति पांचवे दर्जेमें थे।

अकबरने बहुतसे दुश्मनोपर फतह पाई और जब कोई दुश्मन न रहाथा तब उसने अपना दिल धर्मकी बातोंपर डाला. कट्टर मुसलमान न होनेसे उसने तमाम धर्मके विद्वानोंको अपने दरबारमें बुलाया और उनसे मजहबकी बातोंपर बहसकी जगद्गुरु काव्यमें लिखाहै कि,

" एवं मालव मेदपाट धनिकान् श्री गुर्जरस्वामिनो
जित्वाऽकबर भूपतिर्निजपुरे सौख्यात्समापेतिवान्,
राज्य पालयति प्रपचनिपुण षाड्गुण्य सच्छक्तिमान्,
सम्यग्दर्शनपण्डिता दरकरस्तच्छात्र शुश्रूषया ॥१२१॥"

" अन्येद्यु' स समस्त दर्शनयतीनाकार्य धर्मस्य सत्तत्त्व
पृच्छति शुद्ध बुद्धिविभर स्मार्थी शिरस्यादरात् ।"

उक्त काव्योंका अर्थ उपर आही चूका

बादशाह गुद विद्वानोंसे वादविवाद किया करताथा. इसीसे उसको यह पुरा यकीन हो चूकाथा कि हरएक धर्मके कुछ न कुछ मचे तत्त्व है। आलीवा श्रमण[1] और ब्राह्मणोंसे बादशाहने हमेशा बहस (विवाद) करनेका इन्तिजाम कियाथा और वे दूसरे विद्वानोंपर अपनी तर्कसे व नीतिसे हमेशा गालिब रहतेथे यहा तक के शाहके दिलपर इन्हींका पूरा असर हो चूकाथा और अबहमें हीरविजयसूरिजीके जीवन तरफ और उनकी शाहनेकी हुई प्रतिष्ठा की और नजर करना चाहिये।

आप पालनपुर निवासी कुमरजी नामक किसी व्यापारीके पुत्र थे आपकी माताका नाम नाथीबाई था १३ सालकी

१ श्रमण शब्द–जैन यति शब्दका पर्यायवाची शब्द है.
"मुमुक्षु. श्रमणो यति" इति हेमचंद्र

उमरमेंही आपके माता पिता इन्तकाल कर गयेथे। आपके १ भाई और दो बहिनेंभी थीं. मातापिताका देहांत हो जानेपर चरित्र नायक अपनी बहीनके घर पटना मुकामपर रहे. और वहींपर उनको विजयदानसूरिजीने "संसार असार है" यह तत्व बतलाया और आपने संसारको त्यागनेका इरादा किया. हमशीराने बहुत कुछ विरोध किया लेकिन आप अपने दृढ निश्चयसे न टले. तब सभी संबंधियोंनेभी उन्हें यति हो जाने की आज्ञा देदी. इस मुताबिक आपने १३ सालकी छोटी वयमें ही विजयदान सूरिजीके पाससे यति दीक्षा लेली और उक्त सूरिजीकी मातेहतीमें तमाम शास्त्रोंका अध्ययन किया. उनकी बुद्धिमत्ता देखकर विजयदान सूरिजीने उन्हें धर्मसागरजी उपाध्यायके साथ दक्षिणमें देवगिरी स्थानपर तर्कशास्त्र पढनेके लिये विद्वान ब्राह्मणोंकी तरफ भेजे. देवसी नामक एक व्यापारीने उनके सब खर्चका प्रबंध किया. और आप जल्द ही उक्त शास्त्रका अध्ययन करके पारंगत हुए। ईस्वीसन् १५६१ में आपको वाचक पदवी मिली. और दो वर्ष बाद आप सिरोहीमें सूरिके खिताबको प्राप्त हुए. इस मुताबिक आप जैन साधुओंमें अग्रणी-व-नेता तथा सूरि एवं आचार्य हुए।

आपके उपदेशसे कई अन्यान्य धर्मियोंनें अपना हठ छोड आपका शिष्यत्व स्वीकार किया गुजराती लुंपकगच्छके अनु-

यायी भेत्रजी ऋषिने भी आपका शिष्यत्व स्वीकार किया. प्रशस्तिकारने लिखा है कि,–

" लुम्पाकाधिपमेत्रजीऋषिमुखाहित्वा कुमत्यामदम्,
" मेजुर्यच्चरणद्वयीमनुदिनं भृङ्गा इवाम्भोजिनीम्
" उल्लास नमिता यदीयवचनैर्वैराग्यरङ्गोन्मुखै–
" जाता स्वस्वमत विहाय बहवो लोकास्तपासङ्गकाः॥२३॥"

और आपके उपदेशसे कई जिन बिम्ब प्रतिष्ठाएँ तथा सप्तक्षेत्रमें धनका व्यय और सघ सहित शत्रुंजय प्रभृति कई तीर्थोंकी यात्राएँ कराई । लिखाहै.

आसीच्चैत्यप्रतिष्ठानादिसुकृतक्षेत्रेषु वित्तव्ययो ।
भूयान्यद्वचनेन गूर्जरधरामुख्येषु देशेष्वऽलम् ।
यात्रा गूर्जर मालवादिकमहादेशोद्भवैर्भूरिभि. ॥
सघे साधर्मपीश्वरा विदधिरे, शत्रुंजये ये गिरौ ॥२४॥

आपकी तारिफ अकबरशाहके गौश मुबारकपर पहुँची और शाहने अपने दो दरबारियोंको वजायमोदी और कावलको फरमान देकर अहमदाबाद भेजा के साहिबखान हाकिम फौरन सूरिजीको दरबारमें भेजें ।

काव्यकार लिखते है कि,–

देशात् गूर्जरतोऽर्थ सूरिर्वृषभा आकारिताः सादरं,
श्रीमत्साहि अकबरेण विषयमेवातसंज्ञं शुभम् ॥

साहिबखानने शाहीफरमान पातेही तमाम अहमदावादके जैनियोंको इकट्ठा किया और उससे आगाहीदी इसवक्त सूरिजी गंधार नामक स्थानमें थे. और उन्हे शाही फरमानकी खबर दी गई. सूरिजीने देखाकि, शाहके मुलाकातसे जैन धर्मकी तरक्की होती यह जानकर शाहके तरफ जाना मंजूर किया और अहमदाबाद तशरीफ लाये। साहबखान सूरिजीसे गुफ्तगु करके निहायत खुश हुए और हाथी, घोडे, द्रव्य और कई चीजे नजर करने लगा मगर सूरिजीने स्वीकारनेसे इन्कार किया. सूरिजीने फतेपुरकी तरफ सिर्फदो आदमियोंके साथ जाना आरंभ किया। रास्तेमें आप विजयसेनसूरिजीसे पटना–मुकामपर मिले सिद्धपुरसे आप भीलों के मुल्कमें आये. वहां उनका सरदार अर्जुनने आपकी बडी इज्जतकी: और हत्या करना बंदकिया यह आपकेही उपदेशका नतिजा

मेडतेमें भी मुगल सूबादारने सूरिजीका बडा सत्कार किया वहांसे सांगानेर पहुँचकर आपने विमल हर्षको पेशगीमें शाहको आपके आनेकी आगाही देनेको भेजा. शाहने सूरिजीके आनेकी खबर पातेही अपने अफसरान्को बड़ी इज्जतसे सूरिजीका स्वागत करनेका हुक्म किया. शाहीरथ, हाथी,

घोडे वगैरा साथ लेकर मागानेरको आपकी पेश कदमीमें आये आपके फतेपुर पहुँचकर जगमलकच्छवाहके महलमें मुकाम हुए और दूसरे रोज शाही दरबारमें दाखिल हुए लेकिन बादशाह दिगरकारमें मशगुल होनेके वजे अबुलफजलको सूरिजीके स्वागतमें भेजा मिजाज पुरसीके बाद अबुलफजलने पुनर्जन्म और उद्धारके निसबत सवाल पूछे सबब उसका इस बाबतम कुरानशरीफपर एतबार नथा

सूरिजीने उक्त प्रश्नोंके उत्तर दिये परमेश्वर किसीसे निसबत नहीं रखता मानिन्द सूर्यके रोशन और तेजस्वी है खैर जब परमेश्वर प्रलयमें इन्साफ देगा तब कौनसे इन्साफपर अल्लाहतुमा होगा और जीवोंको स्वर्ग और नर्कमें क्योंकर भेजेगा ? पूर्वमें उदयानेक किये कर्मके अनुसार प्राणी गति पाते हैं या ? खैर खैर उसे कर्ता ख्याल करो तो ऐसे कर्ताकी क्या जरूरत है ? इसपर अबुलफजल बोला इन बातोंपर पैगम्बरके फरमानपे बडा एतबार है ! सुरिजीने कहा—

वधाणद्धय प्रभुरेतमेतत्सृष्ट्वा जगत्पूर्वमिन्द्र विधत्ते ।
तत्केतुरत्नद्दस्ते स पश्चात्तनोऽस्ति, तस्यायसमभ्रमोऽसौ॥
॥ १४९ ॥

कर्त्ताचहर्त्ता निजकर्मजन्य,वैचैत्र्यविश्वस्यन कश्चिदास्ति ।
वन्ध्यात्मजन्मेव तदस्तिभावोऽसन्नेव चित्ते प्रतिभासेतेतत्
॥ १५० ॥

परमेश्वर जगत् निर्माण करके क्षय करता है तब उसका बनानाही फुजूलहै. न कोई पैदा करनेवाला है न क्षय करनेवाला. मुजे यूं नजर आताहै वंध्या स्त्रीके पुत्रके मुताबिक इस दुनियाका बनानेवाला कोई नहीं है. इन कलामोंसे अबुल फजल बड़ा खुशी हुआ. बादशाही दरबारमें अकबरसे मुलाकात करने गये और कुशलक्षेम होनेपर शाहने पूछा आपने सफर घोड़ेपर या रथ, हाथीपर की. जबाब दिया, पा पियादा तब शाहको बडा ताआज्जुब मालूम हुआ बाद सूरिजीने तमाम धर्मतत्व शाहको समझाये जोकि सत्य और असत्यमें भेद नहीं करता और इन्द्रिय सुखोंमेंही आराम मानताहै वो धर्मरूपी कस्तूरीको छोडकर मिट्टी खरीद करता है । और धर्मरूपी अमृत छोडकर कातिल विष खाताहै कहा है:–

यदेष जन्तुर्विषयाभिलाषुको दधाति धर्मे न मनोमनागपि हीर
सौभाग्यकाव्यसर्ग ॥ १४ ॥

अर्थात् जो प्राणी विषयोंका अभिलाषी होताहै वह प्राणी मनको धर्ममें कभी धारण नहीं करता.

बादशाहने ब्रह्म, सच्चागुरु, और सच्चे धर्मके बारेमें तहकीकात शुरुकी, सूरिजी बोले

जो आईनें (दर्पण) के मानिंद साफ दिलहै और तमाम दुनियाके मनोविकारसे आजाद है और १८ पापोंसे रहितहै वही नमस्कार करनेके लायक और सच्चा ब्रह्महै ।

सच्चा गुरु वहीहै –जो सबपर समदृष्टि और भूत दया रक्खे और जन समाजको सच्चा मोक्षका मार्ग बतलावे और द्रव्य वगरा चीजोंसे नफरत रक्खे

सत्य धर्म वहीहै.–जो सबको समदृष्टि मार्ग दर्शावे और आखिर मुक्ति प्राप्त करदें ।

बादशाह इन सवालोंसे खुश होकर कुछ धर्मोंके पुस्तकें आपको नजर करने लगा परंतु आप इनकार करने लगे किन्तु अबुल्फजल और थानासिंहके कहनेसे रखलिये और लौटते वक्त आगरेके पुस्तकालयको भेट करदिये.

शाहसे इजाजत लेकर आप लौटे और फिर ईस्वी सन् १५८० में फतेपुर आये और अबुलफजल्के मकानपर शाहसे धार्मिक चर्चा हुई अकबरशाह निहायत खुशहुए और बहुत सा द्रव्य वगैरा देनेलगे परंतु आपने नहीं लिया और यही

चहाके बादशाह कैदियोंको और पक्षियोंको छोडदें. और पर्यूपणोंके आठ रोज तमाम राज्यमे हत्याबंद रक्खें. शाहने आपके कहनेंसे आठकी जगह बारा तथा अधिकदिन हिंसा बंध करनेका हुक्म जारी करदिया. लिखाहै:—

श्रीमत्पर्युषणादिना रविमिताः सर्वे खेर्वासराः ।
सोफियानदिना अपीद दिवसाः संक्रांतिवस्राः पुनः ॥
मासः स्वीयजनेर्दिनाश्च मिहिरस्यान्येऽपि-भूमीन्दुना ।
हिन्दूम्लेच्छमहीषु तेन विहिताः कारुण्य परण्यापणाः॥२७३॥

तेन नवरोजदिवसास्तनुजजनू रजबमासदिवसाश्च ।
विहिता अमारिसहिताः सलतास्तरवो घनेनेव ॥ २७४ ॥

हीरसौभाग्य काव्य. सर्ग १४

कैदियोंको और पक्षियोंको छोडदिये शाहनेभी शिकार खेलना बंदकिया और १२ योजनका डेवरका तालाव सूरिजीके सुपुर्द कियाकि उसमें कोही मछलीको न पकडे.

अहिंसाके विषयमें लिखाहैकि,-

श्रीमान् शाहि अकब्बरो नरवरो देशेष्वशेषेष्वपि ।
षण्मासाभयदानपुष्टपटहोद्घोषानघध्वंसिनः ।
कामं कारयतिस्म हृष्टहृदयो-यद्वाक्कलारंजितः ।

अर्थात् जिनकी वाक्कलासे खुश हुवा शाह–अक्बरी घोषणातक करता हुआ

सूरिजीके उपदेशसे मृतधन–अर्थात् बेवारीशका धन अपने कोषागारमें लेना छोडदिया लिखाहैं

यदुपदेशवशेन मुद दधम् ।
निखिल मण्डल वासिजने निजे ॥
मृतधनं च करंच सुमीनिशा ।
भिगम कब्बर भूपति रत्यजत् ॥

और प्रजापर जोजो उग्रकर (टेक्स) बैठायेथे वे भी आपके उपदेशसे छोडदिया लिखाहै कि –

नृपतिरेष तमुग्रकर त्यजन् ॥

अर्थात् राजा उग्र करतक छोडदिये । और शत्रुंजय प्रभृति जैन तीर्थोंके फुरमान पत्र लिखदियेकि यावत्चन्द्रदिवा करौ पर्यंत इन तीर्थोंपर कोई दखल न करने पावेगा लिखाहै –

दृष्ट्वा साहसवीर हीरविजयश्रीसूरि राजापुरा ।
यस्त्रीशाहि अकब्बरेण धरणीशक्रेण तत्प्रीतये ॥
तच्चक्रेऽखिलमप्परालप्रतिना यत्साञ्जगत्साक्षिकं ।
तत्पत्र फुरमाणसन्नमनघ मर्यादिशोव्यानशे ॥

और ऐसाभी लिखाहै कि,-

जैनेभ्यः प्रददौ च तीर्थतिलकं शत्रुंजयोर्वीधरम् ॥

इस प्रकार शाह सूरिजीको जैनतीर्थोंको मालिकी दी. और अलावा इसके जगद्गुरुकी पदवी समर्पण की. ई. स. १५८४ में फतेपुर छोडा और अलाहबाद (प्रयाग) में चौमासा किया चातुर्मास पश्चात् गुजरातको लौट आये और १५८७ में पटना आये और १५८८ में पटनेके जैनमंदिरमें सुपार्श्व और अनंतनाथस्वामिकी मूर्तियां स्थापन एवं प्रतिष्ठाकी शाह सर्वनिका तेजपालसे समर्पण कीगईथी. बाद तेजपालने सूरिजीके हाथसें शत्रुंजय तीर्थपर आदेश्वर भगवानकी मूर्ति और देवस्थान जो बनायाथा वह स्थापित एवं प्रतिष्ठा अंजन शिलाका करवाई.

इस मुआफिक शाही दरबारमें इज्जत-प्रतिष्ठा पाकर और शाहसे कई पारमार्थिक सनदें नेक-कामें करवाकर आप स्वस्थानपर वापिस हुए. और वृद्धापकालमें पटनायेंही रहे. और किसी कार्य वशदीव आना हुआ. और ई. स. १५९२ में वही स्वर्ग सिधाये. कई चमत्कार आपकी दहनभूमिपर दीखे. वहांपर एक स्तूप (देहरी) बंधा हुआ है. आपके बाद विजयसेनसूरि पद विराजे एवं नेता हुए.

पाठक महाशय !

यद्यपि उक्त जीवनचरित्र चाहिये वैसा तो नहीं लिखा गयाहै तथापि वाचकवृन्दको अवश्य रुचिकर होगा यह मुझे विश्वास है यदि हीरप्रश्न, हीरसौभाग्य काव्य वगैरे मेरे समीप होते तो मै अवश्य चरित्र बहुत बड़ा और बहुत वृत्तान्त लिखाजाता किन्तु वह न होनेसे केवल जगद्गुरु काव्य तथा इंग्रेजीके लेखके आधारपरसे यह संक्षिप्त लिखागया है उसमें कुछ त्रुटी विदित हो तो पाठक क्षमा करें ।

। खरतरगच्छीय ज्ञानानन्द [illegible] ।